महाकवि पृथ्वीराज राठौड़
व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रो० भूपतिराम साकरिया

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

महाकवि

पृथ्वीराज राठौड़

व्यक्तित्व और कृतित्व

प्रो० भूपतिराम साकरिया
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
टी वी पटेल आर्ट्स कॉलेज,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

पंचशील प्रकाशन, जयपुर

प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन
फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२००३

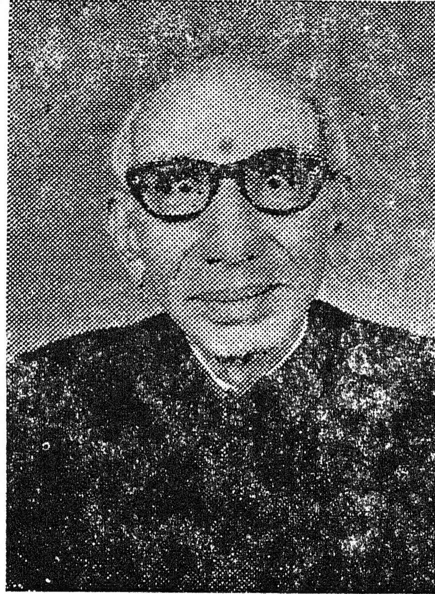
संस्करण : प्रथम

प्रकाशन वर्ष : १९७५

मूल्य : चालीस रुपया

मुद्रक : कमल प्रिंटर्स,
जयपुर-३०२००४

आचार्य
पं० बदरीप्रसादजी साकरिया



राजस्थानी भाषा के मूर्धन्य
विद्वान
कोषकार व शोधवेत्ता
पूज्य पिताजी
के
श्री चरणों में सादर समर्पित

परिप्रेक्ष्य

डेढ दशक पूर्व जब पूज्यपाद प० बदरीप्रसादजी साकरिया बीकानेर से प्रकाशित त्रैमासिक शोधपत्रिका 'राजस्थान भारती' के सपादक थे तब दो अभिनव विशेषाक प्रकाशित हुये. प्रथम, राजस्थानी को अपनी मातृभाषा इटालियन से भी अधिक प्यार करने वाले (म्हनै जित्तो प्रेम म्हारी देस-भासा इटालियन सू है, उणकरता इधको मारवाडी सू है उणमे बळ नै तेज है और वा बोहळै परवार री तथा मीठी है) शोधवेत्ता और विद्वान डॉ० एल पी. तैस्सितौरी से सबधित था और द्वितीय कवि शिरोमणि वीरवर महाराज पृथ्वीराज राठौड से सबंधित दोनो का बीकानेर से अनन्य रागात्मक संबध था डॉ० तैस्सितोरी[1] ने प्रथम जोधपुर और तत्पश्चात् बीकानेर को और उनके माध्यम से सारे मरुप्रदेश को अपना कार्य क्षेत्र बनाया और अत मे इसी प्रदेश की डेढ गज भूमि का अधिकारी बना बीकानेर के साहित्यकारो का शतशः अभिनदन कि उन्होने हमारी मातृभाषा से प्रेम करने वाले विदेशी मनीषी के स्मारक का निर्माण करवाया और मृत्यु के ३७ वर्ष बाद सन् १९५६ मे प्रथम बार इटालियन दूतावास के सास्कृतिक-दूत की उपस्थिति मे अपनी श्रद्धाजली अर्पित की 'राजस्थान भारती' के इस अद्वितीय विशेषाक से राजस्थानी भाषा के प्रेमियो को बडा बल और प्रेरणा मिली राजस्थानी के नवजागरण के काल मे इस अक का स्थान चिरस्थायी रहेगा

पृथ्वीराज राठौड तो इसी भूमि की उपज थे. उन्हे अपनी मातृभूमि के चप्पे-चप्पे और मातृभाषा के वर्ण-वर्ण से अतिशय प्यार था. वे इस प्रदेश के सच्चे प्रतिनिधि थे जिनके एक हाथ मे खड्ग तो दूसरे मे लेखनी थी और वह भी ऐसी कि जिसका कोई सानी नही था 'राजस्थान-भारती' के महाराज पृथ्वीराज राठौड विशेषाक मे देश के अनेक लब्धप्रतिष्ठ सहित्यकारो का सराहनीय योगदान रहा अन्य वरिष्ठ बधुओ के साथ मैंने भी अपने श्रद्धा-सुमन चढाये थे. तब से मेरे मन मे समाज व सरकार द्वारा उपेक्षित इस समृद्ध भाषा के मध्यकालीन कवि पृथ्वीराज राठौड के उदात्त व्यक्तित्व और उनके उत्कृष्ट कोटि के वाङ्मय को प्रकाशित करने की धुन लगी

---

१. पृथ्वीराजजी की 'वेलि क्रिसन रुकमणीरी' का सबसे पहले सम्पादन करके प्रकाश मे लाने का श्रेय डॉ० तैस्सितौरी को है, जिसको ऐसियाटिक सोसायटिक कलकत्ता ने सन् १९१७ में प्रकाशित किया था ।

रही मैंने इन्स्टीट्यूट के डाइरेक्टर को एक पत्र लिख कर यह सुझाव भी दिया था कि 'पृथ्वीराज राठौड विशेषाक' और 'परिशिष्टाक' के सारे लेखो तथा तद्विषयक कुछ लेख अन्य अधिकारी विद्वानो से लिखवा कर उन्हे एक ग्रथ रूप दिया जाय कदाचित् धनाभाव अथवा किसी अन्य प्रकार की कठिनाई के कारण उस समय वे ऐसा न करवा सके. इस विषय की महत्ता मे आज भी किसी प्रकार का अन्तर नही आया है विपरीत इसके, ज्यो ज्यो राजस्थानी भाषा मे अधिकाधिक शोधकार्य होने लगे, त्यो त्यो यह विद्वानो के आकर्पण का केन्द्र बनती गई आज स्थिति यह है कि भारतीय आर्यभाषाओ के विकासक्रम तथा उनके भाषा वैज्ञानिक अध्ययन मे इस भाषा का अपरिहार्य महत्व समझा जाने लगा है

इसके भाषाकीय महत्व को समझ देश के अनेक विश्वविद्यालयो मे हिंदी विषय के अन्तर्गत, स्नातकोत्तर स्तर पर इसके एकाध ग्रथ का अध्ययन भी गत अनेक वर्षों से करवाया जा रहा है. प्रारभ मे यह अवस्था अवश्य ठीक रही होगी, पर बदलते सदर्भ मे राजस्थानी को एक स्वतत्र विषय मानकर आगे बढना ही उचित होगा केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने राजस्थानी भाषा को अन्य भारतीय भाषाओ के समान स्वतत्र रूप देकर सही दिशा मे कदम बढा भी दिया है अकादमी के इस निर्णय का व्यापक अनुकूल प्रभाव भी पडा—

(१) प्रात की जनता और साहित्यकारो मे आशा और उत्साह का सचार,

(२) स्वतत्र राजस्थानी साहित्य अकादमी की माग का बल पकडना,

(३) स्कूलो, कॉलिजो, और प्रात के विश्वविद्यालयो मे इसके अध्ययन और अध्यापन की व्यवस्था का शुभारम्भ तथा,

(४) सभी साहित्यिक विधाओ मे द्रुतगति से साहित्य निर्माण के कार्य का आरम्भ.

यह भी इस भाषा का क्रूर उपहास ही है कि एक ओर हिंदी के विद्वान, इतिहासकार और भाषाविद् राजस्थानी को हिंदी की प्रादेशिक बोली मान कर हिंदी के वीरगाथाकाल अथवा आदिकाल मे राजस्थानी की कृतियो का भरपूर उपयोग करते हैं तथा दूसरी ओर हिंदी के इन्ही विद्वानो ने वीरगाथाकालीन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी काल मे इसके साहित्य और साहित्यकारो को कोई स्थान नही दिया है वीरगाथाकालीन साहित्य मे से राजस्थानी साहित्य को निकालने के बाद हिंदी के वीरगाथाकाल मे रह ही कितना जाता है कि वह अपनी प्राचीनता का बोध करा सके ? यह निहित स्वार्थो का उपेक्षात्मक दृष्किोण ही है.

राजस्थानी का मध्ययुगीन साहित्य समग्र देश की मूल साहित्यिक चेतना से कटा हुआ न था परिमाण एव स्तर दोनो ही दृष्टियो से यह काल बडे महत्व का रहा है. आन, शान और धर्म के नाम पर जो युद्ध इस काल मे हुये है और इनमे जिस अप्रतिम शौर्य के दर्शन हमे होते है, यह साहित्य इसका जीता जागता प्रमाण है विश्वकवि रवीबाबू ने इस विशाल काव्य-सामग्री के कुछ अश का रसास्वादन करने के पश्चात् सत्य ही कहा है कि 'भक्ति रस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य मे किसी न किसी कोटि मे पाया जाता है राधाकृष्ण को लेकर हर प्रान्त ने मंद व उच्चकोटि का साहित्य पैदा किया है लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है, उसकी जोड का साहित्य नही मिलता.' वास्तव मे राजस्थानी मे इस काल मे वीर, भक्ति [सगुण और निर्गुण, सगुण धारा मे राम और कृष्ण के अतिरिक्त देवी (शक्ति)] और शृगार की त्रिवेणी अबाध गति से बह रही थी छद-शास्त्रीय ग्रथो के निर्माण के अतिरिक्त जिस अनुवाद की परम्परा का दर्शन हमे १४वी शताब्दी से होता हैं, वह भी अक्षुण्ण थी सस्कृत प्राकृत, अपभ्रश और फारसी मे रचित विविध विषयो के अनेको ग्रथो के राजस्थानी अनुवाद हमे आज उपलब्ध है. इस काल के गद्य-साहित्य की ओर दृष्टिपात करे तो 'ख्यात' और 'वात' की विविध शैलियो मे लिखी जो प्रचुर सामग्री हमे प्राप्त है, उससे उसकी समृद्धि और विशालता का पता चलता है इस लिखित साहित्यिक परम्परा के अतिरिक्त जनकाव्यो के रूप मे लोक साहित्य का तो राजस्थान रत्नाकार है **नरसीजी रो माहेरो ढोला मारू रा दूहा. मूमल का छबियो, निहालदे, रूपादे, तोलांदे, पाबूजी रा पवाडा, बगड़ावत, तेजाजी, गोपीचंद, भरथरी** आदि ऐसे जनकाव्य हैं, जिनका अध्ययन राजस्थान के इतिहास को समझने के लिये निताँत आवश्यक है राजस्थानी साहित्य के एक विशिष्ट छद 'गीत' का भी इस युग मे वर्चस्व रहा है **दुरसा, ओपा, ईसरदास, हुकमीचद बाँकीदास, महाराजा मानसिह** इत्यादि अनेक प्रसिद्ध कवियो ने ९१ प्रकार के गीत-छदो मे सभी प्रकार के विषयो को लेकर सुदर रचनाओ का निर्माण किया है.

राजस्थानी भाषा के इस स्वर्ण युग मे अवतरित महाराज पृथ्वीराज राठौड पर निश्चय ही इस वैविध्य का प्रभाव पडता सत्य तो यह होगा कि पृथ्वीराज ने एक ही साथ इन सारी विधाओ को अपना कर उनको और पुष्ट कर दिया उन्होने जिस विषय, छद, अलकार, शैली, और रस को छुआ, वही जैसे भाग्यशाली हो गया 'वेलि' उनकी प्रबधात्मक रचना है तो **वसदेरावउत, दसरथरावउत** तथा **गगाजी रा दूहा** उनकी मुक्तक शैली की दोहो मे रची रचनाएँ है उद्‌बोधन और ईश्वरस्तुति के पद गीति काव्य है, तो उनकी प्रशस्तिपरक रचनाएँ 'गीत' छद मे लिखी उत्तम रचनाएँ है. इस प्रकार इस एक ही प्रतिभाशाली पुरुष ने राजस्थानी साहित्य को कला और भाव दोनो ही पक्षो की दृष्टि से प्रौढता की कोटि मे लाकर रख दिया था.

एक कुशल सगीतज्ञ व नर्तक की भाँति पृथ्वीराज कला मर्मज्ञ थे. निम्न छद मे भगवती जागमाया की नृत्यलीला का उन्होने जो अनोखा वर्णन किया है, वह मगीत, नृत्य शास्त्र के साधारण ज्ञाता का काम नही है वाद्य और नृत्य की विभिन्न ध्वनियो से श्रवणेन्द्रिय तो क्या अन्य सारी ज्ञानेन्द्रियाँ झकृत हो उठती है, मन मयूर नाच उठता है —

छंद गाहा

गुञ्जै गुहिर नद्द गैण गण त्रहि कुडता माहिण गुञ्जै ।
तिण नाटारभ सुर नर त्रिय नचै. दहवह दहवह वयण सु वज्जै ॥

छद पहाड़गति

त्रह त्रह वाग्डिदिक त्रह त्रह वाग्डिदिक त्रह तत तत तत तत्कार कर ।
धप मप पप धम दौ दौ दौ दौं दौ धिकट त्रदग धुनि ध म स धर ॥
किट किट धौकटि धौं धौ धौ धौ धौ धिर्काट कटि कटि धौ धौ
गुण गुण गुण गुण ताल गुण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग ड्डुग जुग ड्डुग खेलत जोगणियं ॥ १ ॥

थ थाग्डिदिक थिरि रि रि रि रि रि रीथि टिक टिप धुनि धमक पय ।
थुग थुग थुग थागग्डिदिक नूत थट झण ण ण ण ण झकार रय ॥
भ भ भ भागग्डिदिक भ भ भ भ भ रवद्द भण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग ड्डुग जुग ड्डुग खेलत जोगणिय ॥ २ ॥

कटि थुग्डिदौ कटि थुग्डिदौ कटि कडदकटि थुग्डिदी घुटि घुटि किट ।
धौं धौ ताल मिल ।
च च च च च च चप्पट च च पट रण ण ण ण ण ण कि ताल कल ॥
तन थेई थेई थेई थाग्डिदिक थाग्डिदिक तत तत थेई तत ता नाटारभ तण ।
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग ड्डुग जुग ड्डुग खेलत जोगणिय ॥ ३ ॥

धाग्डिदिक धम धौ धौं धौ धौं धम धम धम धम रम झम घुघरिय ।
डिग्डि ग्डिदा दा दा झणतकार झम झम झणकि झुझरिय ॥
खुद खुद खुद खौ खौ खिखित खिखित खिखित खिन तौग्डिदिक
ताल स ण ण ण ण तणा ॥
तो सगति सभ रभ नाटारभ जुग ड्डुग जुग ड्डुग खेलत जोगणिय ॥ ४ ॥

छंद कलस

तण ण ण ण ण ण ण तण ण ण ण तै लत तण ण ण ण फर र र र फाळ ।
फर गद फण ण ण ण ण पडि पडसाद पयाळ ।।
धिग्डिदि धड ड ड ड धर धूजै रमै रूपत्रि रास गुहिर
त्रिह्‌ जद्‌ सुगजै गूंजै गुहिर ।। ५ ।।[१]

ग्रथ के शीर्षक से स्पष्ट है कि ग्रंथ दो प्रमुख भागो मे विभाजित है—व्यक्तित्व और कृतित्व कृतित्व को पुनः दो भागो मे विभाजित किया गया है—वेलि और अन्य रचनाएँ. व्यक्तित्व खड मे राठौडो (राष्ट्रकूटो) के मारवाड मे आने व उनके जोधपुर, बीकानेर आदि अनेक राज्यो की स्थापना का सिहावलोकन करते हुये, महाकवि के जीवन-चरित्र का आलेखन किया गया है, जो राजस्थानी और हिंदी के अनेक ग्रथो द्वारा सम्पुष्टित है. वेलि खण्ड के अन्तर्गत, वेलि के सपादन को छोड कर, केवल उसका ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक विवेचन ही प्रस्तुत किया गया है. यद्यपि विभिन्न विद्वानो द्वारा सपादित वेलि के अब तक छ सस्करण देश के विभिन्न भागो से प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी इसके मूल पाठ के सुदर सपादन की आवश्यकता अब भी बनी हुई है प्रस्तुत ग्रथ मे वेलि के सपादन कार्य का समावेश न करने का एक मात्र कारण ग्रंथ की कलेवर वृद्धि का भय था पर दूसरी ओर वेलि के आलोच्य खण्ड मे कई सर्वथा नवीन अध्याय यथा (१) वेलि का काव्य रूप (२) वेलि मे औचित्य तथा (३) वेलि मे पृथ्वीराज की भक्तिभावना आदि को सयुक्त कर इसके सर्वागो को पुष्ट किया गया है

कृतित्व के दूसरे खड मे अन्य रचनाओ के अन्तर्गत प्रत्येक रचना के प्रारम्भ के पूर्व विषय-प्रवेश की दृष्टि से एक एक भूमिका दी गई है इन विषय-प्रवेशो मे विषय पर सामान्य प्रकाश ही न डाल कर, इसकी सक्षिप्त साहित्यिक-समीक्षा भी दी गई है इसके पीछे आशय यह रहा है कि ऐसे आयास से विषय को हृदयगम करने मे सुविधा रहेगी अद्यावधि अप्रकाशित इन अन्य रचनाओ के मूल पाठ के नीचे शब्दार्थ और कतिपय स्थानो पर पाठान्तर भी दिये गये है मेरे लिये उचित तो यह होता कि इन कृतियो के सर्वांगो को आवेष्टित करती हुई एक विस्तृत समालोचना का इस ग्रथ मे समावेश होता, पर जैसा कि ऊपर निर्देश किया जा चुका है कलेवर-वृद्धि

---

१ इस ग्रथ के छपते छपते श्री सौभाग्यसिंह शेखावत का 'वरदा' वर्ष १८ अक २ मे एक लेख पढने को मिला श्रीशेखावत ने उपर्युक्त गीत महाराज पृथ्वीराज राठौड कृत माना है वे अधिकारी शोधवेत्ता हैं और 'अमृत धुनि' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह गीत भी कवि ने ही रचा होगा, पर छद मे कही भी 'पृथ्वीराज' का नामोल्लेख न होने के कारण सशय होता है सशय का एक कारण यह भी है कि स्वय लेखक ने कही भी वह आधार नही दर्शाया है, जिससे यह प्रमाणित हो कि यह छद महाराज पृथ्वीराज कृत ही है.

और समयाभाव इसमे बाधक रहे यह अवशता है, पर भविष्य मे इस अभाव को पूर्ण करने की हार्दिक इच्छा है

प्रस्तुत ग्रथ के परिशिष्ट के रूप मे व्यक्ति, स्थान, सस्था, सदर्भ ग्रथ और पत्र पत्रिकाओ की अकारादिक्रम मे नामानुक्रमणिका देकर इसे और अधिक उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है

'महाकवि पृथ्वीराज, व्यक्तित्व व कृतित्व' शोध का विषय है और किसी शोधार्थी द्वारा इसके आधे भाग को समुचित रूप से प्रस्तुत करने पर उसे पी एच-डी की डिग्री प्राप्त हो सकती थी, पर मेरा उद्देश्य कुछ दूसरा ही रहा है

इस विषय पर अपने विचारो को आबद्ध करने की प्रेरणा तो मुझे बहुत पहले ही मिल चुकी थी और रेंगता-सा काम कर रहा था, पर पूज्य पिताजी की छोहमयी रूष्टता ने इसमे वेग ला दिया ग्र थ के प्रत्येक चरण पर मुझे उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता रहा है मैं तो सदैव उनका ऋणी ही रहा चाहता हूँ.

ग्र थ के तैयार करने के बाद भी इसके प्रकाशन का प्रश्न तो था ही सयोग से पचशील प्रकाशन, जयपुर के प्रतिनिधि श्री कुर्भसिह राठौड से मिलना हुआ. उन्होने इसे पूर्ण करने के लिये मुझे प्ररोचित किया और एक दिन इस प्रकाशन सस्था के मालिक व्यवस्थापक श्री मूलचदजी गुप्ता का पत्र मिला कि पाडुलिपि शीघ्र ही प्रेषित कीजिये श्री मूलचदजी गुप्ता ने बडी त्वरा से रसपूर्वक इस काम को अपने हाथ मे लिया प्रस्तुत ग्र थ का यह सौष्ठवयुक्त स्वरूप इन के प्रयत्नो का परिपाक है.

इस कार्य के प्रारभ से अत तक मुझे अनेक मित्रो का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहयोग मिलता रहा है, मै उन सबका आभारी हूँ.

भूपतिराम साकरिया

साकरिया सदन,
वल्लभविद्यानगर (गुजरात)

अनुक्रम

व्यक्तित्व

वंश

तेरहवी शती के अंतिम चरण मे कन्नौज के राठौड राजा जयचद्र के वशज सेतराम के पुत्र राव सीहा मारवाड आये थे[1] उन्होने सर्वप्रथम 'खेड' पर अधिकार

---

१. राव सीहा, जिनका सिघसेन नाम भी ख्यातो मे उल्लिखित है, बडे धर्मपरायण क्षत्रिय वीर थे. वे अपने परिवार और परिग्रह के साथ वि स १२९२ मे द्वारका की यात्रा पर जाते हुए मारवाड आये थे. उन्होने तब भीनमाल मे मुलतान के आततायी मुसलमानो द्वारा आक्रान्त प्रजा की रक्षा की थी द्वारका से लौटते हुए जब उनका मुकाम पाली मे हुआ तो वहाँ के ब्राह्मणो (जो बाद मे पालीवाल ब्राह्मण कहलाए) ने भी उनसे निवेदन किया कि उनकी भी भील, मेर, मैणे आदि दस्युओ से रक्षा करें तद्नुसार लुटेरो का दमन कर के पाली के ब्राह्मणो को भी अभय किया वहाँ उन्हे यह पता लगा कि खेड के स्वामी गोहिल और उनके मंत्री डाभियो मे अनबन के कारण राज्य मे अव्यवस्था व लूट खसोट के कारण प्रजा सत्रस्त है सीहाजी ने गोहिलो और डाभियो दोनो का दमन करके वहाँ अपना राज्य स्थापित कर दिया इसी बोच पाली को मुसलमानो ने लूटना प्रारम्भ कर दिया सीहाजी उनके मुकाबिले के लिये पाली चढ आये मुसलमानो को पाली से खदेडते हुए जब वे बीठू गॉव आये तो सीहाजी वहाँ वीरगति को प्राप्त हुए. गोहिलो ने इस बीच खेड पर पुन. अधिकार कर लिया तब राव आसथान ने खेड पर आक्रमण करके गोहिलो को मारवाड से मार भगाया और वहाँ अपना निष्कटक राज्य स्थापित कर दिया. मारवाड मे सर्वप्रथम खेड पर शासन होने के कारण मारवाड के राठौडो की मूल शाखा 'खेडेचा' सज्ञा से प्रसिद्ध हुई. मारवाड से भागे हुए गोहिलो और डाभियो ने सौराष्ट्र मे आकर अपने अपने राज्यो की स्थापना की.

जमाया[1] उनके पुत्र आसथान खेड के अधिकारी हुए आसथान का एक भाई सोनग ईडर राज्य का अधिकारी हुआ[2] और सोनग से छोटा भाई अज ओखामडल का अधिकारी हुआ[3]

इसी प्रकार आगे जाकर राव सीहा का परिवार बहुत भाग्यशाली, बलशाली और नामाकित हुआ उनका वश दसाधिक राज्यो का सस्थापक[4] और लक्षाधिक परिवारो के रूप मे भारत के अनेक भागो मे प्रसरित और ख्यातिलब्ध हो गया

इन्ही समृद्ध और शक्तिशाली राठोड राज्यकुलो मे पाबू, मल्लिनाथ, राव कल्लाजी रायमलोत, महाराजा सावतसिह (नागरीदास)[5], महाराजा जसवतसिह (प्रथम), महाराजा अनूपसिह, महाराजा मानसिह, मीराबाई, बनीठजी और रूपादे एव वर्तमान महाराजा डॉ रघुवीरसिंह (सीतामऊ) आदि अनेक ख्यातनामा भक्त, विद्वान, कवि, विद्या-व्यसनी, लेखक व वीर उत्पन्न हुए हैं इसी वश मे जोधपुर को बसाने वाले राव जोधा के पुत्र राव बीका ने बीकानेर राज्य की स्थापना की

---

१ खेड का प्राचीन नाम क्षीरपुर अथवा खेड-पाटण भी रहा है, जो लेखक के गॉव बालोतरा से ६ मील दूरी पर अवस्थित है. किसी समय यह एक विशाल वैभवशाली नगर था मीलो दूर स्थित वज्जावा (वज्रावास), तेमावा या तम्मावा (ताम्रावास), सोभावा या शोभावास आदि निकट के ग्राम इस नगर के मोहल्ले कहे जाते हैं लूनी नदी के किनारे पर स्थित यह नगर वैष्णव, शैव, एव शाक्त आदि सम्प्रदायो का सगम एव तीर्थस्थान है इस समय खडहरो के बीच चार भग्न हिन्दु मदिर ही शेष है बडे मदिर मे चतुर्भुज विष्णु की तेरहवी शती की अत्यन्त भव्य कलाकृति अखडित रूप मे विद्यमान है इसके जीर्णोद्धार का कार्य सर्वप्रथम लेखक के पिताश्री और उनकी मित्रमडली ने उठाया था

२ यहाँ की राठौडो की शाखा का नाम 'ईडरिया' राठौड हुआ.

३ यहॉ की राठौडो की शाखाओ के नाम 'वाढेल' व 'वाजी' हुए

४ मडोवर (जोधपुर), बीकानेर, किशनगढ, रतलाम, सीतामऊ, झाबुआ, अमझरा, भिणाय, ईडर आदि

५. भक्त कवि नागरीदास की पत्नी 'बनीठनीजी' भी प्रसिद्ध भक्त कवयित्री थी. राव सीहा के वश के सभी राठौड़-राजघरानो मे ऐसी अनेक रानियाँ और पडदायतें भक्त कवयित्रियाँ हो गई है

जन्म

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' एव अनेक ग्रन्थो के प्रणेता तथा हमारे ग्र थ नायक, महाकवि पृथ्वीराज राठौड इन्ही राव बीका की चौथी पीढी मे थे [1] राव कल्याणमल के पुत्र और बीकानेर नरेश महाराजा रायसिह के अनुज, वीरवर पृथ्वीराज का जन्म सवत १६०६ की मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को बीकानेर मे हुआ था। उनकी माता का नाम भगतादेजी सोनगरी था [2]

महाराज पृथ्वीराज राव कल्याणमल के तृतीय पुत्र थे [3]

---

१ आचार्य पं. बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सपादित 'मुहता नैणसी री ख्यात', भाग तीसरा, पृ ३१ — 'बीका के लूणकरण', लूणकरण के जैतसी, जैतसी के कल्याणमल और कल्याणमल के रायसिह, जिनके भाई पृथ्वीराज थे

२.- वही । भाग तीसरा पृ. ३१,

३ (अ) वही । भाग तीसरा पृ. २०६ राव श्री कल्याणमलजी रै कवरा रा नाम –

(१) महाराज श्री रायसिघजी	(६) अमरो (अमरसिघ)
(२) रामसिघजी	(७) गोपाळदास
(३) प्रिथीराजजी	(८) राघवदास
(४) सुरताणजी	(९) डू गरसी (डूंगरसिघ)
(५) भाण	

(ब) श्री अगरचद नाहटा ने पृथ्वीराज-दिवस पर दिये गये अपने भाषण (राजस्थान भारती, भाग ७, अक १-२) मे राजकुमारो के नाम इस प्रकार दिये है –

(१) रायसिघ,	(५) भाण,	(९) डू गरसी,
(२) रामसिघ,	(६) गोपाळदास,	(१०) भाखरसी,
(३) सुरताण,	(७) राघौदास	(११) भगवानदास
(४) पृथ्वीराज	(८) अमरौ	

श्री नाहटा ने इसका आधार उद्धृत नही किया है

(स) 'वीर विनोद' मे बीकानेर की तवारीख के अन्तर्गत पृ ४८५ पर कल्याणमल के दस पुत्रो के नाम इस प्रकार दिये है :—

(१) रायसिह,	(४) अमर सिंह	(७) सारगदे,	(१०) राघवदास
(२) रामसिह	(५) भाण	(८) भाखरसी	
(३) पृथ्वीराज	(६) सुरताण	(९) गोपालसिह	

इस प्रकार हम देखते है कि उपर्युक्त तीनो उद्धरणो मे न केवल क्रम भेद है बल्कि सख्या भेद भी है. दूसरे उद्धरण में पुत्रो की सख्या बढकर ग्यारह हो गई है. और पृथ्वीराज का स्थान तीसरे स्थान की जगह चौथा हो गया है.

पृथ्वीराज के वंशज

महामहोपाध्याय श्री ओझाजी कृत 'बीकानेर राज्य का इतिहास' भाग दो पृ ७०१ पर पृथ्वीराज के वशजो की वश-वृक्षावली इस प्रकार दो गई है :—

(१) पृथ्वीराज (२) सुदरसिंह (सुदरसेन) (३) केशरीसिह (४) विजैसिह (५) छत्रसिह (६) जोतसिह (७) मुकनसिह (८) कुशलसिंह (९) लूणकरण (१०) सूरजमल (११) हरिसिह (१२) गणपतसिह (१३) मेघसिह

स्वय पृथ्वीराज के दो पुत्र थे जिनके नाम क्रमश (१) सुदर्शन (सुदरसिह) तथा (२) गोकलदास है.

पृथ्वीराज के वशज 'पृथ्वीराजोत बीका' कहलाते है तथा बीकानेर राज्यान्तर्गत 'ददरेवे' के ठाकुर है

व्यक्तित्व

'ऊगती बाजरी रा बोकना इ कै' वे (होनहार बिरवान के होत चीकने पात)— हमारे चरित्रनायक बाल्यकाल से ही विलक्षण प्रतिभा के धनी थे प्रत्यक्ष दिखलाई पडनेवाले विरोधी गुणो से परिपूर्ण, महाकवि पृथ्वीराज राठौड साहित्याकाश के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे यद्यपि प्रारम्भ से ही वे ऐश्वर्य और विलास मे पले थे, फिर भी उनकी उत्कृष्ट भगवत्-भक्ति, प्रतिभा सम्पन्न काव्यशक्ति और वैदुष्य, अप्रतिम वीरता तथा सुडौल स्वरूप आदि उनके बहमुखी प्रभविष्णु व्यक्तित्व के परिचायक थे

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार महाराज पृथ्वीराज बाल्यकाल से ही बडे गभीर व साधु प्रकृति के थे — 'ये पृथ्वीसिंहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिंहजी के यहाँ जन्मे सो बालपणे सो इनको चित्त साधु सगति मे रहे. देश देश के साधु वहाँ आवते तिनसे ये मिले ' इन सबका इतना व्यापक प्रभाव पृथ्वीराज के बाल मस्तिष्क पर पडा कि जब ये बडे हुए, सर्वप्रथम गोकुल व मथुरा की यात्रा को गये.

वैवाहिक जीवन

यद्यपि पृथ्वीराज की पत्निओ के सबध मे विद्वानों मे मतैक्य नही है और अनेक प्रकार के वाद प्रचलित है, फिर भी एक बात निसदिग्ध है कि उनकी एक अथवा अनेक, सभी पत्नियाँ अनिद्य सुदरियाँ, विदुषियाँ और वीर रमणियाँ रही हैं

उनका विवाह जैसलमेर मे हुआ था उनकी प्रथम पत्नी का नाम लालादे तथा द्वितीय का नाम चापादे (चपावती) था दोनो ही जैसलमेर के रावळ हरराज

की पुत्रिया थी [1]

---

१ (अ) राजस्थान भारती पृथ्वीराज विशेषाक के परिशिष्टाक मे राठौड पृथ्वीराज की पत्नी चपावती' — ले श्री अगरचद नाहटा स आचार्य प बदरी-प्रसाद साकरिया

(ब) जैसलमेर के इतिहासानुसार रावळ हरराज की तीनो पुत्रियो के नाम क्रमश. गगा चापा और नाथी मिलता है

(स) डॉ हीरालाल माहेश्वरी ने अपने शोध प्रबन्ध 'राजस्थानी साहित्य' पृ. १५२ मे लिखा है कि 'पृथ्वीराज के तीन विवाह हुए थे प्रथम महाराणा उदयसिह की पुत्री से, दूसरा जैसलमेर के रावळ हरराज की बेटी लालादे और तीसरा लालादे की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहन चापादे से चापादे स्वय कवयित्री थी '

(द) 'क्रिसन रुकमणि री वेलि' के एक सम्पादक प्रो नरोत्तमदास स्वामी ने अपनी प्रस्तावना पृ. २४ पर पृथ्वीराज के प्रथम विवाह को उदयपुर के महाराणा की पुत्री और महाराणा प्रताप की बहिन के साथ हुआ मानते है इस रानी का नाम किरनवती बताया जाता है.

पर पृथ्वीराज का प्रथम विवाह महाराणा उदयसिह की पुत्री के साथ हुआ था, इतिहास सम्मत नही है वास्तव मे इनके बडे भाई महाराजा रायसिह का विवाह महाराणा उदयसिंह की पुत्री से हुआ था इस सम्बन्ध मे कविवर दुरसा आढा का निम्न गीत प्रसिद्ध है यह गीत श्री रावत सारस्वत ने सादूळ राजस्थानी रिसर्च इंस्टीव्यूट, बीकानेर से 'डिगल गीत' नामक ग्र थ मे प्रकाशित करवाया है —

गढ बीकाण, चीतगढ सगपण,
कलो उदैसिघ इळ आकास।
जसमा नार रायसिघ जोडौ,
पमग पाचसौ हलत पचास ।।

(भावार्थ – बीकानेर के राव कल्याणमल और चित्तौड के राणा उदयसिह के इस सबध और जसमादे तथा रायसिघ के विवाह के अवसर पर पाँच सौ घोडे और पचास हाथियो का यह दान पृथ्वी और आकाश की समाप्ति तक चिरस्थायी रहेगा.)

—'वीर विनोद' पृ १७८ – रायसिघ की शादी महाराणा उदैसिह की बेटी जसमादे से हुई थी

—आचार्य प बदरीप्रसाद द्वारा सम्पादित 'मुहता नैणसी री ख्यात' भी इसका पुष्ट प्रमाण है

कुछ प्रवाद तीसरी पत्नी के होने के तथ्य की भी पुष्टि करते है और उसका नाम किरणवती बतलाते है,[1] जो हिन्दू-सूर्य महाराणा प्रताप के अनुज शक्तिसिह की पुत्री थी ये वे ही शक्तिसिह है जो एक बार अपने भाई से क्रोधित हो अकबर से जा मिले थे, पर विश्वप्रसिद्ध हल्दीघाटी के तुमुल युद्ध मे महाराणा प्रताप के अप्रतिम शौर्य, व कर्त्तव्यपरायणता से इतने प्रभावित हुए कि उनकी रक्षार्थ अपने प्राणो को भी सकट मे डाल दिया कुछ विद्वान लालादे और किरणवती दोनो को एक ही मानते है तथा अकबर के राज्य मे नौरोज के जश्न मे जो मीना बाजार लगाया जाता था, उसमे अकबर को बोधपाठ सिखाने वाली चापादे थी[2]

---

१ The Annals & Antiquities of Rajasthan by James Tod और 'कल्याण' के नारी विशेषाक पृ ५८२, 'वीरागना साध्वी किरणदेवी'

२ (अ) मुशी देवीप्रसाद कृत 'राज रसनामृत' चौथी धारा

(ब) 'क्रिसन रूकमणी री वेलि' स. डॉ तैस्सितौरी भूमिका, पृ VI — 'एक बार अकबर ने पृथ्वीराज को गुजरात मे घोडे खरीदने के लिये भेजा. जब वे घोडे खरीद कर दिल्ली वापस लौट रहे थे तो एक ऐसे गॉव से गुजरे, जिसमे दूध उपलब्ध नही था और वे बडे असमजस मे पडे. बात यह थी कि घोडो के व्यापारी ने उनको एक शर्त पर घोडे बेचने का तय किया था शर्त थी कि दिल्ली तक सारे रास्ते भर घोडो को दूध पिलाया जायगा. इतने मे एक चारण कुमारी वहाँ आई और उसने एक गाय का दोहन करके ही इतना दूध निकाला, जो सारे रास्ते घोडो की आवश्यकता से अधिक था. पृथ्वीराज को बडा आश्चर्य हुआ और वे चारणकुमारी के चरणो पर गिरे उन्होने उससे कहा कि देवि ! ऐसा एक जादू तो मुझे भी बतलाइये उसने अपना नाम राजबाई बतलाया और कहा कि जब आप सकट मे हो तो मुझे याद करे मै आपकी सहायतार्थ उपस्थित हूँगी कुछ समय बाद पृथ्वीराज की पत्नी की अनुपम सुदरता के विषय मे सुनकर, पृथ्वीराज के बिना जाने बादशाह ने उसे दिल्ली बुलवाया पर इसके पूर्व कि रानी दिल्ली मे प्रवेश करे पृथ्वीराज रास्ते मे मिल गये रानी ने सारा वृत्तात कह सुनाया और शाही पत्र बतलाया बहुत समय तक पृथ्वीराज किंर्त्तव्य-विमूढ अवस्था मे खडे रहे. बादशाह की विश्वासपात्रता को ठोकर मार दे या पत्नी का सम्मान खो दे. इसी समय राजबाई का ध्यान आया जैसे ही उन्होने राजबाई का स्मरण किया, राजबाई वहाँ उपस्थित हुई उसने पृथ्वीराज को धीरज दिलाया और स्वय सिहनी वेश मे अकबर के यहाँ गई अकबर बडा भयभीत हुआ और उससे यह प्रतिज्ञा करवाई कि भविष्य मे वह किसी राजपूतनी का सतीत्व हरण करने का प्रयास न करेगा'

नौरोज के जश्न मे बीकानेर की इस रानी की वीरता ने अनेक कवियो, नाटककारो तथा इतिहासकारो को आर्कषित किया है जिन अनेक कविताओ और नाटको मे इसकी इस अप्रतिम वीरता को अकित किया गया है, उनमे से एक कविता कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की है जो 'कल्याण' के वर्ष २२, अक ११ मे प्रकाशित हुई थी—

बीकानेरी वीरागना

रानी पृथ्वीराज की निहारति सिगार हाट,
पारति सु दीठी गथ विविध बिसाती पै ।
कहै रतनाकर फिरी त्यो फॅसी फद बीच,
लपक्यो नगीच नीच धरम अराती पै ।
परसत पानि अनवान राजपूती आनि,
औचक अचूक घात किन्ही घूमी घाती पै ।
झटकि झटाक कर पटकि धरा पै धरी,
काती नोक गब्बर अकब्बर की छाती पै ।।

रावळ हरराज की प्रथम पुत्री गगा का विवाह पृथ्वीराज के बडे भाई महाराजा रायसिह के साथ हुआ था [1] तब एक स्वाभाविक प्रश्न होता है कि लालादे कौन थी और कहाँ की थी? बहुचर्चित और अति प्रचलित होते हुये भी यह गवेषणा का विषय है यहाँ एक ऐसा भी प्रश्न उत्पन्न होता है कि वस्तुत' हरराज के कितनी

---

१. (अ) 'मुहता नैणसी री ख्यात' भाग ३ पृ ३१ स आचार्य प बदरी प्रसाद साकरिया– 'महाराजा श्री सूरसिघजी, भाटी रावळ हरराज रा दोहिता राणी श्रीगगाजी रो बेटो. सासरै रो नाम सोभागदेजी' ये सूरसिघजी महाराजा रायसिहजी के पुत्र थे

(आ) टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास' अनुवादक श्री केशवकुमार ठाकुर पृ. ५१७ बीकानेर का इतिहास— 'जैसलमेर के राजा की लडकी का विवाह रायसिह के साथ हुआ था और उसकी दूसरी लडकी बादशाह अकबर को ब्याही थी' इस वैवाहिक सबध के कारण रायसिह और पृथ्वीराज के प्रति बादशाह का आकर्षण स्वाभाविक था

(इ) 'दयाळदास री ख्यात' भाग २ पृ १२३— ''पीछे स १६४९ फागण वद २ रै साहै ऊपर श्री रायसिघजी रावळ हरराज री बेटी गगा नू परणीजण पधारिया जैसळमेर, अरु सिरोही रौ राव सुरताण इण साहै परणीजण आयो हरराज री बेटी ''

पुत्रिया थी ?

जैसा कि प्रसिद्ध है लालादे के मरणोपरान्त उसकी जैसी ही रूपवान, सदगुणी, विदुषी और उसकी ही सगी छोटी बहिन चापादे का विवाह पृथ्वीराज राठौड के साथ किया गया साथ ही यह भी सभव है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार मे शक्तिसिह के अत्यधिक सम्पर्क मे आये हो और वही किरणवती का विवाह उनसे हो गया हो यहाँ प्रश्न यह उठता है कि क्या पृथ्वीराज अकबर के दरबार मे दरबारी के रूप मे विद्यमान थे ?[1]

पृथ्वीराज कृत दोहो[2] मे तो यह सभावना अधिक पुष्ट होती दिखाई पडती है चपादे के साथ विवाह होने के पश्चात् महाकवि को बारह वर्ष तक बादशाह की चाकरी मे रहना पडा[3] पत्नी विछोह के एक कल्प तथा मुगलकालीन ऐश्वर्य-पूर्ण परम्परागत जीवन मे तीसरा विवाह कोई अनहोनी घटना नही है इसी किरणवती ने सभवतया अपने निर्मल चारित्र्य और शौर्य से अकबर जैसे शक्तिशाली पर पतित बादशाह को नौरोज के जश्न मे जनाना (मीना) बाजार को समाप्त करने के लिये विवश किया हो

---

१ (प) यह भी एक विवादास्पद विषय है कि महाराज पृथ्वीराज राठौड अकबर के दरबार मे विद्यमान थे इस सबध मे बीकानेर से प्रकाशित 'सेनानी' के सन् १६५८ के जनवरी–फरवरी अको मे प्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री मुकुनसिह और ख्यातिप्राप्त शोधकर्ता श्री अगरचद नाहटा के लेख द्रष्टव्य है ।

(फ) 'वीर विनोद' मे अकबर बादशाह के मनसबदारो की जो विस्तृत सूची दी गई है, उसमे पृथ्वीराज राठौड का नाम नही है.

(ब) परवर्ती शोधानुसार पृथ्वीराज का अकबर के दरबार मे होना (दरबारी कवि के रूप मे नही) प्रमाणित होता है ।

(भ) प्रो नरोत्तमदास स्वामी सपादित 'क्रिसन रुकमणी री वेल' भूमिका पृ २४ पर लिखा है, "सम्राट के दरबार मे पृथ्वीराज का बडा सम्मान था अकबरी दरबार के नौ रत्नो मे से एक पृथ्वीराज भी थे" ऐसा मानने का आधार क्या है, उसका उल्लेख स्वामीजी ने नही किया है.

२ श्री अगरचदजी नाहटा के सवत् १७१९ के गुटके के आधार पर.

३. वही

लालादे[1] की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज राठौड विक्षिप्त से हो गए हर पल लालादे की रट लगाते हुए उन्होने खानपान तक छोड दिया. कहते है कि अपने अग्रज महाराजा रायसिह की आज्ञानुसार जब पृथ्वीराज राठौड अकबर के दरबार मे जाने लगे तो उन्होने अपनी प्रियतमा लालादे को यह वचन दिया था कि वह छ मास की अवधि के समाप्त होते ही तुरन्त बीकानेर लौट आयेगे. उधर लालादे ने भी प्रण किया था कि यदि निश्चित अवधि से एक दिन भी अधिक लग गया तो वह अपना प्राण त्याग देगी अवधि समाप्त हो गई और विरह मे शोकाकुल लालादे तडफ उठी—

पति परितिग्या साभळो, अवध उलघन थाय,
प्राण तजू तो विरह मे, कदै न राखू काय ।

(हे पतिदेव ! आप अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करें, अवधि समाप्त हो रही है मै विरह मे अपने प्राणो का त्याग कर दूगी और अपनी काया को भस्म कर दूगी)

लालादे के प्राणपखेरू उड गए और जब चिता धक-धक कर जल रही थी तो चितातुर प्रेम प्यासा कवि वहाँ आ पहुँचा और बरबस फूट पडा—

कथा ऊभा कामणी, साई ! थू मत मार,
रावण सीता ले गयो, वे दिन आज सभार ।।१।।

लाला लाला हू करू, लाला साद म देय,
मो अधा री लाकडी, मीरा खीच म लेय ।।२।।

और अत मे कवि ने लाला को जला देने वाली सर्वभक्षी अग्नि पर क्रुद्ध होकर कहा—

तो राध्यो नी खावहूँ, रे वासदे निसड्ड !
मो देखत थे बाळिया, लाला हदा हड्ड ।।३।।

(हे भगवान ! मेरी लाला की मृत्यु न होने दो. मै यहा खडा हूँ. आप तो स्वय भुक्तभोगी है सीता का हरण होने पर आप कितने दुखित हुए होगे ? आप उसी दुख को याद कर मेरी लाला को उबार लीजिए ।।१।। मै लाला लाला पुकार रहा हूँ पर लाला प्रत्युत्तर नही देती है. हे भगवान ! वह ही मुझ अधे का सहारा

---

१. 'कहावती गाथाएँ' नामक डॉ. कन्हैयालाल सहल का लेख, जिसमे से उपर्युक्त उद्धरण प्रस्तुत किये गये है.

२. 'राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान'—लेखक डॉ० कन्हैयालाल सहल पृ० ६३ पर भी इस घटना का अति सक्षेप मे उल्लेख है

थी. आप उसको मुझ से दूर न कीजिए ।।२।। हे अग्नि ! अब मै तेरे द्वारा पकाया गया अन्न ग्रहण नही करूँगा, क्योकि तूने मेरे समक्ष ही, मेरी लाला को जलाकर भस्म कर दिया ।।३।।)

पृथ्वीराज की इस विक्षिप्तावस्था से सारे परिजन दुखी हो उठे और उपचार के लिये विचार विनिमय होने लगा. निश्चय किया गया कि स्वरूप, वर्ण, गुण आदि मे लालादे के समान, उसकी ही छोटी बहिन चपादे का विवाह पृथ्वीराज के साथ कर दिया जाय छत्तीस वर्ष की अवस्था मे स० १६४२ मे जब हरराज की राजकुमारी का विवाह पृथ्वीराज के साथ सम्पन्न हुआ तो एक बार तो स्वय पृथ्वीराज धोखा खा गए पुन स्थिर दृष्टि से देखने पर उनका विरह व्याकुल कवि बोल उठा—

आयी है चपा अठै, वा लाला अब नाहि,

(यह तो चपादे यहा आई है लालादे तो अब इस लोक मे नही है)

चपादे के साथ विधिवत विवाह के पश्चात्, जब महाकवि ने उसकी पति परायणता देखी तो पृथ्वीराज के मन मे अनेक विचार तरगें उठी और अन्त मे उसे सहर्ष अगीकार करते हुए कहा—

चपा ! डगला चार, सामा ह्वै दीजै सजल,
हीडळते गळ हार, हसतमुखा हरराय री ।

(हे हरराय की पुत्री चपा ! गले के हार को उभरे वक्षस्थल पर झुलाती हुई तथा ओठो पर स्मित लिए, अपने प्रियतम की ओर स्नेहपूर्ण चार कदम तो बढा अर्थात उसके समीप तो आ)

चतुर चपा ने भी बडा मनोहारी उत्तर देकर अपनी काव्य रसिकता तथा वैदुष्य से रसिक कवि-पति को मोहित कर लिया—

मुकुल परिमल परीहरे, जब आये ऋतुराज,
अलि नही, आलि हयन की, कलि विकसे कहि काज ।

(बसत ऋतु के आने पर यदि भौरे पुष्पो की मधुर सुवास को त्याग कर चले जाय तो कलिका किसके लिए विकसित हो)

उत्तर पाकर कवि बाग-बाग हो उठा और दौड कर उसे आलिंगन बद्ध कर लिया. पृथ्वीराज को यह अनुभव हुआ कि चपादे न केवल काव्य रचना मे ही चतुर है बल्कि लालादे से भी दो डग आगे ही है तो कवि को आत्मतुष्टि हुई और यही प्रसग कवि के पुन प्रवृति मार्ग ग्रहण करने का कारण भी हुआ. वे अब उसे अत्यन्त प्यार करने लगे .—

चपा ! थूं हरराज री, हस कर बदन दिखाए।
मो मन पात कुपात ज्यू, कबहू तृप्त न थाए ।।

(हे हरराज की पुत्री चपा ! तू सदैव मुस्कराती रह मेरा मन कुपात्र के समान है जो कभी तृप्त ही नही होता.)

वैसे ही चपादे प्रतिभाशालिनी थी, पर कवि-प्रियतम के सपर्क से उसकी प्रतिभा मे चार चाँद लग गये वह न केवल काव्य निर्माण की ओर ही अभिमुख हुई बल्कि उसकी काव्य-दक्षता इस सीमा तक पहुँच गई कि पाद-पूर्ति मे भी यदा-कदा अपने पति की सहायभूत बन जाती थी

कहते है कि एक बार 'वेलि' की रचना मे महाकवि राजा भीष्मक के नगर कुदिनपुर के वैभव का वर्णन करते हुए आगे के पद के अभाव मे, 'चदन पाट चदन पाट' दुहरा रहे थे तभी कवि-प्रिया ने तुरन्त ही अपनी कुशाग्र बुद्धि से पाद पूर्ति कर

चदन पाट कपाट ही चदन।

दोनो का दाम्पत्य जीवन बडा सुखमय रहा. हास-विलास, क्रीडाओ तथा काव्य निर्माण मे समय व्यतीत हो रहा था कि एक दिन दर्पण के सम्मुख बैठे हुये कवि को अपनी दाढी मे सन जैसा सफेद बाल दिखलाई पडा। उन्होने उसे उखाड फेका इतने मे चंपादे दर्पण मे प्रतिबिम्बित हुई वास्तव मे कभी की ओट मे खडी चपादे अपने प्रियतम के क्रिया-कलाप देख रही थी कवि कहाँ चूकने वाले थे अपनी मनोदशा को छिपाते हुए उन्होने मुस्करा कर एक व्यग्य बाण छोडा .—

पीथळ धोळा आविया, बहुळी लागी खोड ।
पूरे जोबण पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड ।।

(अब तो मेरे श्वेत केस क्या आगए, एक दुर्गण आ गया है मै वृद्ध होने लगा हूँ इसी कारण यौवन मे मदमस्त प्रियतमा मुझ से मुख मोडे खडी है)

चतुर चपादे ने महाराज के मनोभावो को समझ कर तथा उनकी ग्लानि को दूर करने की दृष्टि से कवि-प्रिया ने समुचित मनोवैज्ञानिक उत्तर दिया—

प्यारी कह, पीथळ सुणो, धोळा दिस मत जोय।
नरा, नाहरा, डिगमरा, पाक्या ही रस होय ।।१।।
खेडज पक्का धोरिया, पथज गध्घा पाव ।
नरा, तुरगा, वनफळा, पक्का पक्का साव ।।२।।

(चपादे कहती है कि हे प्रियतम पृथ्वीराज आप सुनिए. अपने श्वेत केसो की ओर मत देखो. वे सदैव बुरे नही होते. पुरुष, सिह, दिगम्बर (मुनि) परिपक्व होने

पर ही रसपूर्ण होते है अनुभव, वय और ज्ञान की प्राप्ति होने पर ही पुरुष, सिह और दिगम्बर पूर्ण माने जातेहै ।।१।। बैलो के जीवन का साफल्य हल चलाने मे है, ऊँट का साफल्य मार्ग तय करने मे है तथा नर, घोडा और फलादि पकने पर ही रसपूर्ण व स्वादिष्ट होते है ।।२।।)

चपादे सम्बन्धी अन्य सामग्री पर श्री अगरचँद नाहटा ने प्रकाश डाला है [1] एक बार पृथ्वीराज को चिंतित मन देख कर बादशाह ने उनकी उदासीनता का कारण पूछा तब पृथ्वीराज ने बडा मर्मस्पर्शी उत्तर दिया—

प्रश्न—मन उतराधो तन दखण कहो न कवण विचार ?
उत्तर—मन गुणवती मोहियो, तन रूधो दरबार ।।१।।
के सेवइ पग नाथ ना के सेवइ तट गध ।
पृथु सेवइ चपाकली, सदल, सरूप सुगध ।।२।।

(हे पृथ्वीराज! तुम्हारा मन उत्तर तथा तन दक्षिण की ओर है अर्थात् तुम्हारा मन अस्थिर है कहो तुम किन विचारो मे लीन हो ? पृथ्वीराज ने उत्तर दिया कि मेरा मन एक गुवणती नारी ने मोह लिया है जबकि मेरा शरीर आपके दरबार मे रुद्ध है कोई नाथ के चरणो की सेवा करते है तो कोई गध के उपासक है, पर पृथ्वीराज तो चंपाकली के ध्यान मे लव लीन है जो बहुत मस्त, सुगठित, सुदर व सुगधि से पूर्ण है यहा चपाकली मे श्लेष है चपादे और चम्पा पुष्प)

बादशाह उनके उत्तर पर रीझ गये और बीकानेर जाने की आज्ञा प्रदान की

बारह वर्ष के पश्चात् महल मे पधारने पर विरहातुर क्षीणकाय चपादे ने अपनी व्यथा बडी मार्मिकता से प्रकट की—

बहु दीहा हू वल्लहो, आया मदिर आज ।
कँवल देख कुमळाइया, कहो स केहइ काज ।।१।।
चुगै चूगाये चच भरि, गये निलज्जे कग्ग ।
काया सर दरियाव दिल, आइज बैठे बग्ग ।।२।।

(हे प्रियतम आप बहुत दिनो के पश्चात् महलो मे पधारे हैं कौनसा कारण है कि आप मेरा मुख कमल देख कर उदास हो गए माँस तो निर्लज्ज कोए अपने चोचो मे भर कर उड गए है यह काया तो नदी है और दिल समुद्र है, जिसके किनारो पर बगुले आ बैठे है अर्थात् अब इस शरीर मे हड्डियाँ ही शेष रह गई है)

---

१ आचार्य प० बदरीप्रसाद साकरिया द्वारा सपादित 'राजस्थान भारती' भाग ७, अक तीन मे श्री नाहटा का लेख 'रॉठौड पृथ्वीराज की पत्नी चपावती.'

महाराज पृथ्वीराज ने अपने उत्तर के एक ही छद मे गागर मे सागर भर दिया—

जिहाँ परमल तिहाँ तुच्छ दळ,
जिहाँ दळ, तिहाँ नही गध ।
चपा केरे तीन गुण,
सदळ, सरूप सुगध ।।

(जहाँ पुष्प होते है वहाँ दल होता है, और जहाँ दल होता है वहाँ गध नही होती पर चपा तुझमे तो तीन गुण अति प्रसिद्ध है। वे है सदलता, स्वरूप और सुगधि)

और—

चपा चमकती दात कहु क दामिनी ।
अहरा नइ आभा, होड पडी हरराज उत ।।

(हे हरराज की पुत्री तेरे दातो की चमक का क्या कहना वह दाँतो की चमक है कि बिजली की चमक—कुछ कहा नही जा सकता. पर एक बात तो निश्चित है कि ऐसी आभा किसी अन्य की नही है)

कवि-दम्पत्ति के काव्यमय जीवन के अनेक रोचक प्रसगो मे से एक बहु-चर्चित प्रसग चपादे की गहरी चिता का है, जब उसे मालूम हुआ कि महा प्रतापी अकबर की अतुलित शक्ति की तनिक भी परवाह किये बिना उसके पति महाराणा प्रताप का पक्ष ले रहे हैं तो उसने तुरत एक दोहा उनको लिख भेजा—

पति जिद की पतहास सू, यहै सुणी म्है आज ।
कहँ पातळ अकबर कहाँ, करियौ बडो अकाज ।।

निरअविलब पृथ्वीराज ने चपादे को ब्रजभाषा मे जो निम्न उत्तर प्रेषित किया, उससे दो बाते स्पष्ट उभर आती है. प्रथम तो डिगल के साथ साथ कवि का ब्रजभाषा पर भी विलक्षण वर्चस्व था द्वितीय, महाराणा मे उनकी निष्ठा और उनकी शक्ति मे अगाध श्रद्धा का भाव—

जब ते सुने है बैन, तब ते न मोको चैन,
पाती पढ नेक सो न विलब लगावेगो ।
लैके जमदूत से समत्थ राजपूत आज,
आगरे मे आठो याम उधम मचावैगो ।।
कहै पृथ्वीराज, प्रिया, नेकु उर धीर धरो,
चिरजीवी राना सो मलेच्छन भगावैगो ।।

मन को मरद्द मानी प्रबल प्रतापसिह,
बब्बर ज्यो तडप अकब्बर पै आवैगो ।।

स्वाभिमान—

उनके व्यक्तित्व की यह सबसे बडी विलक्षणता है कि बादशाह अकबर की सेवा मे रहते हुए भी कवि ने अपना स्वाभिमान व स्वदेशाभिमान नही खोया था. बादशाह की सेवा मे उनका तन था, धन था, पर मन व आत्मा नही थी इसीलिये जब महाराणा प्रताप का पत्र अकबर ने उनको लज्जित करने के लिये पढ सुनाया तो कवि का सुषुप्त जातीय गौरव एव राष्ट्राभिमान जाग उठा उन्होने बादशाह को बडा स्पष्ट पर विनम्र उत्तर दिया कि यह पत्र जाली लगता है यदि आपकी आज्ञा हो तो वे उसके सत्यासत्य की जॉच करवाएँ बादशाह की सहर्ष पर अभिमानपूर्ण सहमति पर उन्होने वह अमर ऐतिहासिक पत्र लिखा, जिसने इस देश के जातीय व राष्ट्रीय इतिहास को बदल कर समूचे मृतप्राय राष्ट्र की चेतना को एक नई दिशा दी महाराज पृथ्वीराज के इस पत्र के अभाव मे इस देश का अध पतन कितनी सीमा तक होता, इसकी परिकल्पना भी असम्भव है

आत्मग्लानि व भयकर अपमान से पीडित, मन ही मन अत्यन्त क्षुब्ध, पृथ्वीराज ने छदोबद्ध, सक्षिप्त पर अत्यन्त उत्तेजिक व प्रभावोत्पादक काव्य-पत्र लिखा—

पातळ, जो पतसाह, बोले मुख हुता बयण ।
मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासपरावउत ।।
पटकू मूछा पाण, कै पटकू निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ।।

(हे महाराणा प्रताप ! यदि आपने अकबर को अपने मुख से बादशाह कहा है तो समझलो कि सूर्य पश्चिम दिशा मे उगने लगा है

हे दीवान ! क्या मै अपनी मूंछो पर ताव दू या अपनी तलवार से ही आत्मघात कर लू ? इन दोनो मे से एक बात आप मुझे लिख भेजियेगा.)

यह पत्र महाराज पृथ्वीराज का स्वामिभक्त सेवक चारण सूरचद टापरिया महाराणा प्रताप के पास ले गया था. इस पत्र से एक बात स्पष्ट होती है कि

१ पातल=महाराणा प्रताप का काव्य नाम दीवाण=दीवान यहाँ इकलिंगजी के दीवान से तात्पर्य है मेवाड के महाराणाओ को इसी नाम से सबोधित किया जाता है. वे अपने आपको मेवाड का महाराणा न मान कर दीवान मानते हैं. महाराणा तो भगवान इकलिंग स्वय है इकलिंग उदयपुर के महाराणाओ के इष्टदेवता है. इकलिंग का भव्य व प्राचीन मदिर उदयपुर-नाथद्वारा सडक पर अवस्थित है.

महाराणा प्रताप ने अकबर को अवश्य बादशाह कह कर अपने संधि-पत्र मे सम्बोधित किया होगा, तब ही पृथ्वीराज ने इसे अपने पत्र मे दोहराया है.

वैसे वह अकबर जो प्रताप से आठो याम अत्यन्त भयभीत रहा करता था तथा येन केन प्रकारेण वह उन्हे अपनी अधीनता स्वीकार करवाना चाहता था, मन ही मन महाराणा का निकदन चाहता था. पृथ्वीराज से अकबर की यह मन स्थिति छिपी न रह सकी और उन्होने उसे लक्ष्य कर एक ऐसा दोहा लिखा जो इतिहास और साहित्य मे विशिष्ट स्थान रखता है—

माई अहडा पूत जण, जहडा राण प्रताप,
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणे साप।

(हे मा' पुत्र उत्पन्न करो तो ऐसा करो कि जैसे राणा प्रताप. जिनसे आतकित होकर अकबर रात को सोते हुए भी ऐसा चमकता है जैसे सिरहाने सॉप आने से लोग चमकते हो)

महाराणा प्रताप की अन्यतम विशेषताओ को लेकर कवि ने अनेक प्रशस्ति दोहे लिखे है कई विद्वानो ने इन निम्नलिखित दोहो को भी पत्र का अग मान कर उसे उस दृष्टि से प्रकाशित करवाया है, पर वस्तुत वे पत्र के अग नही होकर उनके यशोगान मे कहे गये दोहे है—

धर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणा नरिंदा घेरियो, रहै गिरदा राण ।।१।।

पातळ, राण प्रवाडमल, बाकी घडा विभाड।
खूदाडै कुण है खुरा, तो ऊभा मेवाड ।।२।।

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझकै, जाण सिराणे साप ।।३।।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहाळो तुरकडा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी ।।४।।

सह गावडिया साथ, एकण वाडै वाडिया।
राण न मानी नाथ, ताडै साड प्रतापसी ।।५।।

पातळ पाघ प्रमाण, साची सागाहर तणी।
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी ।।६।।

सहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर तणी।
राणो खिमै न रास, प्रबळो साड प्रतापसी ।।७।।

चोथो चीतोडाह, बाटो बाजतो तणो ।
माथै मेवाडाह, थारै राण प्रतापसी ।।८।।

वाही राण प्रतापसी, बगतर मे बरछीह ।
जाणक भीगर जाळ मे, मुह काढ्यौ मच्छीह ।।९।।

वाही राण प्रतापसी, बरछी लच-पच्चाह ।
जाणक नागण नीसरी, मुह भरियो बच्चाह ।।१०।।

पातळ घड पतसाह री, एम विधूसी श्राण ।
जाण चढी कर बदरा, पोथी वेद पुराण ।।११।।

उपर्युक्त दोहो के अतिरिक्त कही कही निम्न पाँच दोहो को भी पत्र का अग मान कर प्रस्तुत किया गया है, पर ये दोहे भी प्रताप के प्रशस्ति के है, पत्र का अग नही

(१) अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजळ ।
मेवाडो तिण माँह, पोयण फूल प्रतापसो ।।

(२) अकबर घोर अधार, ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागै जग-दातार, पोहरै राण प्रतापसी ।।

(३) अकबर एकण वार, दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार, रहियौ राण प्रतापसी ।।

(४) हिन्दू-पति परताप, पत राखी हिदवाण री ।
सहे विपति सताप, सत्य सपथ करि आपणी ।।

(५) चपो चीतोडाह पोरस तणौ प्रतापसी ।
सौरभ अकबरसाह, अळियळ आभडियो नही ।।

हमारे निजी ग्रन्थालय के एक हस्तलिखित ग्रथ मे, जिसमे अनेक कवियो के दोहो का सुदर सग्रह है उसमे निम्न दो दोहे सूराइच टापरिया के कहे हुये है, जिन्हे ऊपर महाराजा पृथ्वीराज रचित माना गया है—

(१) चापौ चीतोडाह, पोरस तणौ प्रतापसी,
सोरभ अकबरसाह, अळियळ आभडियो नही

(२) पातळ पाघ प्रमाण, साची सागाहर तणी ।
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी ।।

यह सूराइच टापरिया वही व्यक्ति हे जिसे पृथ्वीराज ने पत्र-वाहक के रूप मे महाराणा प्रताप के पास भेजा था इन्हे अन्यत्र सूरचद टापरिया भी कहा गया है

उपर्युक्त प्रथम ग्यारह दोहो का भावार्थ इस प्रकार है—

[भावार्थ—जिसकी भूमि विकट है, समय अनुकूल है और जो स्वाभिमान को कभी नही छोडता, वह महाराणा पहाडो मे निवास करता हुआ भी राजाओ से घिरा रहता है ।।१।।

हे युद्ध प्रवीण ! शूरवीर महाराणा प्रताप ! तुम विकट सेनाओ का सहार करने वाले हो तुम्हारे रहते मेवाड को कौन जीत सकता है. ।।२।।

माता को ऐसा पुत्र उत्पन्न करना चाहिये, जैसे माहाराणा प्रताप, जिसके स्मरण मात्र से अकबर ऐसे चौका करता है, मानो उसके सिरहाने साप आ गया हो ।।३।।

हे मुसलमानाधिपति अकबर ! तेरा तेज भी गजब का है, जिसके सामने राणा प्रताप के अतिरिक्त सभी अन्य राजागण नत-मस्तक होगए ।।४।।

हे अकबर ! तू ने सब राजा रूपी बैलो को एक ही बाडे मे डाल दिया पर प्रताप रूपी साड अब भी गरज रहा है उसको तुम नही नाथ सके ।।५।।

महाराणा सागा के पौत्र महाराणा प्रताप की ही पाघ सच्ची है जो अकबर के समक्ष सदैव खडी रही. कभी झुकी नही ।।६।।

सभी राजा रूपी बछडे अकबर के बधन मे बध गये—उसके आधीन हो गए, पर प्रताप रूपी साड गरज रहा है वह अपने आपको कैसे नथवा सकता है ।।७।।

हे चितौड और मेवाड के स्वामी महाराणा प्रताप ! घड़ी का चौथा हिस्सा, पाव घडी (अर्थात् पाघडी) तेरे ही सिर पर अनम्र रही है ।।८।।

राणा प्रताप की बरछी शत्रु के कवच को चीर कर ऐसे बाहर निकली जैसे मछली ने जाल से अपना मुह बाहर निकाला हो ।।९।।

राणा प्रताप की चलाई हुई बरछी इस प्रकार शत्रु की आतो को लेकर बाहर निकली, जैसे कोई सर्पिणी अपने बच्चो को मुह मे लेकर बिल से बाहर निकली हो ।।१०।।

प्रताप ने अकबर की सेना को ऐसे तहस नहस कर डाला जैसे किसी बदर के हाथ मे वेद व पुराणो के ग्रन्थ पडने पर वह बडी आसानी से उनको फाड कर फेक देता है ।।११।।]

पत्र को प्राप्त करते ही, स्वतत्रता-दीपक के रक्षक, वनचारी, उस अमर सेनानी का सुप्त स्वाभिमान जाग उठा. शरीर के अग फडकने लगे और रोगटे खड़े

हो गये अपने पूर्वजो का गौरव और स्वतत्रता की ज्योति को सदैव प्रज्वलित रखने वाले असख्य वीरो के बलिदान का स्मरण कर, उनकी क्षणिक कमजोरी तिरोहित हो उठी। ग्लानि नष्ट होगई, बच्चो की भूख प्यास भूल गए और वक्षस्थल सगर्व उन्नत कर उन्होने जो उत्तर दिया, वह आने वाले युगो तक, जब कभी हमारा राष्ट्र इसी प्रकार तद्रा मे आत्म-प्रतिष्ठा खो बैठेगा, हमे प्रेरित कर विश्व मे पुन प्रतिष्ठित करेगा।

महाराणा का उत्तर—

तुरक कहासी मुख पतो, इण तन सूँ इकलिग।
ऊगै जाँही ऊगसी, प्राची बीच पतग ।।१।।
खुसी हूत पीथळ[1] कमध, पटको मूछा पाण ।
पछटण है जेतै पतो, कलमा सिर केवाण ।।२।।
साग, मुड, सहसी सको, सम जस जहर सवाद।
भड पीथळ जीतो भला, वैण तुरक सू वाद ।।३।।

[भावार्थ— भगवान शिव की शपथ, मेरे मुख से अकबर सदैव तुर्क ही कहलाएगा. सूर्य, जिस पूर्व दिशा मे उगता है उसी ओर उगेगा, पश्चिम मे कदापि नही ।।१।।

हे पृथ्वीराज राठौड ! जब तक प्रताप मुसलमानो के सिर पर अपनी तलवार से प्रहार करने को जीवित है, आप अपनी मूछो पर निशंक ताव देते रहियेगा ।।२।।

अन्य राजागणो (जिन्होने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली है) की कीर्ति मुझे विष-वत लगती है अधीनता स्वीकार करने के बनिसबत प्रताप तो अपने सिर पर तलवारो के वार ही सहन करना पसद करेगा वीरवर पृथ्वीराज ! आप चाहे तो तुर्क से (अकबर से) वाद मे विजय प्राप्त कर सकते हैं ।।३।।]

उपर्युक्त पत्रोत्तर से एक विशेष तथ्य और भी उभर आता है (जिस ओर साहित्यकारो का ध्यान नही गया है) कि प्रात स्मरणीय महाराणा प्रताप एक कुशल कवि भी थे इस सबध मे और शोध-कार्य करने की अत्यन्त आवश्यकता है.

यह तो निश्चित है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार के दरबारी कवि नही थे और 'वीर विनोद' के आधार पर यह भी सत्य है कि पृथ्वीराज अकबर के दरबार के मनसबदारो की सूची मे नही थे तब प्रश्न होता है कि पृथ्वीराज अकबर के यहाँ किस हैसियत से रहते थे? कर्नल टॉड ने अपने इतिहास मे एक ऐसी विचित्र घटना का उल्लेख किया है[2] जिसका उल्लेख राजस्थान के किसी इतिहासकार ने तथा किसी शोधधर्मी साहित्यकार ने अद्यावधि नही किया है —

१. पीथल—पृथ्वीराज राठौड का काव्य नाम

२. टॉड कृत 'राजस्थान का इतिहास' मे 'मेवाड का इतिहास' पृ. २०२ अनुवादक : श्री केशव-कुमार.

'प्रताप के उस पत्र को बादशाह ने पृथ्वीराज नामक श्रेष्ठ राजपूत सरदार को दिखाया पृथ्वीराज बीकानेर के राजा का छोटा भाई था और वह इन दिनो मे अकबर बादशाह के यहाँ कैदी था उसके कैदी होने का कारण यह था कि उसमे राजपूती स्वाभिमान था. दूसरे राजाओ की तरह वह अकबर की अधीनता स्वीकार करने के लिये तैयार न था इसलिये वह कैद किया गया था और बन्दी अवस्था मे वह बादशाह के यहाँ जीवन व्यतीत कर रहा था.'

उपर्युक्त अति रोमाचक घटना कितनी इतिहास सम्मत है वह तो इतिहास-विशेषज्ञो पर छोड देते है, पर इससे एक बात की सपुष्टि हो जाती है कि पृथ्वीराज बचपन से ही अत्यन्त स्वाभिमानी थे और साथ ही यह भी सभव है कि जब उनके अग्रज महाराजा रायसिहजी ने प्रथम बार भेट आदि लेकर उन्हे बादशाह के दरबार मे भेजा था, तब अपने इसी अक्खड व निर्भिक स्वभाव के कारण, बादशाह ने इनके व्यवहार को स्वभावगत विशेषता न समझ कर, इसे उद्दण्ड व्यवहार मान लिया हो और उन्हे नजर कैद कर दिया हो. निरतर वही रह कर और अपने चारित्रिक तथा अन्य असामान्य गुणो के कारण वे बादशाह के प्रिय पात्र बने होगे. इसी विश्वासपात्रता के कारण भविष्य मे उनको सेना का मुख्य पद देने मे भी बादशाह को हिचकचाहट न हुई और क्रमशः बादशाह पर अपने व्यक्तित्व की वह अमिट छाप छोडी कि पृथ्वीराज की मृत्यु पर, बादशाह कह उठे—

'पीथळ सौ मजलिस गई.'

कदाचित इसी घटना के कारण यह वाद भी उत्पन्न हुआ कि पृथ्वीराज अकबरी दरबार मे थे?

वीर

पृथ्वीराज जगप्रसिद्ध वीर और बादशाह अकबर के बडे सम्मान्य व विश्वासपात्र सेनापति थे. यही कारण है कि बादशाह ने इनको अनेक बार सेनापति अथवा सहायक सेनापति बना कर युद्ध विजय के लिये भेजा था एक सच्चा वीर सदैव आत्मविश्वासी और कृतनिश्चयी होता है और कहना न होगा कि उनमे ये दोनो गुण कूट-कूट कर भरे हुए थे.

'दयाळदास की ख्यात' मे ऐसे कई प्रसग है जो इनके आत्म विश्वास व वीरता के परिचायक है कहते है कि एक बार बादशाह के कुछ अप्रिय बोल के कारण पृथ्वीराज के छोटे भाई अमरसिह डाकू बन गए. बादशाह ने कहा कि अमरसिह पकडा जायेगा, पर पृथ्वीराज ने कहा कि अमरसिह कभी पकडा नही जायेगा और हुआ भी वही. 'दयाळदास की ख्यात' मे इसका वर्णन इस प्रकार है—

'जिणा दिना अमरसिघजी पातसाहजी सू केई बोल माथै बारोटिया हुवा. सु हजार दोय राजपूता सू खालसौ लूटै. तिणरी मालम हजरत मे हुई तद आरबखा

को हुकम दिया, जो ग्रमरू को पकड कर यहाँ ले ग्रावो तठै पृथ्वीराजजी मालम करी जो हजरत ग्रापसू बेमुख है सु सजावार करणै जोग्य है ग्रमरू हमारा भाई है पण गिरफदार होणै का नही दूसरा उसके ऊपर जायगा सो मारया जायगा. तद पातसाहजी कया— 'पकडया ग्रावैगा.' पृथ्वीराजजी कयो – 'पकडया नही ग्रावैगा.'

हजरत सू मालम हुई जो ग्रमरसिघ मारया गया है तद पातसाहजी पृथ्वीराज नै बुलाय'र कयो "पृथ्वीराज ग्रमरू को पाणी देवो" तद कयो, "हजरत नही देऊ, वात भूठी है" पीछे दूजी डाक लागी महाराज,[1] ग्रारबखा मारिया गया. ग्रमरसिघजी का ऊपरला धड उड हौदे मे सामल हुवा. जहाँ तेरै कटारी का वार हुग्रा तद पातसाहजी क्या— या ग्रल्ला. ग्राफरीवाद है ग्रमरू के ताई. हे पीथा! ग्रमरू बडा हिन्दू था वो उडणा शेर था ग्ररू पीथा तुम कु भाई का भरोसा बहोत हो रया था सु तू बी धन्य है तुमारा वचन बहोत नेक हुवा'

महाराज पृथ्वीराज राठौड के ग्रनुज ग्रमरसिंघ निश्चय ही एक स्वाभिमानी व वीर योद्धा थे, जिनकी यशगाथा से राजस्थानी जन-मानस मुखर उठा. ग्रपने कार्य से वे इतने लोकप्रिय हुए कि उन पर ग्रनेक कवियो ने काव्य रचे. **बाई पद्मा सादू** रौ कह्यौ, 'गीत बीकानेर राठौड ग्रमरसिंघ रो' एक ऐसी ही रचना है—

सहर लूटतो सदा थू देस करतौ सरद,
कहर नर पडी थारी कमाई ।
उजागर झाळ खग जैतहर ग्राभरण,
ग्रमर ग्रकबर तणी फौज ग्राई ।।
बीकहर सीह धर मार करतो वसू,
ग्रभग ग्रर ब्रद तो सीस ग्राया ।
लाग गयणाग भुज तोल खग ळकाळा,
जाग हो जाग कलियाण जाया ।।
गोळ भर सबळ नर प्रगट ग्ररगाहणा,
ग्ररबखाँ ग्रावियौ लाग ग्रासमाण ।
निवारो नीद कमधज ग्रबै निडर नर,
प्रबळ हुय जैतहर दाखवौ पाण ।।[1]

१ (अ) श्री रावत सारस्वत द्वारा सम्पादित तथा सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर द्वारा प्रकाशित 'डिंगल गीत' पृ. २७ टिप्पणी पृ ६. वे कहते है कि पद्मा ने अमरसिंघ को उपर्युक्त गीत गाकर जगाया और अमरसिंह के युद्ध मे वीरगति प्राप्त होने पर पद्मा भी अन्य रानियो के साथ सती हो गई

(ब) कर्नल टॉड ने अमरसिंह को 'उडणा शेर'(Flying Tiger) कहकर उसकी प्रशसा की है.

[भावार्थ— तू सदा शत्रुओ के शहरो को लूटता और उनके प्रदेशो पर विजय प्राप्त करता है हे जेतसी के बीर पौत्र तुम्हारी वह कमाई आज कठिन हो गई है अमरसिंघ ! तलवार उठा अकबर की फौज आ गई है ।

हे सिह सदृश पराक्रमी! हे बीका के वशज! तू शत्रुओ पर आक्रमण कर उनके देश पर अधिकार करता था वे शत्रु सिर पर आ गये है हे कल्याणमल के पुत्र जाग और तलवार ग्रहण कर आकाश से जा लग

हे जैतसी के पौत्र ! अपना पराक्रम दिखा क्योकि शत्रु आरबखाँ तोपो मे गोले भर आसमान से लगा आ रहा है हे राठौड वीर ! अब तो नीद छोड]

'दयाळदास री ख्यात' मे दूसरा प्रसग महाराज पृथ्वीराज के अग्रज महाराज रामसिह से सबधित दिया गया है यह प्रसग अपने भाई का बदला लेने की घटना से है —

'आ वात सवत् १६५६ री है जद पृथ्वीराजजी विराजता हा सो रामसिघजी कितेक साथ सू किल्याणपुर मे उतर्‍या हा तठे राणी गगाजी रै कयै मू ठाकुर मालदेजी साथ कर रामसिघजी नु चूक करण चढिया अर दरबार री पण छाप रुके मे छी पीछै गाव किल्याणपुर मे रामसिघजी झगडो कर काम आया पीछै पृथ्वीराजजी दिल्ली सू आय रामसिघजी रा वैर लियो ठाकर मालदेजी ने वणी रीत नु मारिया रामसिघजी काम आया तिण भाव रो गीत पृथ्वीराज कह्यौ.

(अनुवाद — यह घटना सवत् १६५६ की है जब पृथ्वीराजजी जीवित थे. एक बार रामसिघजी अपने कुछ सैन्य के साथ कल्याणपुर मे रुके थे तब रानी गगाजी के कहने से उन्होने ठाकुर मालदेजी को मारने के लिये आक्रमण किया. दरबार की मोहर भी रुके (पत्र) मे थी. बाद मे कल्याणपुर मे रामसिघजी युद्धभूमि मे खेत रहे (जब पृथ्वीराजजी को इसका समाचार मिला) तो पृथ्वीराजजी दिल्ली से आये और रामसिघजी का बदला लिया. ठाकुर मालदेजी को उसी प्रकार से मारा रामसिघजी युद्ध मे काम आये तत्सबधी गीत पृथ्वीराज ने बनाया)

हिन्दुस्तानी अकेडेमी, प्रयाग द्वारा प्रकाशित व ठाकुर रामसिघ व प सूर्यं-करण पारीक द्वारा सपादित 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की भूमिका मे महाराज पृथ्वीराज की वीरता सबधी दो प्रसग दिये गये है—

(१) जब बादशाह ने अपने ही भाई मिरजा हकीम से लडने के लिये काबुल पर धावा किया, उस समय पृथ्वीराज सेना के अग्र भाग मे विद्यमान थे इस युद्ध मे विशेष शूरवीरता का परिचय देने के लिये पुरस्कार स्वरूप इनको पूर्वी राजस्थान मे

गौगराना (गागरौन) प्रान की जागीरी प्रदान की गई थी [१]

(२) 'मुह्ता नैणसी री ख्यात' मे गौगरान प्रात के साथ साथ खीचियो से युद्ध वर्णन का भी उल्लेख है— 'तठा पछै वळै अेक वार राव प्रिथिराज कल्याणमलोत बीकानेरियातू गढ गागुरण दी थी. तद पिण वेढ अेक हुई. तिकी राव प्रथीराज जीती. खीची हार्‌या '

इसके पूर्व सन् १५७४ (सवत १६३०) के आसपास जब अकबर ने रायसिह को गुजरात विजय के लिये भेजा था तब पृथ्वीराज भी बीकानेर की फौज के साथ थे

अपनी मृत्यु के चार वर्ष पूर्व सवत् १६५३ मे अकबर बादशाह ने अहमदनगर के युद्ध मे पृथ्वीराज को प्रधान सेनापति बनाकर भेजा था, वहाॅ पर भी उन्होने विजय प्राप्त की स्वतत्र रूप से सेनाध्यक्ष बना कर भेजना, बादशाह के अनुग्रह का सूचक तो है ही, पर साथ ही साथ उनकी कार्यक्षमता. सैन्य सचालन, वीरता और विश्वासपात्रता का सूचक है

इसी प्रकार अपनी मृत्यु के समय, जिसकी घोषणा उन्होने बहुत पूर्व ही कर रक्खी थी, बादशाह अकबर का उनको काबुल जैसे अत्यन्त दूर व दुर्गम स्थल पर भी भेजना, और वहाँ पर कम समय मे विजय प्राप्त करना उनकी रण कुशलता तथा अद्भुत् पराक्रम और साहस का परिचायक है.

कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज की वीरता के विषय मे लिखा है, "Prithi Raj was one of the most gallant chieftains of the age and like the

१ (अ) 'यह प्रसिद्ध स्थान कोटा शहर से ४५ मील दक्षिणपूर्व मे और झालावाड नगर से तीन मील उत्तरपूर्व मे है इसके तीन ओर कालीसिंध नदी है और राजस्थान के प्रमुख किलो मे इसका स्थान है यहाँ के तोते अत्यन्त प्रसिद्ध हैं इसमे एक शिलालेख बीकानेर के राठौड कल्याणमल के पुत्र सुल्तानसिंह का है जो उस समय गागरोण का हाकिम था '—राजपूताने का इतिहास, भाग द्वितीय पृ. ३० मे कोटा राज्य का इतिहास, सम्पादकद्वय श्री सुखवीरसिंह गहलोत तथा डा घासीराम परिहार, प्रकाशक हिन्दी साहित्य मन्दिर, मेडतिया दरवाजे के भीतर, जोधपुर

(ब) 'मुहता नैणसी री ख्यात' भाग एक, पृ. २५६. सम्पादक आचार्य प बदरीप्रसाद साकरिया.

(स) अकबरनामा के लेखक अबुलफजल ने भी इस युद्ध का वर्णन किया है तथा खश होकर अकबर के गागुरान की जागीरी देने का उल्लेख किया है.

(द) गागुरान को वीरवर अचलदास खीची ने अपने रक्त से सीचा था.

Troubadour princes of the West, could grace a cause with the soul inspiring effusions of the muse, as well as aid it with his sword; nay in an assembly of the bards of Rajasthan, the palm of merit was unanimously awarded to the Rathore Cavalier."[1]

[पश्चिम के ट्रूबेदार राजाओ की भांति, पृथ्वीराज अपने समय के नरेशो मे से श्रेष्ठतम वीर थे, जो अपनी ओजस्वी काव्यशक्ति द्वारा लोगो मे प्राण फूक सकते थे तो समय पडने पर रणभूमि मे अपने शौर्य का परिचय भी दे सकते थे अधिक कहना व्यर्थ है पर तत्कालीन चारण कवियो के समुदाय मे वे राठौड वीर सर्वोच्च अभिशसा के भागी रहे है]

इन्ही कर्नल टॉड ने उनकी शक्तिशालिनी कविता की आलोचना करते हुये अन्यत्र कहा था कि उसमे दस हजार घोडो की शक्ति है

डॉ एल पी तैस्सितौरी ने उनकी निर्भीकता और स्पष्टता को इस प्रकार व्यक्त किया है — "He was an admiror of courage and unblending dignity and a sworn enemy of degradation and cringing servility. With the same freshness with which he would compose a song in praise of an act of gallantry or of determination performed by a friend or by a foe, he would condemn in verses his own brother, the Raja of Bikaner or even the all powerful Akbar for any act of injustice committed by them"[2]

[पृथ्वीराज पराक्रम और अदम्य स्वाभिमान के अभिशसक थे तथा दैन्य, गुलामी और नैतिक पतन के कट्टर शत्रु थे जिस स्वाभावोचित उदारता के साथ वे किसी मित्र अथवा शत्रु की अपने काव्य मे उसकी प्रशसा कर सकते थे, उसी स्पष्टता के साथ वे अपने भाई, बीकानेर नरेश की ही नही, स्वय बादशाह अकबर तक की भी उनके किसी हीन कार्य के लिये कटु आलोचना कर सकते थे.]

भक्त

सुकवि और सुभट होने के साथ साथ, वे भक्त शिरोमणि भी थे. विचक्षण प्रतिभा सम्पन्न इस भक्त कवि के भक्ति रस से परिपूर्ण अनेक दोहे, गीत और ग्रथ जो हमे आज उपलब्ध है, उनके अनन्य भक्त होने के पुष्ट प्रमाण है. बहिर्साक्ष्य की दृष्टि से भी वे अन्यतम भक्त के रूप मे जनमानस मे प्रतिष्ठित है. इस सबध मे भक्त

---

1 Annals of Mewar, Chapter XI. Page 273

2. Tessitori Veli's Introduction, Page III

कवि नाभादासजी ने अपने अति प्रख्यात ग्रंथ 'भक्तमाल' मे इस पुण्यश्लोक भगवद्भक्त कवि के प्रति कहा है—

सवैया गीत सलोक बेलि, दोहा गुण नवरस,
पिगल काव्य प्रमाण, विविध विधि गायो हरिजस ।
परदुख, विदुख श्लाघ्य वचन, रजता जु विचारै,
अर्थ वित्त निर्मल सबै साग्ग उर धारै ।।
रुकमणि लता वरनन अनूप, वागीश वदन कल्याण सुव,
नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव।।

इस छद से अेक बात और स्पष्ट होती है कि चारणो ने पृथ्वीराज को अपने से भी श्रेष्ठ कवि मान लिया था. उनका यह मानना था कि डिगल भाषा मे चारणो के अतिरिक्त कोई अन्य श्रेष्ठ कवि हो ही नही सकता पर पृथ्वीराज की काव्य-कला के समक्ष उन्हे अपनी धारणा का त्याग करना पडा अपने काल के सर्वमान्य कवि दुरसा आढा ने भी उनके अद्वितीय काव्यत्व को स्वीकार किया था

साथ ही साथ भक्तमाल के टीकाकार श्री प्रियादास ने भी अपनी 'भक्तिरस बोधिनी टीका' जो सवत् १७६६ मे लिखी गई थी, निम्न छदो मे कवि की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुये कवि के जीवन के तीन अति प्रसिद्ध भक्ति-प्रसगो का वर्णन किया है—

(१)

मारवाड देस बीकानेर को नरेस वजै,
पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज है।
सेवा, अनुराग और विषै विराग यशो
रानी हू पहिचानी नांहि, मानो देखि आजु हे
गयो हो विदेश तहाँ मानसी प्रवेश कियो
यो नहिं छुवै कैसे सरे मनु काजु है।
बीतै दिन तीन प्रभु मदिर न दीठ परै,
पीछै हरि देखि भयो सुख का समाजु है ।

(२)

लिखि के पठायो देस सुदर सदेश इहै,
मदिर न देखै हरि बीते दिन तीन है।
लिख्यो आयो सांच, वाच अति ही प्रसन्न भयो,
लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है।
सुनो एक और यो प्रतिज्ञा करी हिये धरी,
मथुरा शरीर त्याग करै रस लीन है।

पृथ्वीपति जानि कै मुहिम दई काबिल की,
बल अधकाई नही काल के आधीन है ।।

(३)

जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन,
कलप समान बीते पल न विहात है ।
आगम जनाय दियो चाहे इन्हे साचो कियो,
लियो भक्तिभाव जाकै छायो गात गात है,
चल्यो चढि साढनी पै, लई मधुपुरी आन,
करिकै सनान प्रान तजै सुनि बात है ।
जै जै धुनि भई व्यापि गई चहुं ओर अहो,
भूपति चकोर जस चद दिन रात है ।।

[भावार्थ — मरूभूमि के बीकानेर राज्य के नरेश कहलाने वाले पृथ्वीराज, भक्तराज और कविराज दोनो ही थे. विषयो से उदासीन और भक्ति मे लीन होने के कारण एक बार जब उनकी पत्नी सम्मुख आई तो वे उसे भी नही पहिचान सके, उसे भूल गये

दूसरे प्रसग मे कवि के विदेश जाने का उल्लेख है और वहाँ मानसी पूजा मे तीन दिनो तक उन्होने अपने इष्ट देव श्री लक्ष्मीनारायणजी (बीकानेर मे कोट गेट के भीतर एक प्रसिद्ध राज मदिर मे स्थापित भगवान लक्ष्मीनारायण की मूर्ति) के दर्शन न हो सके. उन्हे बडा आश्चर्य हुआ कि मदिर मे प्रतिष्ठित भगवान का क्या हुआ ? बीकानेर मे पुछवाने पर पता चला कि यह वास्तव मे सत्य था कि विशिष्ट कारणो के हेतु मूर्ति तीन दिनो के लिये मदिर के बाहर प्रतिष्ठित की गई थी और उसके पश्चात् उसे यथास्थान प्रतिष्ठित कर दिया गया था

तीसरा प्रसग इससे भी अनोखा है कवि ने प्रतिज्ञा की थी कि उनका देहान्त मथुरा मे विश्रान्त घाट के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर नही होगा. बादशाह ने यह जान कर परीक्षा के हेतु उन्हे काबुल विजय करने का आदेश दिया. पृथ्वीराज वहाँ तुरन्त विजय प्राप्त कर लेते है और ऊटनी पर चढ कर मथुरा आकर अपनी देह छोड देते है]

'दयाळदास री ख्यात' मे दयाळदासजी ने उपर्युक्त द्वितीय प्रसग की पुष्टि की है— 'अर प्रथीराजजी बडा भक्त हा सु मानसी पूजा करता सु आगरै बैठा लक्ष्मीनाथजी री मूरत बीकानेर मे बायर पधराई थी तिका बताय दीनी [1]

---

१. दयालदास री ख्यात, भाग २, पृ. १३३.

'गजेटियर ऑफ दी बीकानेर स्टेट' पृ २६ मे श्री पॉलेट ने भी इस घटना का वर्णन किया है.

एक अन्य प्रसग भी बडा रोचक व चमत्कारिक है 'वेलि' की रचना समाप्त कर कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ द्वारिका की ओर अपने परिग्रह के साथ प्रस्थान किया मार्ग मे एक उपयुक्त स्थान पर पडाव डाला गया. नजदीक मे ही एक दूर देश से यात्रा करते आ रहे व्यापारी ने भी अपना डेरा डाला रात्रि के समय उस व्यापारी ने अपने डेरे मे कवि मुख से वेलि सुनी. व्यापारी तो भाव विभोर हो गया प्रात काल कवि ने पुन अपनी यात्रा प्रारभ की. परन्तु कुछ दूर जाने पर कवि को स्मरण हुआ कि 'वेलि' तो वही रह गई है कवि ने तुरत एक सेवक को उसे लाने के लिये प्रेषित किया, पर सेवक के आश्चर्य का पारावार न था कि वहाँ व्यापारी के पडाव के चिन्ह भी न थे जबकि पृथ्वीराज के डेरो के चिन्ह पृथ्वी पर अकित थे। सेवक ने लौटकर सारा वृतान्त पृथ्वीराज को दिया पृथ्वीराज को एकाकी विश्वास न आया वे स्वय लौटे और तब उनकी समझ मे आया कि हो न हो, व्यापारी के रूप मे उनके इष्टदेवता ही रात्रि को उनसे वेलि-पाठ सुन रहे थे 'वेलि' तुलसी के एक पौधे के नीचे सुरक्षित पडी हुई थी।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे भी उपर्युक्त घटनाओ का वर्णन ब्रज भाषा मे मिलता है. इस ग्रथ की 'भाव प्रकाश टीका' पर से एक अन्य बात और प्रकट होती है कि वल्लभ सम्प्रदाय मे उनका विशिष्ट स्थान था टीका का कुछ अश यहाँ उध्दृत है[1]—

'अब श्री गुसाईजी के सेवक पृथ्वीसिहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिहजी के बेटा तिनरी वार्ता के भाव कहतु है. भाव प्रकार—ये राजस भक्त है लीला मे इनका नाम प्रभावती है ये श्रुतिरूपा ते प्रकटी हैं, ताते उनके भाव रूप है'

हिंदी गद्य के विकास मे 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' ग्रथ का प्रदेय अमूल्य है यह टीका भी ब्रजभाषा के प्राचीन पर प्रौढ गद्य स्वरूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे 'मानसी पूजा' विषयक दृष्टान्त भी है, पर वह कुछ भिन्न है— 'और राजा परदेस जाय तब मानसी करे। सो एक समै राजा परदेस गये तब बीकानेर के ऊपर शत्रु चढ आये तब दोनो और तें शत्रु घेर लिये तब श्री ठाकुरजी ने तीन दिन ताई शत्रुन ते लडाई करी। सु ठाकुर के मदिर के किंवाड तीन दिन ताई भीतर ते बद रहे। काहु ते खुले नही। पाछे चौथे दिन जब शत्रु भाजि गये तब मदिर के किंवाड खुले। सो यह बात राजा ने परदेस मे

1 शुद्धाद्वैत अकादमी, काकरोली, खड ३, पृ. २३८ और २४६.

मानसी करत मे जानी । सो उनने दीवान को लिखी पठाई । सो दीवान पत्र वाचि के चकित ह्वै रह्यौ । सु राजा पृथ्वीसिहजी ऐसे श्री गुसाईजी के कृपा पात्र भगवदीय भयै ।'

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. गौरीशकर हीराचद ओझा ने पृथ्वीराज की भक्ति सबधित द्वारिका यात्रा और वेलि-पाठ का उल्लेख भी अपने ग्रथ मे किया है[1]—

'कहते है कि 'वेलि क्रिसन रुकमणि री' को पूर्ण कर जब उसे द्वारिका मे भगवान श्रीकृष्ण के चरणो मे अर्पित करने जा रहे थे, तो मार्ग मे द्वारिकानाथ ने स्वयं वैश्य के रूप मे मिल कर उक्त पुस्तक को सुना था '

डॉ ओझा ने उनकी मानमी-भक्ति की भी पुष्टि की है. — 'श्री लक्ष्मी-नारायण का इष्ट होने से वह उसकी मानसिक पूजा किया करते थे '

प्रसिद्ध भक्त और राष्ट्र कवि दुरसा आढाजी ने वेलि को पॉचवाँ वेद और उन्नीसवॉ पुराण कहा है —

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण
वेलि तास कुण करै बखाण ।
पाचमौ वेद भाखियौ पीथळ,
पुणियौ उगणीसमौ पुराण ।।

(भावार्थ — रुकमणि के रूप और लक्षण आदि की प्रशसा वेलि से अधिक और कौन काव्य कर सकता है. पृथ्वीराज ने वेलि का निर्माण क्या किया जैसे पॉचवॉ वेद और उन्नीसवॉ पुराण ही निर्मित कर दिया हो)

आढाजी ने भागवतकार व्यासजी से कवि की तुलना कर, अन्य भक्तो मे उनके महत्व को शीर्षस्थ कर दिया है—

म्है कहियौ हरभगत प्रिथीमल,
आगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समोवड,
ब्रह्म तणा भाखिया वड ।।

(मै सत्यपूर्वक कहता हूँ कि पृथ्वीराज श्रेष्ठ हरिभक्त है. जिस प्रकार व्यासजी ने ब्रह्म का गुणानुवाद किया है उसी प्रकार पृथ्वीराज ने भी अगोचर व अगम्य ब्रह्म का गुणानुवाद किया है.

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे महाराज पृथ्वीराज राठौड किस प्रकार गोसाई विट्ठलनाथजी के शिष्य हुये, उसका वर्णन भी सविस्तार किया गया है—

१ बीकानेर राज्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. १६०

'ये पृथ्वीसिंहजी बीकानेर के राजा कल्याणसिहजी के यहाँ जन्मे सो बालपणे सो इनको चित्त साधु सगति मे रहे देश देश के साधु वहाँ आवते तिनसे यह मिले सो यह राजा भयै तब प्रथम ही गोकुल मथरा की जातरा को चले। सो मथराजी मे आए तब चौबेन सो पूछे जो ऐसो कोई महापुरुष बतावो जासू मिलिये तब चोबे ने कही जो राजा यो तो बडे बडे महापुरुष यहाँ ब्रजमडल मे है परि गोकुल मे श्री गोसाईजी विठ्ठलनाथजी बडे प्रसिद्ध हैं। बडे बडे राजा, सत, महात्मा, गुनी, ज्ञानी सब इनकी वदना करता है। ताते उनसे ते मिलबो आछो है। तब राजा तत्काल श्री गोकुल आये. सो ता समै श्री गुसाईजी आपु ठकुरानी घाट पर सध्या वन्दन कर रहे है। सो राजा को श्री गुसाईजी के दर्शन भयै सो तेज पुज अति उज्जवल अलौकिक दर्शन भये। सो राजा दर्शन करके विस्मित हुय रह्यो। पाछे अपने मन मे कहे जु ऐसे तेजस्वी पुरुष के दर्शन तो आज ताँई इस पृथ्वी मडल पर भयै नही। इतने मे श्री गुसाईजी आपु सध्या वन्दन करी चूके तब आपु राजा की ओर देखे तब राजा श्री गुसाईजी कू दण्डवत कर विनती किये। जो महाराजाधिराज! कृपा करि मोको सेवक कीजिये। आज मेरो जन्म सफल भयो। तब श्री गुसाईजी कृपा करि राजा का नाम सुनाई सेवक किये। पाछै एक व्रत कराय निवेदन करवाये। पाछे राजा को आप कहे जो राजा अब तुम घर जाय भगवत सेवा करी पाछै से गुसाईजी आप राजा को श्री बालकृष्णजी को स्वरूप पधराय सेवा की। सब रीति बताये और आशीर्वाद दिये जो तुमको काल कबहू बाधा न करेगो। श्री ठाकुरजी के सदा सनमुख रहोगे। पाछै राजा प्रसन्न होई अपने देश आये। भगवत सेवा प्रीतिपूर्वक करण लागै।'

श्री अगरचद नाहटा को अपने हस्तलिखित ग्रथो के एक गुटके मे एक अज्ञात कवि मोहनरामजी का काव्य उपलब्ध हुआ है यह गीत भी उनके हरिभक्त होने को प्रमाणित करता है तथा कवि द्वारा वेलि की उपमा गगा से दी है. काव्याश उद्धृत है —

गीत पृथ्वीराजजी रो मोहनरामजी रो कह्यो—

पढिवै गग प्रवाह प्रवाणी,
सुणता अम्रित पान समथ।
माड प्रभू रो माथ ग्रथ माखण,
परगट कीधी लता ग्रंथ ॥

(भावार्थ — पृथ्वीराज ने नवनीत सम हरिभक्ति के श्रेष्ठ ग्रथ का निर्माण किया है, जिसका पठन पावन गगा के प्रवाह के सदृश है और जिसके श्रवण मे अमृत-पान करवाने का सामर्थ्य है)

वेलि क्रिसन रुकमणि के अतिरिक्त पृथ्वीराज के जितने भी ग्रथ उपलब्ध हुए हैं, वे सब के सब भक्ति रस के है. अद्यावधि निम्न ग्रथो की शोध हो सकी है और वे सब के सब उपलब्ध है --

(१) विठ्ठल रा दूहा
(२) वसदेवरावउत रा दूहा
(३) दसरथरावउत रा दूहा
(४) भागीरथी रा दूहा.

उपरोक्त ग्रथो के अतिरिक्त जिन फुटकर दोहो, पदो व गीतो की प्राप्ति हुई है, वे अधिकाश वीर रस के है, तथा शेष भक्ति रस के

वेलि मे यद्यपि स्वय कवि ने ग्रथारम्भ मे ही इसको शृ गार ग्रथ मान लिया है—

त्रीवरणण पहिलौ कीजै तिणि
गूथियै जेणि सिगार ग्रथ ।।८।।

परन्तु उसके तुरत बाद ही नौमे छद मे कवि ने नारी के मातृरूप की महिमा का वर्णन कर सारा प्रसग ही बदल दिया है —

दस मासि उदर धरि, वळे वरस दस
जो इहाँ परिपाळै जिवडी ।
पूत हेत पेखता पिता प्रति
वळी विसेखै मात वडी ।।९।।

(जो दस महिनो तक गर्भ मे धारण कर, फिर दस वर्षों तक इस ससार मे जिस प्रकार वात्सल्य से पालन-पोषण करती है, ऐसी पुत्रवत्सला को देखते हुए पिता की अपेक्षा माता ही बडी है)

स्पष्ट ही कवि स्त्री-वर्णन को प्रथम स्थान इसलिये दे रहे है कि पितृ-जाति से मातृ-जाति बडी है. रुकमणि मातृ-जाति की प्रतोक है वे अम्बा है इसलिये सर्वप्रथम उनका वर्णन सुसगत व औचित्यपूर्ण है.

इसी प्रकार कवि ने आठवे छद के प्रथम दुहाले मे प्रसिद्ध भक्त कवि, सुकदेव, व्यास और जयदेव आदि के नामो को उद्धरित कर कहा है कि इन सभी ने जिन्होने शृ गार ग्रथ लिखे है, एकमत है कि सर्वप्रथम स्त्री वर्णन ही होना चाहिये इस दृष्टि से भी कवि ने किसी औचित्य को भग न कर केवल एक परिपाटी का पालन ही किया है.

मेरा नम्र निवेदन तो यह है कि यहाँ जिस 'त्रीवरणण' का उल्लेख हुआ है, उसका अर्थ एक सामान्य नारी से सबधित न होकर स्त्री (लक्ष्मी) से है, जो स्वय अन्यतम शृगार से पूर्ण, धनधान्यादि की देवी विष्णु-पत्नी हैं फिर भोजराज के अनुसार शृगार ही एक मात्र रस है अन्य आठ रस स्वतत्र न होकर मुख्य रस शृगार की हो गतियाँ है कविवर देव ने भी शृगार ही एक मात्र रस है, ऐसा मान कर कहा है कि —

भूलि कहत नवरस सुकवि, सकल मूल सिगार ।
जो सपत्ति दपतिनु की, जाको जग विस्तार ।।

सभव है, कवि ने भी शृगार की इस व्यापकता और उसकी समाहृत शक्ति को ही ध्यान मे रख 'गूथियै जेणि सिगार ग्रथ' का उल्लेष किया हो यदि ऐसा नही होता तो रीतिकालीन कवियो की भाँति इनका शृगार भी कामोत्तेजक होता, परन्तु इसका तो 'वेलि' मे लवलेश भी नही है वह तो भक्ति से आवेष्ठित सात्विक शृगार की रचना है न कि सासारिक शृगार रचना, जैसाकि कई विद्वान इस छद से अर्थ निकालते है

इस कथा का मूल तो महान धार्मिक ग्रथ भागवत का दशम स्कन्ध ही है—

वल्ली तासु बीज भागवत वायौ,
महि थाणो प्रिथिराज मुख ।।

वेलि की घटनाओ का चरमोत्कर्ष और उसकी परिणिति भी भक्ति ही है—

हरिजस रस साहस करे हालिया
मो पडिता वीनती मोख ।
× × × ×
मुगति तणी नीसरणी मडी,
सरग लोक सोपान इळ ।

उपर्युक्त सारे तथ्य पृथ्वीराज को महाकविराज के साथ साथ असदिग्धरूप से भक्तराज प्रमाणित करते है इनकी वीरता और भक्ति से प्रभावित होकर तत्कालीन चारण कवि लाखा ने एक गीत मे पृथ्वीराज के गुणो का वर्णन किया है लाखा राज्यमान्य कवि थे और सभवत यह वही लाखा चारण है जिन्होने सर्वप्रथम वेलि

की टीका ढूढाडी भाषा मे लिखी. लाखा लिखित वह गीत जिसमे कवि के दान, विद्वत्ता, युद्ध-कौशल्य आदि का भव्य चित्रण किया गया है, इस प्रकार है—

गीत पृथ्वीराज कल्याणमलोत रो
बारहट लखौ कहे–

वपि वाधै नतू विराजै अविरच, भले बिहु विध उर नवली भाँति।
प्रभु सू जैतो हेत प्रथीमल, पै सरसो तेतो पुरसाति ।।१।।
गजे राव राठौड प्रथीरज, रूडै अगि रूडी बे रीत
प्रीति जिसी सरस जगपति, पै सो तिसी खत्रीपण प्रीत ।।२।।
अधिकौ नित कलियाण अगौभव, उभैविधि अधिकार अछेह ।
व्है जिम तूझ सनेह सरिस हर, सु सतिय तौ सरिस सनेह ।।३।।
विध बिहु रिध कीजै तव सौ धर, धारण हेकण व्रवण धन।
मनि तू ऊबरै सुरे न मानै, मछर न ऊबरै नरे मन ।।४ ।।[1]

ज्योतिर्विद

सामान्यत प्राचीन कवि बहु विद्या-विशारद हुआ करते थे इसके पीछे भावना थी कि कवि को सर्वज्ञ होना चाहिये एक साथ अनेक शास्त्रो के ज्ञाता होने के कारण उनके काव्य मे अर्थ गाभीर्य व चमत्कारिता अनायास ही आ जाती थी. इस बहुज्ञता के कारण काव्य को बोझिल नही होने देना चाहिये बाह्य ज्ञान और काव्य दोनो के एकमेक हो जाने के पश्चात् ही रसाभिव्यजना मे किसी प्रकार का व्यवधान नही होता. केशव की रामचद्रिका व कुछ अशो मे बिहारी सतसई मे काव्य, जो 'ब्रह्मानद सहोदरम्' होना चाहिये, न होकर ज्ञान का प्रदर्शन भर रह गया है वेलि मे इस प्रकार का अनुभव हमे कही न होता वेलिकार ने स्वय छद स. २९९ मे स्पष्ट कहा है कि वेलि का रसास्वादन करने के लिये निम्न शास्त्रो का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है—

ज्योतिषी, वैद, पौराणिक, जोगी, सगीती, तारकिक सही।
चारण, भाट, सुकवि भाखा, चित्र करि एकठा तो अर्थ कही ।।

(ज्योतिषी, वैद्य, पुराणो का ज्ञाता, योगी सगीतज्ञ, तार्किक, चारण, भाट, भाषा मे शब्द, रस, भावादि का चमत्कार उत्पन्न करने वाले सुकवि सबको एकत्रित किया जाय तो वेलि का पूरा पूरा अर्थ कहा जा सकता है)

उपर्युक्त छद द्वारा कई विद्वान वेलिकार पर आत्मश्लाघा का आरोपण कर सकते है पर वास्तविकता यह है कि इस ग्रथ के अध्येता उपर्युक्त शास्त्रो के ज्ञानाभाव के कारण इसका अर्थ स्पष्ट नही कर पा सके है

१. शोधपत्रिका, उदयपुर वर्ष १८, अक १ महाराज पृथ्वीराज राठौड रचित छप्पय ले श्री सौभाग्य-सिह शेखावत।

कवि का ज्योतिष सबधी ज्ञान विशेषतः निम्न छदो मे चमत्कृत हुआ है—

छद सख्या ७०, ६३, ६६, ११७, १८८, १६३, २११, २१२, २१६, २२२, २२६, २६६ और ३०१

उदाहरण द्रष्टव्य है—

स्यामा कटि कटिमेखला समरपिन
क्रिसा अग मापित करळ ।
भावी सूचक थिया कि भेळा
सिघरासि ग्रहगण सकळ ।।६६।।

(मुट्ठी मे मापी जा सके ऐसी पतली कमर मे रुकमणी ने नवरत्नो से जटित करधनी पहिन रक्खी है, मानो भाग्योदय सूचक नवग्रह सिहराशि (सिह—कटि प्रदेश) पर एकत्रित हुए है)

राशि फलादेश—बारह राशियो मे सिहराशि का स्थान पाँचवाँ है श्री रुकमणी का नाम रकार से प्रारम्भ होने के कारण उनकी राशि तुला हुई सिहराशि पर सारे ग्रहो का आ जाना रुक्मिणी के लिये ज्योतिष की दृष्टि शीघ्र ही बडे लाभ की सूचना देता है

गजरा, नवग्रही प्रोचिया प्रोचे
वळै वलय विधि विधि वळित ।
हसत नखित्र वेधियो हिमकरि
अरध कमळ अलि आवरित ।।६३।।

[रुकमणी ने कलाई पर गजरे और नवरत्नो से जटित पहुचियाँ पहनी जो काले रेशमी डोरो मे विविध रूपो से गुथी हुई थी ये ऐसी शोभायमान थी मानो हस्त नक्षत्र ने चद्रमा को वेध लिया है अथवा भ्रमरो से घिरे आधे खिले कमल हो]

हस्त नक्षत्र— इसमे पाँच तारे होते है तथा इसकी आकृति खुले हुये पजे के समान मानी गई है इसीलिये रुक्मिणी के हाथ के पजे की उपमा हस्तनक्षत्र से दी गई है रुक्मिणी का हाथ रूपी हस्तनक्षत्र गजरा तथा पहुचियाँ रूपी चद्रमा को पार कर गया है हस्त नक्षत्र मे जब चद्रमा का प्रवेश होता है तो वह शुभ माना गया है.

उपर्युक्त दो छदो के उदाहरण से ही हमे कवि के ज्योतिष सबधी विशाल ज्ञान का पता चल जाता है.

सगीतज्ञ

ज्योतिष-शास्त्र के मर्मज्ञ होने के साथ साथ वेलिकार को सगीत मे केवल अभिरूचि ही नही थी, पर वे इसकी बारीकियो से भी पूर्णतया परिचित थे. वेनि

के विभिन्न छदो मे राग रागिनियो का जो वर्णन किया है, वह इसका प्रबल प्रमाण है

आगणि जळ तिरप उरप अलि पिअति
मरुत चक्र किरि लियत मरू ।
रामसरी खुमरी लागी रट
धूया माठा चन्द धरू ।।२४६।।

(भ्रमर आगन मे पडे हुये पानी को पी रहे हैं अर्थात वे जल पृष्ठ को छूते हुये थिरक थिरक कर उड रहे है मानो त्रिसम ताल पर नृत्य विशेष हो रहा है. वायु का चक्राकार घूमना ही मानो मूर्च्छना लेना है. रामसरी और खुमरी नामक चिडियो की रटन हो रही है जैसे वही 'मधुर ध्रुवा' और 'चद्रक ध्रुपद' नामक रागिनियाँ हो)

मूर्च्छना:— सगीत मे एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जाने मे सात स्वरो का जो आरोह अवरोह होता है, उसे मूर्च्छना कहते है मूर्च्छनाएँ इक्कीस प्रकार की होती है

रामसरी —अभिधार्थ मे एक चिडिया विशेष, पर श्लिष्ट मे एक राग विशेष

खुमरी —अभिधार्थ मे एक सकर जाति की चिडिया विशेष पर, श्लिष्ट मे एक राग विशेष

माठा धूया:—मधुर ध्रुपद राग का एक भेद

चन्द धरू.—चन्द्रक ध्रुपद राग का एक भेद.

अब पूरा रूपक इस प्रकार है कि भ्रमरगण मच पर त्रिताल पर नृत्य कर रहे है तथा उस समय ध्रुपद राग की दो रागिनियाँ (मधुर ध्रुपद व चद्रक ध्रुपद बज रही हैं)—

वीणा डफ महुयरि वस बजाए
रोरी करि मुख पचम राग ।
तरुणी तरुण विरहि जण दुतरणि
फागुण घरि घरि खेलै फाग ।।२२७।।

(वीणा, डफ, अलगोजा, बासुरी बजाते हुए हाथो मे गुलाल और मुख मे पचम राग सहित युवक-युवतियाँ घर घर फाग खेल रहे है. ऐसा फागुन मास विरही जनो के लिये बहुत ही कष्ट कारक है.)

फाग'—फाल्गुण मास मे गाये जाने वाले वासतिक गीत और क्रीडाएँ.

पचमराग —इसका उच्चारण नाभि, उरु, कठ, हृदय और मूर्द्धा से होता है, इसलिये इसका नाम पचम पडा.

ऋतुराज बंसत की महिफल

आगळि रितुराय मडिओ अवसर
मण्डप वन नीझरण मृदग ।
पचबाण नायक गायक पिक
वसुह रग मेळगर विहग ।।२४३।।

(ऋतुराज के सम्मुख महिफल लगी है. वन मण्डप है झरने ही मृदग हैं. पचबाणो का अधिपति (कामदेव) ही उत्सव का नायक है कोयल गायिका है और विविध पक्षीगण ही महिफल के दर्शक व श्रोतागण है)

कळहस जाणगर मोर निरतकर
पवन तालधर ताल पत्र ।
आरि तन्तिसर भमर उपगी
तीवट उघट चकोर ।।२४४।।

(इसमे राजहस ही कला के जानने वाले है मोर नर्तक है पवन ताल देने वाला है. पत्ते करताल है. झिल्ली की झकार तार के बाजे के स्वर है. भँवर नसतरग बजाने वाला है और चकोर वहाँ त्रिवट ताल देने वाला है)

तनिसर —तार के वाद्यो का स्वर (सितार, सारगी, वीणा, सारगी, दिलरुबा, इकतारा)

ताल:—(१) समय, विराम (२) ताल देने के वाद्य

उपग.— नसतरग नामक वाद्ययत्र

उपगी — नसतरग का बजाने वाला

उघट — मात्राओ की गणना के लिये बोले जाने वाले 'बोल'.

तीवट — दोपहर के समय गाया जाने वाला राग–त्रिवट

चकोर — पक्षी विशेष इसकी बोली तीन भागो मे विभक्त होती है और त्रिवट राग के बोल से मिलती हैं

इन सारे तथा अन्य कई छदो मे कवि का सगीतशास्त्र का विशाल अनुभव भरा पडा है. वेलि के अतिरिक्त कवि के अनेक पद सगीत की विभिन्न राग-रागिनिओ पर आधारित हैं

योगशास्त्र ज्ञाता

वेलि के अनेक छदो मे महाराज पृथ्वीराज ने योग सबधी विविध तत्वो का सूक्ष्म वर्णन किया है, अतएव यह नि शक कहा जा सकता है कि कवि इस शास्त्र के भी ज्ञाता थे —

कामिणि कहि काम काळ कहि केवी,
नारायण कहि अवर नर ।
वेदारथ इम कहै वेदवत
जोग तत्त जोगेसवर ।।७६।।

(कुदनपुर मे जब भगवान ने प्रवेश किया तो सुदरियाँ कहने लगी कि य तो कामदेव हैं दुर्जन कहने लगे कि ये तो साक्षात काल है तथा भक्तजन कहने लगे कि ये ही नारायण है. वेदज्ञो ने कहा कि ये वेदार्थ है और योगीगणो ने योग तत्व कहा.)

जोग तत्तः—योग के तत्व शास्त्रो मे योग के आठ तत्व माने गये हैं ये भगवत् प्राप्ति के साधन हैं योगियो का भगवान को योग साधनो का लक्ष्य रूप मे देखना ही ठीक है

धुनि उठी अनाहत सख भेरि धुनि
अरुणोदय थियौ जोग अभ्यास ।
माया पटल निसामै मजे
प्राणायामे ज्योति प्रकास ।।१४८।।

(यहाँ अरुणोदय का योगाभ्यास के साथ साग रूपक द्वारा वर्णन किया गया है अरुणोदय हुआ मानो योगाभ्यास आरम्भ हुआ शखो और नगाडो का शब्द होने लगा मानो अनहद नाद हो रहा है रात्रिकाल समाप्त हो गया मानो माया का परदा हट गया सूर्य की ज्योति प्रसरित हो गई मानो प्राणायाम द्वारा ईश्वरीय ज्योति प्राप्त कर ली हो)

इसी प्रकार छद सख्या १२१, १८० और २०८ मे भी योग के तत्वो को स्पष्ट किया गया है.

पुराण ज्ञान

वैसे तो सारी वेलि ही भागवत पर आधारित है तथा स्वय परमात्मा पुरुषोत्तम भगवान श्री कृष्ण एव जगद्धात्री लक्ष्मी (रुक्मिणी) से सबधित है. अतएव भागवत कथा तो है ही, पर अन्य पुराणो, रामायण आदि से भी कवि ने अनेक दृष्टान्त निम्न छदो मे प्रस्तुत किये है—

छद स. ८४, ९८, १०६, १९४, २०९, २१६, २६९ से २७५, २८९ और २९३.

जब भगवान शिव ने अपने त्रिनेत्र से कामदेव को भस्म कर दिया था तब—

अवसरि तिणि प्रीति पसरि मन अवसरि
हाइ भाइ मोहिया हरि ।
अग अनग गया आपाणा
जुडिया जिणि वसिया जठरि ।।२६६।।

[उस समय श्रीकृष्ण और रुकमणी के मन मे प्रेम व्याप्त हुआ. रुकमणी के हाव-भाव ने उनका मन मोह लिया कामदेव के अपने अग जो महादेव के त्रिनेत्र से जल कर भस्म हो गए थे, रुकमणी के उदर मे आकर निवास किया और इस प्रकार फिर जुड गये]

अपने भक्ति विषयक एक फुटकर गीत मे कवि ने भक्तो की उद्धार विषयक अनेक पौराणिक कथाओ का समावेश किया है—

गीत ठाकुरजी रो पिरथीराज कहै—

प्रहलाद भाळ गज भाळ परीखत, भाळ गुवाळ भडवा भणी,
सरीखो कोई न सूझे सावळा, धणीयप करै सेवगा धणी ।।१।।
जाइ राजा बाधिया जरासिध, जोई अंबरीष द्रोपदी जोई ।
आया सकट आपरा उवेळण, किसन सरीखो धणी न कोई ।।२।।
ईस-सीत सुग्रीव ईसवर, इद्र ईस जादुव कुळ ईस ।
अर-हण अब-चाढण ओळगुवा सिरीवर तणो न को सारीस ।।३।।

वैद्यकीय ज्ञान

छद स. २८४ और २८५ से कवि का वैद्यक-सबधी ज्ञान प्रकट होता है —

चतुराविध वेद-प्रणीत चिकितसा
ससत्र उखध मत्र तत्र सुवि।
काया काजि उपचार करता
हुवइ, सु वेलि जपत हुवि ।।२८४।।

(वेदोक्त चार प्रकार की चिकित्साओ (शस्त्र चिकित्सा, औषधि चिकित्सा, मत्र चिकित्सा और तत्र चिकित्सा) द्वारा जिस प्रकार शरीर को लाभ मिलता है उसी प्रकार का लाभ वेलि का पाठ करने से हो जाता है)

आधिभूतिक आधिदेव अध्यातम
पिंडि प्रभवति कफ वात पित ।
त्रिविध ताप तसु रोग त्रिविध मइ
न भवति वेलि जपति नित ।।२८४।।

(आधिभौतिक. आधिदैविक और आध्यात्मिक ये तीन प्रकार के ताप तथा कफ, वात, पित से उत्पन्न तीन प्रकार के रोग जो शरीर मे होते है, वेलि के नित्य पाठ करने से नही होते)

कृषि-शास्त्र ज्ञाता

प्रकृति ज्ञान, पशुपक्षियो के स्वभावो और व्यापारो के ज्ञान के साथ साथ महाराज पृथ्वीराज राठौड को कृषि-शास्त्र का भी सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त था—

उपडी धुडी, रवि लागी अबरि
खेतिम्रे ऊजम, भरिया खाट्र ।
मिग्रसिरि वाजि किया किकर म्रिग
ओद्रे वरसि कीध धर आद्र ।।१९३।।

(धूल उडी और आकाश मे अवस्थित सूर्य से जा लगी मृगशिर नक्षत्र के पवन ने चल कर मृगो को किंकर्त्तव्य-विमूढ बना दिया उधर आर्द्रा नक्षत्र के मेघ ने बरस कर पृथ्वी को सजल कर दिया गढ्ढे भर गये और किसान कृषि की तैयारियाँ करने लगे)

बग रिखि राजान सु पावसि बइठा,
सुर सूता, थिउ मोर-सर ।
चातिग रटइ, बळाहकि चचळ
हरि सिणगारइ अबहर ।।१९४।।

(वर्षा मे बगुले, साधु और राजा लोग एक जगह बैठ जाते है देवता सो गये. मोर बोलने लगे पपीहे भी बोलने लगे सारस उडने को चचल हो गये इद्र बादलो और इन्द्रधनुष से आकाश को सजाने लगा)

समस्त युद्ध रूपक वर्णन से कवि के विशाल कृषि-ज्ञान का परिचय होता है एक उदाहरण दृष्टव्य है —

विसरिया विसरि जस-बीज बीजजइ
खारी हळाहळा खळा ।
त्रूटइ कध-मूळ, जड त्रूटइ,
हळधर का वहता हळा ।।१२४।।

(जैसे कृषक खेत मे दूसरी बार हल चला कर बीज बोता है वैसे ही बलराम युद्धभूमि मे दूसरी बार हल चलाकर शत्रुओ को हलाहल विष से भी खारे लगने वाले यश-रूपी बीज बोने लगे जब हलधारी बलराम का हल चलने लगा तो शत्रुओ के कधो के मूल उखडने लगे जैसे वर्षाकाल मे किसान के हल चलाते समय जमीन के भीतर की जडे उखड जाती है)

इन सबके अतिरिक्त शृ गार, आभूषण, विवाह व पुत्र-जन्म सबधी रीतियाँ, विविध उत्सवो तथा पर्वो का सूक्ष्म ज्ञान और पशु-पक्षियो के स्वभावो और व्यापारो का भी उन्हे विशेष ज्ञान था —

गउ खीर स्त्रवति, रस धरा उदगिरति
सर पोइणिम्रे थयो सु स्त्री ।
बळी सरद स्त्रग-लोक वासिम्रे
पितरे ही म्रित लोक प्री ।।२०६।।

(अश्विन मास के आने पर गायें दूध झरने लगी, धरती अन्न के रूप मे रस उगलने लगी तालाबो और सरोवरो मे कमल सुशोभित हुये स्वर्गलोक मे रहने वाले पितरो को भी मर्त्यलोक प्यारा लगने लगा अश्विन मास मे ही श्राद्ध पक्ष आता है जबकि पितर बलि ग्रहण करने के लिये पृथ्वी पर आते है)

पुत्रोत्सव का एक सजीव चित्रण देखिये—

कामा वरखती काम-दुघा किरि,
पुत्रवती थइ मनि प्रसन
पुहप करणि करि केसू पहिरे
वनसपती पीळा वसन ।।२३६।।

(जैसे माता पुत्र को प्रसव देकर मन मे आनदित होती है और अनेक प्रकार के दान देती है वैसे ही वनस्पति रूपी माता वसत रूपी पुत्र को जन्म देकर प्रसन्न होती है और जैसे माँ कामधेनु के समान मुहमागा दान देती है वैसे ही वनस्पति सौरभ और सौदर्य प्रदान करने लगी. पुत्र-जन्म पर माता 'पीला' नामक वस्त्र ओढती है उसी प्रकार वनस्पति टेसू आदि फूलो के कारण पीला ओढती है राजस्थान मे पीला ओढना मागलिक हे बडी बूढी स्त्रियाँ जब बहुओ को आशिष देती है तो कहती हे 'पीळा ओढो')

आर्ष दृष्टा

सिवाना के शासक व इतिहास के अप्रतिम वीर राव कल्लाजी रायमलोत वैसे तो महाराज पृथ्वीराज राठौड से अकबर बादशाह की राजधानी मे अनेक बार मिलते थे, पर एक बार वे उनसे मिलने के लिये विशेष रूप से बीकानेर गये [1] वहा उन्होंने पृथ्वीराज राठौड से कहा कि मैं अपनी मातृभूमि की रक्षार्थ जूझकर वीरगति प्राप्त करना चाहता हूँ आप सच्चे व प्रसिद्ध कवि है. मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे मरणव्रत-की पूर्णाहूति एव उद्यापन का वर्णन अपने काव्य द्वारा मुझे पहले ही

---

१. महावीर कल्लाजी रायमलोत' लेखक आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया. प्र. राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ (राजस्थान)

सुना दे. पृथ्वीराजजी कल्लाजी की प्रचण्ड वीरता, निडरता तथा स्वतत्र प्रकृति से पूर्णतया परिचित थे. उन्होने कहा कि कल्लाजी ! मै जानता हूँ कि आप हमारे वश के गौरव है आपकी वीरता मे किसे सदेह हो सकता है ? मै भविष्यवक्ता तो हूँ नही कि आपको यह पहिले से ही बता दू कि आप किस प्रकार जूझते हुए वीरगति को प्राप्त करेगे ? हाँ, आपके मरणोपरात आपके शौर्य को काव्यबद्ध कर आपको अमर बना दूगा. कल्लाजी ने उत्तर दिया, भक्तराज ! मै देश और जाति के लिये बलिदान होकर अपने जीवन को सार्थक कर देना चाहता हूँ, मुझे अमर होने की चाह नही है, मुझ तो अपना कर्त्तव्य करना है आपकी पवित्र वाणी द्वारा मेरे इस मरण-मगलोत्सव का वर्णन सुन कर मै अपनी वीरगति का अपने हृदय चक्षुओ से दर्शन कर सकूगा कृपा कर मुझे वह सुना दीजिये

कल्लाजी के आग्रह और प्रार्थना को वे ठुकरा न सके. अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण का ध्यान कर, अपनी आशुवाणी द्वारा कल्लाजी के युद्ध का जो वर्णन किया है तथा इस रूप मे जो भविष्यवाणी की है, वह इतिहास व साहित्य दोनो की अमूल्य निधि है पृथ्वीराज के युद्ध वर्णनानुसार कल्लाजी अक्षरस लडे. उनकी यह भविष्य-वाणी भी शत प्रतिशत सच्ची हुई कि मोटा राजा उदयसिह (जो इस समय तुमसे बहुत स्नेह रखते है), बादशाह की ओर मे तुम पर आक्रमण करेगे कल्लाजी के यह कहने पर कि यह असभव सा लगता है, पृथ्वीराजजी ने कल्लाजी के पूर्वजो के ऐतिहासिक उदाहरण देकर कहा कि पराधीनता सब कुछ करवा सकती है रावळ मल्लीनाथ तो भक्त और सिद्ध पुरुष थे उन्होने अपने भतीजे त्रिभुवनसी से युद्ध कर उसे मार दिया भवितव्यता को कौन टाल सकता है प्रतीक्षा करो अपने इस गीत मे पृथ्वीराज ने अनेक महावीरो के उदाहरण देकर कहा कि कल्लाजी भी इसी प्रकार का प्रचड युद्ध करेगे. पृथ्वीराज राठौड का वह इतिहास प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है—

वढ चढ बोलियो पतसाह वदीतो, मडोवर रख माण मलीतो ।
जिण जमवार लगे जस जीतो, कलो भलो रजपूत कहीतो ।।१।।
पुळिया दळ पारभ पतसाहै, सिध नरेसर बीडो साहै ।
बकिया वयण तिके निरवाहै, गढ समियाण कलो पडिगाहै ।।२।।
थट गागरट तलहटी थाणो, राव अग्रज करै रीसाणो ।
करडा वयण कहै कलियाणो, सिर पडियै आपिसि समियाणो ।।३।।
तोडिस मछर वधै तियाळै वेध पडयो धर खेध विचाळै ।
ऊदो राव दुरग ऊदाळै, रायमलोत दरंग रखवाळै ।।४।।
सूजाहरो डाखिया साबळ, छावो विढै अणखळा निय छळि ।
दीठो काळ रोहिया अरिदळ, चढिया गढै जूजुवा चळि चळि ।।५।।
भारतसीह जिसा भूपाळा, माचि कळह गढ ऊपरमाळा ।
रे कहता आयो रवताळां, कलियो रह्यो मुहै किरमाळा ।।६।।

जिम रावळ दूदो जेसाणै, सातळ सोम मुआ समियाणै ।
निहसि राव चूडो नागाणै, कीधो मरण तिसो कलियाणै ।।७।।
जुडि घण कान्ह मुओ जाळवर, थाट विडारि हमू रणथभर ।
अगति लाज अणखला ऊपरि, कलियो जूझि मुओ गज केहरि ।।८।।
नरसिघ मणियड प्रोळ निरोहै, रहियो भाण मडोवर रोहै ।
लुद्रवै भोज मुओ वढि लोहै, सिर समियाण कलो स्रित सोहै ।।९।।
पावागढ जूझार पताई, वळि जैमळ चीत्रोड सवाई ।
लाखावड सिर माड लडाई, वाघहरो रहियो वरदाई ।।१०।।
हाथी सो हरिभाण हथाळो, कुभ गागरण माझी कालो ।
आवू मजन मुओ अडसाळो, समियण तेम कलो सपखाळो ।।११।।
अचळ तिलोकसिघ रण आगै, जुडि गागरण मुआ छळि जागै ।
लाज तिका भुज अबरि लागै, खेड नरमेर विढियो खागै ।।१२।।
वढि घा भोज मुओ वीकाणै, पाटत अरिजण जेणि प्रमाणै ।
वरसलपुर खेमाळ वखाणै, साको तेम कलो समियाणै ।।१३।।
निहचळ वात कलो निरवाहै, चावो रावा बोल चढाहै ।
रवि ससिहर लगि नाम रहावै, इद छभा विचि बैठो आवै ।।१४।।

कहा जाता है कि गीत सुनते समय राव कल्ला अपने शौर्यवेश को सम्हाल नही सकने की अवस्था मे आने लगे तो पृथ्वीराज ने गीत आगे न बढाकर इत्यातमक द्वाला कहकर तुरत समाप्त कर दिया इस गीत मे उत्तम वयण सगाई अलकार का निरतर प्रयोग हुआ है

इस गीत से महाकवि के इतिहास सबधी ज्ञान का भी अच्छा परिचय मिल जाता है कौनसे प्रसिद्ध योद्धा ने कहाँ और कैसे तथा किसके साथ युद्ध किया यह उसका एक प्रमाण है वैसे तो उनके ऐतिहासिक प्रशस्तिमूलक सारे गीत उनकेइतिहास सबधी विशिष्ट ज्ञान को ही सूचित करते है, पर जहाँ उन गीतो मे एक एक वीर का वर्णन है, वहाँ इस गीत मे तो कवि ने सारे इतिहास का ही समावेश कर दिया हो, ऐसा लगता है

मृत्यु

कालजयी भक्त प्रवर महाराज पृथ्वीराज राठौड अपनी मृत्यु-तिथि और स्थान से भली-भाँति अवगत थे. वस्तुत महान व पवित्र आत्माएँ दिव्य दृष्टा होती है जब बादशाह अकबर ने महाराज पृथ्वीराज को काबुल पर आक्रमण करने के लिये कहा तो अपनी मृत्यु-तिथि का ध्यान कर एक क्षण तो वे हिचकिचाये पर फिर अपने गुरु श्री गुसाईजी विट्ठलनाथजी का ध्यान कर काबुल विजय के लिये तैयार हो गए. 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे यह प्रसग इस प्रकार दिया गया है —

'बहुरि राजा पृथ्वीसिंहजी कु पृथ्वीपति दिल्ली बुलाये. सो राजा पृथ्वीपति के पास दिल्ली आये तब तिलक छाप सब करिके आये तब बादशाह पृथ्वीसिहजी कु देख के मन मे बडे प्रसन्न भयो. कहे जु देखो इनको अपने गुरू पै कैसो विश्वास है. पाछै बादशाह राजा कौ काबुल की ओर लडाई जायबे की कही तब राजा ने विचार कियो जो मेरी मृत्यु तौ अमुक दिन मथुरा में विश्रात घाट पै हुयवे वारी है सो अब कैसे करें ? फेरि श्री गुसाईजी के चरणार्विन्द को ध्यान करि राजा काबुल गयो सो वहाँ थोरे दिन मे लडाई जीति के साढनी पै बैठि के उहाँ ते चले सो दोई दिन मे मथुरा आई के वाहि दिना देह छोडी सो यह बात बादसाह ने सुनी तब बादसाह ने बहुत खेद कियो जु ऐसो राजा मो को मिलनो कठिन है.'

यह कथा कुछ इस प्रकार भी लोक मे प्रचलित है पृथ्वीराज के काबुल चले जाने के पश्चात् एक दिन अकबर के दरबार मे एक बहेलिया चकवा-चकवी का जोडा लेकर आया, जो मानवी भाषा मे बातचीत करता था. यह जोडा एक ही पिंजरे में बध था गुणवान बादशाह, बहेलिये की इस भेट पर बडे प्रसन्न हुये और कहा कि ऐसे शत्रु शिकारी पर तो करोडो मित्र न्योछावर हैं. उपस्थित कवि खानखाना ने इसी भाव को काव्यबद्ध किया 'सज्जन वारू कोडधा वा दुर्जन की भेट', किन्तु वे दूसरी पक्ति नही बना सके बादशाह को पृथ्वीराज का स्मरण हो आया और उन्हे बुलवा भेजा मथुरा पहुँचने तक उनकी मृत्यु की अतिम घडी आ गई थी उन्होने हलकारे के साथ दूसरी पक्ति लिख भेजी, 'रजनी का मेळा किया, विहि का अच्छर मेट' बादशाह बडे प्रसन्न हुये पर उसी समय हलकारे ने उनकी विश्रामघाट पर मृत्यु और उस समय दो श्वेत कौओ के आने की बात कही सभी आश्चर्यचकित रह गये.

एक अन्य स्थल पर मृत्यु के समय एक श्वेत कौआ प्रकट होने का भी उल्लेख है। वीरवर पृथ्वीराज ने यमुना के किनारे विश्रात घाट पर अपनी नश्वर देह को सवत् १६५७ मे त्यागा ऐसे भक्तशिरोमणि, महान कवि और योद्धा पर मथुरा मे कोई स्मारक न बना हो, असभव-सा लगता है, पर श्री हजारीमल बाठिया के अथक प्रयत्न करने पर भी अभी तक कुछ पता नही चल सका है

तानसेन व बीरबल की मृत्यु के पश्चात् अकबर को अपना नवरत्नी दरबार सूना सूना लगने लगा बादशाह को इन दोनो का अभाव खटकने लगा ऐसे समय मे यद्यपि पृथ्वीराज उनके नवरत्नो मे से एक नही थे, फिर भी अपने अनेक गुणो के कारण जिन्होने बादशाह का हृदय जीत रक्खा था, स्वर्गवास हो जाने के कारण बादशाह को बडा आघात लगा और उनके मुह से बरबस फूट पडा कि—

पीथळ सो मजलिस गई, तानसेन सो राग।
रीझ बोल हस खेलबो, गयो बीरबल साथ ॥

पृथ्वीराज जैसे परमवीर और परगभागवत, श्रेष्ठ कवि और दातार की मृत्यु पर किसी समकालीन कवि द्वारा कहे गये मरसियो मे उनके व्यक्तित्व की एक झलक दर्शनीय है[1]—

विवनौ पृथ कल्याण तण, जाणण भेद गुणाह ।
मोल विथका रावता, कवि सचा कहणाह ।।१।।
विवनौ पृथ कल्याण तण, जास सकल गुण जाण ।
कुण दातार कहीजसी, कह दीजै वाखाण ।।२।।
पृथ्वी विवनौ राठवड, दाता सूर सुजाण ।
कवि किरमर वायक सकल, इखीजै अप्रमाण ।।३।।
सरसति कठा सूर मुख, पिउ पौरसि वरियाम ।
भगा पृथ कमध अत, चहू विलंबण ठाम ।।४।।

'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के रचयिता अनेक युद्धो के विजयी योद्धा तथा भक्त प्रवर यद्यपि आज हमारे बोच मे नही हैं, फिर भी हम उनके देशवासी उनके अप्रतिम ओज, साहित्य साधना व भक्ति-गगा से सदा अनुप्राणित रहेगे ।

किसी अन्य कवि ने उनके जीवन की चारित्रिक विशेषताओ को आबद्ध करते हुये सत्य ही कहा है—

दाता,भोक्ता हरेर्भक्त' कर्ता शास्त्रस्य शास्त्रवित,
पृथ्वीराज समो राजा, न भूतो न भविष्यति ।।

---

१. शोधपत्रिका, वर्ष १८, अक १, उदयपुर. महाराज पृथ्वीराज राठौड़ रचित छप्पयँ. ले. श्री सौभाग्यसिह शेखावत.

२

वेलि

विवेचन

वेलि का नामकरण व वेलि-साहित्य

. जिस प्रकार मगल काव्यो की एक सुदीर्घ परम्परा है उसी भाँति वरन् उससे भी कही अधिक विस्तृत परम्परा वेलि काव्यो की रही है राजस्थानी, गुजरातो एव व्रजभाषा मे इस काव्य परम्परा के शताधिक ग्रथ उपलब्ध है जिनमे से कई तो प्रकाशित हो चुके है और शेष अद्यावधि किसी शोधधर्मी प्रकाशक की राह देख रहे हैं वैसे रोडा कृत राउलवेल वेलि परम्परा की सर्वप्रथम रचना सुनी जाती है और जिसका समय ग्यारहवी शती का माना जाता है, पर अब तक लिखित रूप मे प्राप्त सर्वाधिक प्राचीन वेलि ग्रथ 'चिहुगति वेलि' है, जो एक जैन कवि वाछा द्वारा प्रणीत है तथा जिसका रचना काल वि स १५२० के आस पास का है जिसमे कवि ने चार गतियो (१) नरक गति (२) तिर्यच गति (३) मनुष्य गति और (४) देवगति का वर्णन किया है इसके पश्चात् तो बीसवी शती तक अबाध गति से अनेक वेलि काव्यो की रचना हुई है

वेलि का पर्याय वेल, लता तथा वल्लरी है. वल्लरी सस्कृत शब्द है, जिसका अपभ्र श रूप ही वेल अथवा वेलि है उपनिषदो मे वल्ली शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वल्ली का प्रयोग परिच्छेद के रूप मे हुआ है, यथा भृगुवल्ली, ब्रह्मानद वल्ली आदि. कालान्तर मे वल्ली शब्द का रूपान्तर हो गया और वह आधुनिक अर्थ लता के रूप मे प्रयुक्त होने लगा. न्याय वल्लरी, वेदान्त वल्लरी, चातुर्मास्य व्रत वल्ली और अम्बुज वल्ली आदि इसी वेलि परम्परा के सस्कृत साहित्य के ग्रथ है

हिन्दी मे जहाँ लता शब्द अधिक प्रचलित है, वहाँ राजस्थानी और गुजराती मे वेल अथवा वेलि विद्यापति की कीर्तिलता के साथ साथ नागरीदास की राजरस-लता, सुखदेव मिश्र कृत शृ गारलता, श्रीदत्त की लालित्यलता और ब्रजनिधि की प्रीतिलता,लता नामधारी तथा घनानद की रसकेलिवल्ली, ब्रजनिधि कृत दुखहरणवेलि तथा वृंदावनदास की दानवेलि आदि पचहत्तर से अधिक वेलि ग्रथ प्रख्यात है ब्रजभाषा मे कुछ वल्लरीधारी रचनाएँ भी उपलब्ध हैं जिनमे नागरीदास की वैराग-वल्लरी, रामराय की मनोरथ वल्लरी तथा घनानद की रसकेलि वल्लरी प्रसिद्ध है. इसके अतिरिक्त करुणावेलि, आनदवर्धन वेलि और हरिकला वेलि भी प्राप्य है ।

राजस्थानी-साहित्य मे अनेक वेलि ग्रथो की भाँति गुजराती मे केशवदास की वल्लभवेल, बजिया कृत सीतावेल, जीवनदास रचित श्रुतवेल, प्रेमानन्द प्रणीत ब्रजवेल तथा दयानद कृत भक्तवेल प्रमुख है

राजस्थानी-साहित्य मे अनेक वेलि काव्यो की रचनाएँ हुई है विभिन्न धर्मावलम्बियो द्वारा लिखी गई ये कृतियाँ विविधता व उत्कृष्टता के नमूने है और साहित्य के गौरव ग्रथ है इन वेलि काव्यो का विषय या तो चरित्र नायको के यश प्रसार का रहा है अथवा ये रचनाएँ सच्चिदानद भगवान की लीला-गाथाओ के प्रचार का माध्यम रही है

सिहा कृत जम्बू स्वामी वेलि, ठकुरसी रचित पचेन्द्रिय वेलि, भट्टारक निर्मित आदिनाथवेलि, साधुकीर्ति की सवत्थवेलि, जयसोम कृत बारह भावना वेलि, वीर-विजय की सुभ-वेलि, कीर्तिविजय निर्मित सुजसवेलि और जिनविजय कृत नेमिस्नेह वेलि आदि प्रमुख जैन धर्मावलम्बी रचनाएँ है. ये सारी रचनाएँ अपभ्र श अथवा राजस्थानी भाषा मे लिखी हुई है.

गुण चर्णिक वेलि के रचनाकार प्रसिद्ध भक्त कवि चूँडजी, कृष्णजी री वेलि के रचयिता साखला करमसी, क्रिसन रुकमणी री वेलि के सृजनकार महाराज पृथ्वीराज राठौड के अतिरिक्त त्रिपुरी सुदरी वेलि के रचयिता जसवत, किसना प्रणीत हर-पारवती री वेलि, महेसदास रचित रघुनाथ चरित नव रस वेलि तथा महादेव पार्वती री वेलि के सर्जक आढा किसना आदि राजपूतो और चारणो द्वारा प्रणीत वेलि ग्रथ अति प्रसिद्ध है. इनमे से गुण चर्णिक वेलि तथा कृष्णजी री वेलि, 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' की पूर्ववर्ती रचनाएँ है तो त्रिपुर सुदरी और महादेव पार्वती री वेलि परवर्ती रचनाएं है ये सारे वेलि ग्रथ धार्मिक है, पर वीर-प्रसूता यह भूमि अपनी वीर-सतान को कैसे भुला सकती है ? एक ओर जहाँ इस प्रदेश मे धार्मिक वेलि ग्रथो की रचना-धारा प्रवहमान थी तो दूसरी ओर प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि ग्रथो की रचना-धारा भी निरतर प्रवहमान थी

मालाजी सादू कृत रायसिघजी री वेलि, गाडण चोलो की महाराजा सूरसिघजी री वेलि, गाडण बीरमाण कृत महाराजकुवर अनोपसिघजी री वेलि, सादू रामा प्रणीत उदैसिघ री वेलि, दूदा कृत रतनसी खीचावत री वेलि और बारहठ अखै भाणोत रचित दैईदास जैतावत री वेलि आदि सारे वेलि ग्रथ अपने अपने आश्रयदाताओ के ऐतिहासिक प्रशस्ति ग्रथ है जो वेलियो छद मे लिखे हुए हैं ।

धार्मिक तथा ऐतिहासिक प्रशस्ति वेलि ग्रथो के अतिरिक्त लोक-कंठो मे अनेक वेलि ग्रथ अवस्थित है रामदेवजी री वेल, आईमातारी वेल, रूपादे री वेल और तोलादे री वेल जनमन के हार है

उपर्युक्त सक्षिप्त विकासोन्मुख सर्वेक्षण से अब यह स्पष्ट है कि न तो वेलि-काव्य किसी एक विषय को लेकर ही सृजित हुये है और न लेखकवृद मे से किसी एक जाति विशेष का उस पर एकाधिकार था वेलि ग्रथ मे प्रयुक्त छद भी एक से नही है फिर भी एक बात निश्चित है कि अधिकाश ऐतिहासिक प्रशस्तिमूलक वेलि ग्र थ वेलियो छद मे लिखे गये हैं

आधुनिक युग मे श्री मुकुनसिघ राठौड कृत बहुनामी री वेलि, शैतानसिव री वेलि और पीरूसिघ री वेलि आदि वेलि-ग्रथ-शृ खला की नवीनतम कडियॉ है. श्री राठौड ने वेलि-परम्परा को सिंचित कर पुन. पल्लवित कर दिया है

प्रारम्भ मे यह मत अधिक प्रवर्त्तमान था कि क्योकि वेलि ग्रथ वेलियो छद मे लिखे गये है, इसलिये इसका नाम वेलि पडा पर उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि सभी वेलि ग्रथ वेलियो छद मे रचित नही है जिन प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि ग्रथो का निर्माण हुआ है, वे सभी वि. स. १६३७ के बाद के है वि स १६३७ ही 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' का रचना काल माना जाता है. महाराज पृथ्वीराज राठौड उस समय तक एक प्रसिद्ध कवि, भगवद्भक्त, योद्धा सामत तथा बहुज्ञ के रूप मे अकबर के दरबार और साहित्यिक व सामाजिक जगत मे पूर्णतया प्रस्थापित हो चुके थे अतएव प्रशस्तिमूलक ऐतिहासिक वेलि-काव्य-परम्परा के परवर्ती कवियो ने जिन्होने अपने ग्रथ मे 'वेलियो' छद का प्रयोग किया है, महाराज पृथ्वीराज राठौड की पद्धति का अनुकरण किया हो तो कोई आश्चर्य नही

प्रो० नरोत्तमदास स्वामी तथा कविराजा मोहनसिह यही मानते है कि 'वेलियो' छद मे लिखे जाने के कारण इनका नाम वेलि रखा गया यह मत थोडा भ्रामक है क्योकि प्रथम तो सभी उपलब्ध ग्रथ वेलियो छद मे लिखे हुये नही हैं. द्वितीय स्वय पृथ्वीराज रचित वेलि भी शत प्रतिशत वेलियो छद मे रचित ग्रथ नही है.

प्रो० मजुलाल मजमुदार ने वेलि शब्द को विवाह के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ कहा है पर उनका यह विधान भी सत्य से कही दूर है विवाह परक वेलि काव्य अपवाद रूप मे ही प्राप्त हैं ऊपर जिन गुजराती वेलि ग्रथो की चर्चा की है उनमे से केवल अेक सीता वेल ही विवाह परक है. दूसरे उन वेलि ग्रथो मे जिनमे विवाह सम्बन्धी वर्णन है उनमे विवाह वर्णन सम्पूर्ण कथा का केवल अशमात्र ही है

डॉ० माताप्रसाद गुप्त व डॉ० भोलानाथ तिवारी ने विलास >विलाअ> विल्ल >वेल्लि आदि से वेलि की जो व्युत्पत्ति बताई है, वह नितान्त भ्रमपूर्ण है

डॉ० आनदप्रकाश दीक्षित[1] के मतानुसार वेल अथवा वेलि शब्द राजस्थानी-साहित्य मे छ अर्थों मे प्रयुक्त होता है—

(१) ससार, शरीर, कनक, पाप, ज्ञान, अमृत, यश अपयश सहित अपमान रूप मे,

(२) वेलि काव्यो के आदि अन्त मे काव्य सज्ञा के रूप मे,

(३) छद के नामोल्लेख के रूप मे,

(४) साथी या सहायक रूप मे,

(५) लहर-तरग के रूप मे,

(६) लता, वल्लरी के अभिधेय अर्थ मे वेल, वेलड़ी, वेलि आदि.

डॉ० दीक्षित द्वारा दिया गया वेलि का प्रथम अर्थ सस्कृतादि किसी भाषा मे हो सकता है, पर राजस्थानी भाषा मे तो उसके यह पर्याय प्राप्य नही हैं. द्वितीय अर्थ से शब्द की व्युत्पत्ति पर प्रकाश नही पडता. शेष चारो अर्थ राजस्थानी भाषा मे अवश्य उपलब्ध है, पर सर्वप्रचलित राजस्थानी अर्थ जिसे डॉ० दीक्षित नही दे सके हैं, वह है 'वश' और 'उम्र' राजस्थान मे बडे-बूढे जब आशीर्वाद देते है तो सदैव यह कहते है कि 'थारी वेल वधो' अेक और अर्थ जो राजस्थान मे वेलि का होता है वह है अगूठी या कडा वास्तव मे यह अर्थ रूढ हो गया है वेलि का एक साधारण अर्थ है शरीर के किसी अग के चारो ओर लिपटा हुआ आभूषण.

प० बदरीप्रसाद साकरिया ने अपने राजस्थानी-हिंदी कोश मे वेलि के निम्न अर्थ दिये है —१. लता, २ एक छद, ३. राजस्थानी साहित्य का काव्य रूप, ४ वश, ५ आयु ६ तरग, लहर, ७ अगूठी, ८. कडा. (वि) ९ सहायक, साथी.

स्वय पृथ्वीराज ने अपने ग्रथ 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' के अन्तिम भाग मे छद सख्या २९१, २९२ और २९३ मे वेलि ग्रथ का वेल (लता) के साथ सादृश्य बतलाया है. वह उनकी स्वप्नशीलता का भव्य उदाहरण तो है ही परन्तु साथ ही साथ अपने काव्य को वेलि सज्ञा देने का कारण भी उसमे निहित है—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ,
मंहि थाणौ प्रिथुदास मुख ।
मूळ ताल जड, अरथ मण्डहे,
सुथिर करणि चढि छाँह सुख ।।२९१।।

(इस वेलि रूपी लता का बीज भागवत है. दास पृथ्वीराज के मुख रूपी थाँवले मे यह बीज बोया गया है इसका मूल पाठ ही मानो वृक्ष की डालियाँ है तथा इसका अर्थ ही मानो जडे हैं. श्रोताओ के एकाग्र कान मडप है, जिनके ऊपर यह चढ़ी रहती है. सुख ही इसकी छाया है)

---

१. स्वसपादित वेलि, पृ० २७ प्रकाशक :–विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर ।

पत्र अक्खर दळ द्वाळा जस परिमळ,
नव रस तन्तु त्रिधि अहोनिसि ।
मधुकर रसिक सु भगति मजरी,
मुगति फूल, फळ भुगति मिसि ॥२९२॥

(अक्षर इसके पत्ते है. दोहलो मे वर्णित भगवान का यश ही सुगधि है. नव रस इमके तन्तु हैं और यह वेलि रात-दिन बढती रहती है साहित्य रसिक अथवा भक्त ही मानो भँवरे है और भक्ति ही मजरी है मुक्ति ही इसका फूल है और परमानद इसका फल है)

कळि कलप वेलि वळि कामधेनुका,
चितामणि सोमवल्लि चत्र ।
प्रकटित पृथिमि, पृथु मुख पकज,
अखरावलि मिसि थाइ एकत्र ॥२९३॥

(यह वेलि कलिकाल मे कल्पलता, कामधेनु, चितामणि, तथा सोमलता है ये चारो पृथ्वीराज के मुख कमल मे अक्षरो के समूह के बहाने पृथ्वी पर प्रकट हुई हैं)

इसी प्रकार एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य वेलि मे दृष्टिगोचर होता है, जिस पर से नामकरण की सार्थकता सिद्ध होती है सद्यजाता रुक्मिणी का वर्णन कवि ने कनक-वेलि के माध्यम से किया है, जिससे रुक्मिणी के कचनवर्णी कोमलागो पर सुदर प्रकाश पडता है—

रामा अवतार, नाम ताइ रुकमणी,
मानसरोवरि मेरु-गिरि ।
बाळक-गति किरि हस-चउ बाळक,
कनक-वेलि बिहु पान किरि ॥१२॥

(बाल्यावस्था मे रुकमणी ऐसी जान पडती थी मानो मानसरोवर मे हस का बच्चा हो अथवा सुमेरु पर्वत पर सोने की छोटी सी लता हो, जिसके दो पत्ते अभी अभी निकले हो)

अन्यत्र एक अन्य राजस्थानी कवि ने भी वेलि का सादृश्य गुणवती नारियो से कर बडी ही भावपूर्ण और अर्थगभीर अभिव्यक्ति की है —

वेलडिया गुणवतिया, नेहा नही चुकत ।
ज्यारै गळे विलूबही, वा पर ही सूकत ॥

वश वृद्धि के रूप मे भी वेलि शब्द इस काव्य के लिये सार्थक है. वेलि मे कवि ने वसुदेव के वासुदेव, वासुदेव के प्रद्युम्न और प्रद्युम्न के अनिरुद्ध—इस प्रकार चार पीढियो का वर्णन छद सख्या २७० और २७१ मे किया है.

भगवान श्रीकृष्ण रुकमणी की आर्तपुकार पर वेली (बेली) के रूप मे सहायतार्थ दौड आये, यह वेलि के तीसरे अर्थ की सार्थकता है. फिर यह, राजस्थानी का विशिष्ट काव्य रूप भी है, जिसमे वेलियो छद का भी प्रयोग किया गया है.

इस प्रकार हम देखते है कि आचार्य प० बदरीप्रसाद द्वारा दिये गये वेलि के सारे अर्थ पृथ्वीराज रचित वेलि मे सार्थकता से प्रयुक्त हुए है, अतएव हम नि.सकोच कह सकते है कि इस काव्य का वेलि नामकरण सर्वथा उचित ही है



वेलि का काल निर्णय

भारतीय सस्कृति की उदात्त विशेषताओ (सहिष्णुता, सत्यता, परोपकारिता व निर्भिमानता) मे विनम्रता अपना विशिष्ठ स्थान रखती है. विनम्रता मे शक्ति रहते हुये भी विद्वानो और बुज़ुर्गो आदि के समक्ष रचयिता या कर्ता के ज्ञान और यश आदि का भाव उपेक्षित रहता है. इस उपेक्षा-प्रवृति ने भारतीय सस्कृति, साहित्य व इतिहास को लाभ के स्थान पर हानि ही अधिक पहुँचाई है और इसी के परिणामस्वरूप आज हमे अपना क्रमबद्ध प्रामाणिक राष्ट्रीय इतिहास नही मिल रहा है

साहित्य का क्षेत्र भी इसमे अछूता नही रहा है। यही कारण है कि कई अत्यन्त अमूल्य ग्रथो के रचनाकारो के न तो हमे नाम ही मालूम है और न उनकी निर्माण तिथि ही हिदी साहित्य मे ऐसे ग्रथो की कमी नही है जिनमे उपर्युक्त दोनो बातो का अभाव न हो. ऐसे ग्रथो के रचयिताओ के नामो, स्थानो व रचनाकालो को लेकर अनेक विवाद उठ खडे हुये है और इतनी चर्चाएँ, इतने अनुशीलन के पश्चात् भी वे आज तक अनिर्णित ही रहे है पृथ्वीराज रासो को ही लीजिये उसके रचनाकाल के सबध मे उतना ऊहापोह हो जाने के पश्चात् भी सारे विद्वान किसी एक निष्कर्ष पर पहुँच नही पाये है. मीरा के जन्मकाल व तुलसी के जन्मस्थल को लेकर भी जो साहित्यिक वाद-विवाद होते रहे है, उनसे सभी परिचित है.

जब से इटालियन विद्वान स्व० डॉ० तैस्सीतोरी ने सन् १९१९ मे प्रथम बार 'राठोड प्रिथीराज री कही वेलि क्रिसन रुकमणी री' को संपादित कर भक्ति और शृगार के इस श्रेष्ठ डिगल ग्रथ को साहित्यिक-जगत मे रखा,तब से आज तक वेलि के छः और सुसपादित सस्करण निकल चुके है, पर सारे ही विद्वान लेखक इसके रचना काल पर एक मत नही हो सके हैं. वेलि के इन आधुनिक सम्पादित सस्करणो के पूर्व भी वेलि विद्वानो व जनता मे इतनी लोकप्रिय थी कि न केवल राजस्थानी भाषा की बोलियो (ढूढाडी व मारवाडी) मे ही इसकी टीकाएँ लिखी गई थी बल्कि सस्कृत मे भी दो बहुत ही विद्वत्तापूर्ण टीकाएँ लिखी गई थी। गोपाल लाहोरो नामक एक कवि ने वेलि का एक सुदर पद्यानुवाद ब्रजभाषा मे भी किया है और ढूढाडी टीका तो पृथ्वीराज के जीवन काल मे ही लिखी गई थी.

ऐसे प्रसिद्ध ग्रथ के रचनाकाल का निर्णय एक स्वर से अभी नही हो पाया है परन्तु नई शोध के आधार पर एक निर्णयात्मक स्थिति पर पहुँचने का एक प्रयत्न यहाँ किया जा रहा है.

(१) डॉ० तैस्सितोरी ने वेलि के साहित्यिक मूल्य को समझ कर अनेक हस्त-लिखित प्रतियो के आधार पर सर्वप्रथम एक सुदर सस्करण सन् १९१९ मे 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल' से प्रकाशित करवाया था. इस प्रकाशन का सारा व्यय-भार बीकानेर नरेश स्व० महाराजा श्री गगासिहजी ने उठाया था जिन आठ प्रतियो के आधार पर डॉ० तैस्सितौरी ने इस अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रथ का सम्पादन किया था—वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेलि का रचनाकाल वि० स० १६३७ ही है उन्होने अपने 'इट्रोडक्शन' के पृ० XII पर लिखा है :—'In editing the 'Veli Krisna Rukamani ri', I have been able to avail myself of an adventage which very rarely, if ever, falls in sort to editors of Rajasthani Bardic Poetry, the existence of old commentries The Principal of these are three and they were all written within fifty years from the composition of the Veli (Samvat 1637)' उनके इस वर्ष को रचना काल मानने का आधार निम्न छद है—

7 3 6 1
वरसि अचल गुण अग ससी सवति
तवियौ जस करि श्री भरतार ।।

(२) ठा. रामसिह व श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा वेलि का दूसरा सपादित सस्करण हिन्दुस्तानी अकेडेमी की ओर से सन् १९३१ मे प्रकाशित हुआ विद्वान सम्पादको ने वेलि के रचना काल पर अपनी भूमिका मे पृ० ४६ पर लिखा है — 'यह पुस्तक स० १६३७ मे लिखी गई थी, जैसा कि उक्त पुस्तक के अतिम दोहे मे प्रकट किया गया है' दोहा वही है, जिसकी ओर डॉ० तैस्सितौरी ने निर्देश किया है यहाँ यह भी ध्यान मे रखने योग्य बात है कि सम्पादक-द्वय ने डॉ० तैस्सितौरी की आठ प्रतियो के अतिरिक्त चार अन्य प्रतियो का अवलोकन कर अपने इस मत को स्थिर किया है.

(३) इसके ठीक बाईस वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १९५३ मे दो और सपादित सस्करण प्रकाशित हुए एक प्रो० नरोत्तमदास स्वामी का है जो श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी आगरा से प्रकाशित हुआ तथा दूसरा प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित का जो विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर से हुआ अपने पूर्व सपादको तथा अन्य एक दो विद्वानो के विभिन्न मतो का अति सक्षिप्त वर्णन कर प्रो० स्वामी ने अपनी भूमिका पृ० ७८ पर लिखा है —'हमारी समझ मे रचना-सवत-सूचक पद्यो मे से कोई भी

पृथ्वीराज की रचना नही हैं वेलि से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य कई एक प्रशसात्मक पद्यो की भाँति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारो अथवा लिपिकारो ने पीछे से जोड दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना हैं'

(४) प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित ने अपने सम्पादित ग्रथ की भूमिका मे वेलि की रचना तिथि स० १६४४ माना है. उनके इस सवत् को मानने के नीचे लिखे कारण हैं—

(क) डिगल ग्रथो मे रचना सवत् सूचक पद्य स्पष्ट लिखे जाते है कूट भाषा मे लिखने की परम्परा नही थी.

(ख) भक्तमाल, जो सवत् १६४२ से १६८० के बीच लिखा गया है—उसमे वेलि का उल्लेख है.

(ग) डॉ० मोतीलाल मेनारिया का मत

अतएव प्रो० दीक्षित के शब्दो मे ही—'वेलि की रचना को सवत् १६४२ से पूर्व ही मानने की कोई आवश्यकता विशेष प्रतीत नही होती'

(५) डॉ० रामकुमार वर्मा वेलि का रचना काल वि० स० १६३७ मानते हैं डॉ० तैस्सितौरी, ठा. रामसिंह, प० सूर्यकरण पारीक की मान्यताएँ, डॉ० वर्मा की मान्यता का आधार है.

(६) डॉ० मोतीलाल मेनारिया को जो तीन प्रतिया उदयपुर के सरस्वती भडार से प्राप्त हुई है, उन तीनो मे रचनाकाल सवत् १६४४ ही दिया गया है, जो नीचे लिखे छद से स्पष्ट है—

सोलह सै सवत् चमाळै वरसै, सोम तीज वैसाख समधि ।
रुकमणी कृष्ण रहस्य रमण रस, कथी वेलि पृथ्वीराज कमधि ।।

(७) सन् १९५४ मे साहित्य निकेतन, श्रद्धानद पार्क, कानपुर से श्री कृष्णशकर शुक्ल द्वारा वेलि के एक अन्य सम्पादित सस्करण मे वेलि के रचना-काल पर कोई प्रकाश नही डाला गया है.

(८) सन् १९५५ मे वेलि का एक और संस्करण प्रकाशित हुआ पर इस बार यह कवि के जन्मप्रान्त राजस्थान अथवा उत्तर प्रदेश से न होकर बम्बई स्थित श्री फार्बस गुजराती सभा के द्वारा गुजराती विद्वान श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई के द्वारा सपादित हुआ इसकी टीका पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी अर्थात् जूनी गुजराती) और समभूती (अर्थ) गुजराती मे है. यह प्रति उन्हे सन् १९२० मे सूरत मे प्राप्त हुई थी तथा जिसे स० १७७४ मे तारापुर (गुजरात) नामक स्थान पर किसी अनाम लिपिकार ने लिपिबद्ध किया है.

इस सटीक हस्तलिखित प्रति की पहली विशेषता यह है कि इसमे कुल मिला कर ३०७ छद है तथा वेलि की प्रशसा मे कहा गया कवित्त अलग है इसकी दूसरी विशेषता यह है कि अतिम दोनो छद रचना-सवत्-सूचक छद है, जो निम्नांकित है–

८ ३ ६ १
(१) वसु शिव-नयण रस शशि वछरि
विजय दशमी रवि रिष वरणोत।
किसन रुकमणी वेलि कल्पतरु
की कमधज कलियाण उत ॥३०६॥

(२) सौभैसे सुकल चूआळे वरसे
सोम तीज वैशाख सुध ।
रुषमणि घरा रहसि रस गमति
कही वेलि पृथुदास कमध॥

प्रथम छद के अनुसार वेलि का रचना काल सवत् १६३८ है जबकि दूसरे के अनुमार सवत् १६४४ है। (दूसरे छद की प्रथम पक्ति का प्रथम शब्द 'सौभैसै' न होकर 'सौलेसै'' होना चाहिए) यह लिपिकार की भूल हो सकती है क्योकि प्रथम तो शब्द की सगति नही बैठती और दूसरा डॉ० मेनारिया की तीनो प्रतियो मे यह दूसरा छद ही रचना-सवत-सूचक शब्द है, जिसमे 'सोलैसै' है.

यहाँ यह तो मानना ही पडेगा कि डॉ० तैस्सितोरी तथा अन्य विद्वानो को विभिन्न प्रतियो मे १६३७ का जो रचना-सवत-सूचक छद मिलता है उससे उपर्युक्त प्रथम छद मे वर्ष, तिथि, वार, नक्षत्र और कवि के नाम आदि का उल्लेख अधिक स्पष्ट है. फिर भी यह प्रश्न तो निरुत्तर हो रहता है कि सवत सूचक यह दूसरा छद क्यो ? इसके उत्तर मे श्री नटवरलाल इ देसाई की यह मान्यता है कि रचना तो सवत् १६३८ मे ही पूर्ण हो गई थी, पर अपने सशय इत्यादि को काव्य-कसौटी पर कसवा कर दूर करने मे वेलिकार को सात वर्ष और लग गये और इस प्रकार वास्तव मे यह रचना जनता और विद्वानो के सामने प्रथम बार सवत् १६४४ मे आई. यहाँ कसौटी से सबधित प्रसिद्ध दत कथा 'वलि की परीक्षा' ध्यान मे रखने योग्य है माधव, केशव, माला और दुरसा आढा ने इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है. दुरसा आढा ने तो उसे पाँचवाँ वेद और उन्नीसवा पुराण ही निम्न छद मे घोषित कर दिया है—

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण,
वेलि तास कुण करे बखाण।
पाचमो वेद भाखियो पीथळ,
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥

(९) श्री अगरचद नाहटा से हुई मौखिक साहित्यिक चर्चा मे उन्होने यह बताया कि उनके मत मे वि० स० १६३८ ही वेलि का रचना काल है।

(१०) इसके अतिरिक्त अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की हस्तलिखित प्रति सख्या ७४०५ (वेलि क्रिसन रुकमणी री) मे छद सख्या ३०३ है और प्रशस्ति के दो छद अलग से दिये गये है लिपिकार रगविमल ने इसे नवहर (नौहर, बीकानेर राज्य) मे वि० स० १७४१ मे लिपिबद्ध किया था रचनाकाल सबधी इसमे जो छद दिया गया है, वह इस प्रकार है—

सोलैसे सवत छत्रीस। वरषे सोम त्रीज वेशाष समधि ।
रुकमणी कृसन रहस रग रमता कही वेलि पृथ्वीराज कमधि ।।

उपर्युक्त छद से वेलि का रचना काल सवत् १६३६ माना जाना चाहिये, इस छद और श्री नटवरलाल देसाई वाली प्रति मे वर्ष को छोड कर तिथि दिवस आदि का साम्य है. इस प्रति मे उपर्युक्त छद के ठीक बाद रचनाकाल सबधी एक दूसरा छद 'वसु शिवनयन रस शशि वछरि' वाला देकर रचना काल सवत १६३८ भी मान लिया गया है

(११) महिमाभक्ति जैन भडार (बडा उपाश्रय) बीकानेर की दो और हस्त-लिखित प्रतियाँ क्रमानुसार ग्रथ सख्या ४०० व ४६० श्री अभय जैन ग्रथालय मे देखने को मिली है. ग्रथ सख्या ४०० वाली प्रति वि०स० १७१८ मे प० कुशलसागर ने बेनातट मे लिपिबद्ध किया है. इसमे रचनाकाल सबधी सवत् १६३७ व सवत् १६३८ वाले दोनो छदो के देने के बाद लिपिकार ने टीका मे यह बतलाया है कि 'किहाई कई परते दुहला उचारणउ कीधउ सवतरउ पाठातर नउ छई' अर्थात् कई प्रतियो मे सवत सबधी दोनो दुहाले मिलते है जो पाठातर है.

इसी प्रकार ग्रथ सख्या ४६०, जो सवत् १६८६ मे लिपिबद्ध हुआ है (जो उपर्युक्त प्रति से ३२ वर्ष पूर्व की है) प्रशस्ति मे १६३७ व १६३८ वाले दोनो छदो को लिख कर टीका मे लिखा है कि 'कीए एके परते ए पणि सवतरउ दुवालउ पाठातर छई' अर्थात् किसी एक प्रति मे रचना-सवत-सूचक १६३८ वाला छद पाठातर है।

(१२) पू. प. बदरीप्रसाद साकरिया, सपादक **'राजस्थान-भारती'** व 'डिंगल कोष' का मत है कि सभी रचना-सवत्-सूचक छद प्रक्षिप्त है.

(१३) श्री अभय जैन ग्रथालय मे वेलि की अब तक प्राप्त प्रतियो मे एक प्राचीनतम प्रति मिली है जो वि० स० १६६९ मे लिपिबद्ध है इसमे ३०१ छद हैं और रचना-सवत-सूचक कोई छद नही है इस ग्रथ की प्रशस्ति इस प्रकार है— इति श्री कृष्णदेव रुषमण वेलि संपूर्ण समाप्ता ।। राठोड श्री किल्याणमल सुत

प्रथिराज तत्त ।। बधव सुरताणजी गागरोणगढ मध्ये ।। स० १६६६ वर्षे माह सुदी ४ दिने लिपत रामा ।। फूलखडा मध्य ।। शुभ भवतु ।। किल्याण ।। शोध की दृष्टि से यह प्रति अत्यन्त महत्व की है. इस गुटकाकार प्रति के पूर्व पत्र मे अकित निम्न छद के रचयिता के सबध मे विद्वानो और सम्पादको मे जो भ्रम है वह दूर हो जाता है इस प्रति मे निम्नाकित छद के अत मे लिखा हुआ है कि —'इति कलस ज्यादव कृत ।। भोजग जादव कृत ।। अतएव यह स्पष्ट है कि यह छद भोजग जादव ने वेलि की प्रशसा मे लिखा है छद इस प्रकार है—

वेद बीज जळ विमळ, सुकवि जड रोपी सद्धर ।
पत्र दूहा गुण पुहुप, वास लोभी लषमीवर ।।
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहरी आडम्बर ।
मन सुधि जे जाणति अब फळ पामइ अबर ।।

विस्तार कीध जुगि जुगि विमळ, धणी किसन कहणहार धन ।
अमिम वेलि पीथळ अचळ, तँइ रोपी कलियाण-तन ।।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेलि के रचना काल पर सभी विद्वान एक मत नही है तथा सभी ने प्रमाणो सहित अपने अपने मत के मडन का प्रयत्न किया है.

(१) स्व० डॉ० एल. पी तैस्सितोरी का सवत् १६३७ को वेलि का रचना काल मानने का मूल कारण ऐसा ही हो सकता है कि उनको प्राप्त सभी प्रतियो मे रचना सबधी यही सवत् मिला हो. यही कारण है कि इस छद को ही रचना संवत् मानने मे उन्हे किसी भी प्रकार की शका व सदेह नही रहा. पर उनके बाद के शोध कार्यों से यह साफ है कि किसी एक सवत् को प्रमाणित मानने मे काफी विवादास्पद बाते हैं.

(२) प्रो० नरोतमदास स्वामी ने रचना-सवत-सूचक सभी छदो को प्रक्षिप्त माना है. यह ठीक है कि आज तक प्राप्त सवत् १६३६, १६३७, १६३८ और १६४४ मे से किसे रचना काल माना जाय ? सबको प्रक्षिप्त कहकर टाल देने से भी यह प्रश्न तो हमारे सामने रहता ही है कि यदि इन चारो सवतो मे से कोई भी रचना काल नही है तो सही रचना काल कौनसा है ? और यदि हमे वह आज उपलब्ध नही है तो इस दिशा मे और भी अधिक अनुशीलन की आवश्यकता तो है ही.

(३) प्रो० आनदप्रकाश दीक्षित के मतानुसार डिंगल मे रचना-सवत कूट भाषा मे लिखने की परम्परा नही है अतएव वेलि की विविध प्रतियो मे प्राप्त सवत् १६३७ व १६३८ वाले सभी छद प्रक्षिप्त है. ऐसा मानने का कोई कारण प्रतीत नही होता, क्योकि प्रथम तो यह कोई आवश्यक नही कि किसी परिपाटी का

भग न हो और द्वितीय कई बार विद्वान अपनी विद्वता का प्रदर्शन करने के लिये भी कूट छदो का सहारा लेते है और इस प्रकार घुमा-फिरा कर कहने मे साहित्यकार की प्रतिभा की विलक्षणता दिखलाई देती है इसीलिये सभव है कि वेलिकार ने कूटभाषा का प्रयोग किया हो प्रो० दीक्षित का अनुमान भर है कि यह रचना सवत् १६४२ के बाद की है क्या केवल भक्तमाल मे वेलि का उल्लेख होने के कारण हम उसे वि० स० १६४४ का मान ले जबकि स्वय भक्तमाल का रचना काल भी अनिर्णीत है [1] इसके विपरीत स्वय वेलिकार के जीवन काल मे ही वेलि की दो अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी थी, इसलिये वेलिकार तो पहले से ही ख्याति प्राप्त थे और यह स्वाभाविक ही है कि परवर्ती कवि अपनी-अपनी कृतियो मे प्रसगानुसार वेलि का उल्लेख करते

(४) डॉ मोतीलाल मेनारिया को ग्रन्थ का रचनाकाल सवत् १६४४ ही मान्य है, पर अन्यत्र प्राप्त सवत् १६३७ व १६३८ के दोहलो से उनके मस्तिष्क मे भी एक भ्रम उत्पन्न हो गया प्रतीत होता है और उन्होने मध्यम मार्ग अपना कर अपने निर्णय मे—'१६३७ को रचना का आरम्भ काल तथा सवत् १६४४ को समाप्ति काल मानना चाहिये' लिखा है.

(५) श्रीकृष्णशकर शुक्ल शायद इस विवादास्पद पचडे मे नही पडना चाहते हैं और कदाचित इसीलिये ही उन्होने अपनी भूमिका मे तद्-विषयक कोई विचार प्रकट नही किये है

(६) श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई ने सवत् १६३८ को ही वेलि का निर्माण काल माना है, पर साथ ही साथ यह भी स्वीकार किया है कि विद्वानो से वेलि की साहित्यिक श्रेष्ठता आदि को प्रमाणित करवाने मे कवि को छ सात वर्ष और लग गये. अतएव जनता के सम्मुख वेलि प्रथम बार वि० स० १६४४ मे ही आई वेलि की कसौटी आदि की कथाएँ दत कथाएँ भर है, अतएव इनकी प्रामाणिकता पर सहज विश्वास कर लेना कठिन है. ये कथाएँ ठीक उसी प्रकार इतिहास सम्मत नही हैं, जिस प्रकार कि इन्ही महाराज पृथ्वीराज का महाराणा प्रताप को पत्र लिखना कई लेखक तो इन्हे अकबर का दरबारी मानते ही नही है, नौरत्नो मे से एक होने की बात दूर रही.[2] वे तो एक साधारण व्यक्ति के रूप मे रहे है, अतएव उनको अपने काव्य को कसौटी पर कसवाने की बात तर्क सगत प्रतीत नही होती.

---

१. भक्तमाल का रचनाकाल सवत् १६४२ से १६८० के बीच का माना जाता है.

२. डॉ० गोपीनाथ शर्मा एम. ए , पी एच-डी. कृत Mewar & Mughal Emperors और डॉ० एस. आर. शर्मा कृत 'महाराणा प्रताप'.

(७) श्री अगरचद नाहटा किन आधारो पर सवत् १६३८ को वेलि का रचना काल मानते है, इसका इन पक्तियो के लेखक को परिचय नही हो सका है फिर भी श्री नाहटा यह कह रहे थे कि उनकी इस मान्यता के लिये उनके पास पुष्ट प्रमाण है नाहटाजी यदि इस पर प्रकाश डालेगे तो साहित्यिक जगत को लाभ होगा परन्तु उन्ही के ग्रन्थालय मे प्राप्त अलभ्य प्रति उनके इस निर्णय मे सहायक बनती हो, ऐसा प्रतीत नही होता.

(८) मेरी अपनी दृष्टि से वास्तव मे रचना-सवत-सूचक जितने भी छद उपलब्ध हैं, वे सब प्रक्षिप्त ही है और इस प्रकार प्रो. नरोत्तमदास स्वामी और पू प बदरीप्रसाद साकरिया से लेखक का मतैक्य है. स्वामीजी व मुझ मे अतर केवल इतना ही है कि आज से कई वर्ष पूर्व प्रमाणो के अभाव मे स्वामीजी ने यह निर्णय कर लिया था कि वेलि के अत मे आये हुये रचना-सवत्-सूचक विभिन्न छद बाद के जोडे हुए प्रक्षिप्त अश है, जबकि हमे तो आज एक ऐसी सम्पूर्ण प्रति भी उपलब्ध है, जो प्राप्त प्रतियो मे सबसे प्राचीन है इसमे रचना-सवत-सूचक कोई भी छद नही है तथा प्रशस्ति के कलस छद के बारे मे विद्वानो के जो भ्रम थे, उसका भी निराकरण हो गया है

यह प्रति ढूढाडी टीका से भी (जिसका लिपि काल वि० स० १६७३) चार वर्ष पुरानी है अर्थात् वि० स० १६६९ की है. जब ढूढाडी टीका को विद्वान वलिकार के जीवन काल मे ही लिखी मानते है तब तो रामा लिखित यह प्रति निश्चित ही वेलिकार के जीवनकाल की है और इसीलिये जब उनके जीवनकाल मे ही लिपिकार रचना-सवत-सूचक छद अथवा निर्माण काल नही दे सका तो परवर्ती लिपिकारो के दिये गये रचना सबधी सवत असदिग्ध रूप से भ्रामक व गलत है.

स्वाभाविक ही यहाँ एक प्रश्न उठ खडा होता है कि सवत् १६३६, १६३७, १६३८ और १६४४ सभी प्रक्षिप्त है तो इनकी कल्पना क्यो की गई ? मेरे अपने विनम्र मत मे या तो ये सवत् लेखक के जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओ से सम्बन्धित है या वेलिकार ने विशेष प्रसगो पर स्वय वेलि का पाठ विद्वानो या भक्तजनो के समक्ष विशिष्ट स्थानो पर किया हो, जिनके आधार पर विविध लिपिकारो ने भिन्न-भिन्न सवतो को उसका रचना काल मान लिया हो.

फिर भी अनिश्चितता के कोहरे को तिरोहित करने के लिये इस ओर अधिक शोध कार्य की आवश्यकता है विश्वास है आज नही तो कल कोई न कोइ अनुसधात्सा इस विषय की पूरी छान-बीन कर सही तिथि का पता लगायेगा.

वेलि का कथानक

कृष्ण रुकमणी सम्बन्धी मूल धार्मिक कथा का अवलोकन हमें सर्वप्रथम श्रीमद्भागवत् के दशमस्कंध के उत्तरार्ध में ५२ से ५५ तक के अध्यायों में होता है. इसी कथा का उल्लेख आगे चल कर हमें विष्णु पुराण व हरिवंश पुराण में कुछ परिवर्तित रूपों में क्रमानुसार ५२वें अध्याय के २६वें खंड और ५९ व ६०वें अध्यायों में मिलता है. मूलतः भागवत व पुराणों के इसी कथा का आधार लेकर परवर्ती कवियों ने अनेकानेक ग्रन्थ—रुकमणी-मंगल, रुकमणी-हरण, रुकमणी-परिणय, कृष्ण-रुकमणी-व्याहलो, कृष्ण-रुकमणी-वेलि, और रुकमणी-स्वयंबर आदि नाम देकर अपने-अपने काव्य-ग्रन्थों का निर्माण कर भगवान के चरणों में अपने श्रद्धा-सुमन चढ़ाये हैं. रुकमणी संबंधी ये ग्रन्थ हमको राजस्थानी, हिंदी, मराठी व गुजराती में उपलब्ध हैं. मराठी में अपेक्षाकृत अधिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं.[1] जबकि राजस्थान व गुजरात में श्रेष्ठ वर प्राप्त करने के लिये कुमारिकायें गौरी-पूजन करती हैं तथा व्रतादि रखती हैं, महाराष्ट्र में इसी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए एकनाथ रचित 'रुकमणी स्वयम्बर' का नित्य प्रति पाठ व पूजन आदि किया जाता है. वैसे महाराष्ट्र व राजस्थान में यह भक्ति ग्रन्थ घर घर में प्रतिष्ठित है और इस प्रकार इसने जन-काव्य का रूप ग्रहण कर लिया है.

'वेलि क्रिसन रुकमणी री, राठोड़ राज प्रिथीराज री कही' का आधार भी भागवत ही है. स्वयं कवि ने 'वेलि' के छंद २९१, प्रथम पंक्ति में भागवत को अपनी वेलि का बीज रूप मानते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

वल्ली तसु बीज भागवत वायो
महि थांणो प्रिथिराज मुख।

पर भागवत के इस बीज द्वारा प्रस्फुटित 'वेलि' ने कालभेद व परिस्थिति भेद से एक नया रूप ही ग्रहण कर लिया है. श्रीमद्भागवत व वेलि में कथा साम्य

---

१ (अ) डॉ० आनंदप्रकाश दीक्षित संपादित वेलि की भूमिका पृ० १६३.
(ब) लेखक का निजी संग्रह.

होते हुये भी वेलि के रचनाकार ने अपनी प्रतिभा तथा कवित्व शक्ति के आधार पर प्रसगोपयुक्त कई मौलिक घटनाओ, वर्णनो आदि का सृजन कर इस अत्यन्त प्राचीन कथा को एक अभिनव रूप दे दिया है वेलि को एक स्वतत्र काव्य बनाने मे तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियो व राजनैतिक वातावरण का बडा हाथ रहा है वैसे तो वेलि के रचना काल मे विद्वान मतैक्य नही है, फिर भी यह तो सभी मानते हैं कि वेलि का रचना काल सवत् १६३६ से १६४४ (नौ वर्ष) के बीच मे हुआ है भक्ति काल इस समय अपने चरमोत्कर्ष शिखर पर पहुँच कर समाप्ति की ओर अग्रसर था तथा रीतिकाल का बीजारोपण हो चुका था भक्ति और रीति के इस सधिकाल मे वेलि का निर्माण हुआ. अतएव अपने पूर्ववर्ती भक्त तथा सत कवियो का प्रत्यक्ष प्रभाव तो पडा ही, साथ ही उस समय तक रचे गये कई शृंगार ग्रन्थो से रीति की जो एक निश्चित परिपाटी निर्मित हो गई थी, उससे वेलिकार का अपने आपको मुक्त रखना सभव नही था. वेलि पर एक और प्रभाव, जो पृथ्वीराज को तथाकथित शृ गारिकता की ओर बहा ले गया, उनका ऐश्वर्यशाली और विलासी मुगल दरबार मे पूरे राजसी ठाट बाट से रहना, वहाँ होते रहने वाले ऐसे समारोहो मे अनिवार्य रूप से निरतर भाग लेना और उनका स्वय का राजघराने मे उत्पन्न होना था. इसके विपरीत किंवदती प्रसिद्ध है कि पृथ्वीराज के ही समकालीन भक्त श्रेष्ठ सत परमानददासजी को जब अकबर के दरबार मे आमत्रित किया गया तो उन्होने 'सतन को सीकरी सो क्या काम, आवत जावत पनहिया घिसावत हो ...... कह कर उस निमत्रण को ठुकरा दिया. अतएव स्पष्ट ही है कि शृंगारिकता का वह मुलम्मा जो पृथ्वीराज के नख-शिख पर चढ सका तुलसीदास, सूरदास आदि अगणित भक्त व सत कवियो को छू भी न सका वेलिकार के स्वय वेलि को आठवे छद मे एक शृ गारिक-काव्य-ग्रन्थ माना है [1] इतना होते हुए भी 'वेलि' एक शुद्ध शृ गार ग्रन्थ न होकर भक्ति से आप्लावित मर्यादा काव्य है।

सच तो यह है कि वेलिकार ने भक्ति और रीति दोनो परम्पराओ का बडी दक्षता और सुन्दरता से निर्वाह कर उसे गीतगोविद की भाँति एक मिश्रित ग्रन्थ बनाने का प्रयत्न किया है,[2] पर मूलत है तो वह एक भक्ति ग्रन्थ ही.

उपर्युक्त सभी कारणो से भागवत की कथा और वेलि की कथा मे बीसियो स्थलो पर स्पष्ट अन्तर पड गया है. वैसे कथा मे वर्णित घटनाभेद तो भागवत,

---

१. ओवरणण पहिलो कीजै तिणि,
　गूथियै जेणि सिंगार ग्रन्थ

२. जयदेव कृत गीत गोविंद भी शृंगार का अन्यतम ग्रन्थ है, पर स्थान स्थान पर भगवान के नामों को प्रयुक्त कर उसमे भक्ति का पुट दिया गया है.

विष्णु पुराण व हरिवश पुराण मे भी है, पर इन सब मे शृंगारिकता का सर्वथा अभाव कहे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी

भागवत

भागवत मे वर्णित कथा का सक्षिप्त रूप इस प्रकार है :—भीष्मक राजा के पाच पुत्र और एक पुत्री रुकमणी थी एक ओर कृष्णगुणगान श्रवण कर रुकमणी ने मन ही मन भगवान कृष्ण को पति के रूप मे वरण कर लिया था तो दूसरी ओर कृष्ण भी रुकमणी के गुणो पर रीझ गये थे युवराज रुक्मी, रुक्मिणी का सम्बन्ध शिशुपाल से करना चाहते थे रुक्मिणी नें एक ब्राह्मण के साथ द्वारिका मे श्रीकृष्ण के पास अपना सदेश भेजा. ब्राह्मण के भोजनादि से निवृत्त होने पर श्रीकृष्ण ने उसके आगमन का कारण पूछा ब्राह्मण ने मौखिक सदेश मे यह कहा कि आज से तीसरे दिन रुक्मिणी का विवाह तय हो गया है अम्बिका पूजन के समय राक्षस विधि से हरण करने का रुक्मिणी का प्रस्ताव भी उसने कह सुनाया. श्रीकृष्ण बड़े व्याकुल हुये ब्राह्मण को रथ मे साथ लेकर श्रीकृष्ण एक ही रात्रि मे कुण्डिनपुर जा पहुँचे उधर निमत्रण मिलने पर शिशुपाल भी बारात लेकर वहाँ आ पहुँचा. नगर को खूब सजाया गया था और शिशुपाल के आगमन पर स्वय राजा भीष्मक उसकी अगवानी के लिये गया शिशुपाल को श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण की कुछ गध लग गई थी इसलिये उसने अपने साथ जरासध को भी ले लिया था. भगवान कृष्ण को अकेला जानकर बलराम ससैन्य कृष्ण की सहायतार्थ आ पहुँचे. उधर रुक्मिणी देर हो जाने से बडी व्याकुल हुई. इतने मे शुभ शकुन के साथ ही उसे प्रसन्न वदन सदेशवाहक ब्राह्मण दिखलाई पडा श्रीकृष्ण को आया जानकर रुक्मिणी बडी आनदित होकर सखियो, सैनिको, राजकर्मचारियो,वादको तथा वदीगणो के साथ अम्बिका पूजन के लिये भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए चली. उधर भीष्मक और अन्य पुरवासियो ने बलराम का भी यथोचित सम्मान किया रुक्मिणी ने अनेक विधि से देवी की पूजा की. उस समय साक्षात जगद्धात्री रुक्मिणी के सुदर स्वरूप को देख कर सैनिक मूर्छित हो गये. इसी समय श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया सैनिको की मूर्छा जब भग हुई तो उन्होने श्रीकृष्ण को घेर लिया रुक्मिणी को इससे बहुत चिता हुई, पर श्रीकृष्ण के हाथो पराजित होकर सभी सैनिक नगर की ओर पलायन कर गये इस पर रुक्मी ने श्रीकृष्ण को हराने की प्रतिज्ञा कर उन पर आक्रमण किया वर वह भी हार गया और ज्यौहि श्रीकृष्ण रुक्मी का वध करने लगे, रुक्मिणी ने उनके पैर पकड लिये इस पर श्रीकृष्ण ने उसे जीवनदान तो दिया, पर उसके सिर के केश काट लिये. इस मुडन कार्य के लिये बलराम ने श्रीकृष्ण की निदा की रुक्मी इस पराजय और अपमान के कारण कुण्डिनपुर नही गया उसने भोजकट नाम का नगर बसाया. द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से विधिवत विवाह किया. जनता आनन्दमग्न हो उठी.

विष्णु पुराण

विष्णु पुराण मे यह कथा अपेक्षाकृत बहुत सक्षिप्त है व इसमे कई घटनाओ का सर्वथा अभाव है. कथा का रूप इस प्रकार है — जब रुक्मी को पता लगा कि श्री कृष्ण रुक्मिणी का हरण कर जा रहे है तो कुण्डिनपुर छोडने के पूर्व वह प्रतिज्ञा करता है कि यदि मै कृष्ण को पराजित कर रुक्मिणी को वापस न ला सका तो यहाँ लौट कर न आऊँगा रुक्मी युद्ध मे परास्त हो जाता है और कृष्ण रुक्मिणी से राक्षस विवाह कर लते है. तत्पश्चात् उनके प्रद्युम्न नामक पुत्र उत्पन्न होता है.

हरिवश पुराण

इस पुराण के ५९वे और ६०वे अध्याय मे कथा का वर्णन इस भाँति किया गया है — श्रीकृष्ण व रुक्मिणी दोनो एक दूसरे के रूप व गुणो पर मोहित होकर एक दूसरे की ओर आकर्षित होत है बलराम सहित श्रीकृष्ण रुक्मिणी के रूप व शिशुपाल के साथ हो रहे उसके विवाह को देखने के लिये कुण्डिनपुर आते हैं जब रुक्मिणी इद्राणी के मदिर मे पूजा के लिये जाती है तो उसके सौंदय पर मोहित हो बलराम से अनुमति लेकर श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण कर लेते है शिशुपाल के सहयोगी जरासध आदि युद्ध मे हार जाते है रुक्मी भी युद्ध मे हारकर भगवान से अभयदान मागता है भगवान से अभयदान प्राप्त होने के पश्चात् रुक्मी भोजकट नामक नगर स्थापित करता है. श्रीकृष्ण द्वारिका पहुँच कर विधिवत विवाह करते हैं

वेलि क्रिसन रुकमणी री

मगलाचरण मे परमेश्वर, सरस्वती, गुरु और श्रीकृष्ण की वदना कर कवि रीतिकालीन परिपाटी के अनुसार यह स्वीकार करता है कि यह एक श्रृगार ग्रथ है उसके पश्चात् कथा के प्रारम्भ मे वेलिकार रुक्मिणी के माता पिता, भाइयो आदि का वर्णन कर रुक्मिणी (जो कि लक्ष्मी का अवतार है) बाल्यावस्था का त्याग कर यौवनावस्था मे प्रवेश करते ही एक स्वाभाविक लज्जा व सकोच ने उसके शरीर मे घर कर लिया है, उसका विस्तृत वर्णन करते है चौदह विद्याओ व चौसठ कलाओ मे प्रवीण रुक्मिणी श्रीकृष्ण के अनुपम गुणो की प्रशसा सुन उनकी ओर आकर्षित हुई भीष्मक भी कृष्ण के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहते थे, पर रुक्मी न विरोध कर अपने पुरोहित द्वारा शिशुपाल को बरात लाने का निमत्रण दिया. नगर खूब सजाया गया स्त्रियाँ मगल गीत गाने लगी. एक वृद्ध ब्राह्मण-पथिक के साथ रुक्मिणी ने अपना पत्र व मौखिक सदेश द्वारिका भेजा थका पथिक सध्या होने ही रास्ते मे सो गया पर भगवत् कृपा से प्रात.काल उठने पर वह अपने आपको द्वारिका मे पाकर विस्मित होता है ब्राह्मण को आते देख श्रीकृष्ण ने सम्मुख

जाकर उसका खूब स्वागत किया और रुक्मिणी के पत्र को हाथ मे लेते ही भगवान आनद विभोर हो गये अत उन्होने ब्राह्मण को ही पत्र लौटा कर पढने की आज्ञा दी. सदेश सुनकर भगवान ने शीघ्र रथ को जुडवाया और कुदनपुर के लिये प्रस्थान किया इधर रुक्मिणी चिन्ता कर ही रही थी कि ब्राह्मण आ पहुँचा और उसने परोक्ष रूप से श्रीकृष्ण के आने की सूचना दी उधर बलराम भी श्रीकृष्ण को अकेला गया जानकर पीछे से सेना सहित कुदनपुर पहुँचे भीष्मक ने दोनो का स्वागत किया दूसरी ओर रुक्मिणी पूर्ण शृ गार कर, अपनी सखियो और अगरक्षको आदि के साथ अबिकापूजन को जाती है रुक्मिणी के अद्वितीय सौदर्य को देख माया के प्रभाव से सैनिक अचेत हो जाते है और कृष्ण रुक्मिणी को रथ पर बिठला कर चल देते हे श्रीकृष्ण के ही पुकार मचाने पर सेना जैसे नीद से जागी हो, श्रीकृष्ण का पीछा किया घनघोर युद्ध मे शिशुपाल आदि के हार जाने पर रुक्मी ने श्रीकृष्ण को ललकारा रुक्मिणी का लिहाज रख कर श्रीकृष्ण ने रुक्मी को न मार, उसके केशो को काट कर उसे विद्रूप बना दिया इस पर बलराम ने जब उनकी खूब भर्त्सना की तो रुक्मी के सिर पर हाथ धर कर श्रीकृष्ण ने केसो को पुन उगा दिया द्वारिका पहुँचने पर अनेक उत्सव हुये और वासुदेव देवकी ने विवाह की तैयारियाँ शुरू की ब्राह्मणो के कहने पर पाणिग्रहण के अतिरिक्त सभी सस्कार विधिवत पूर्ण किये गये रति व ऋतुओ के विस्तृत विवरण के पश्चात् वेलि मे रुक्मणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म लेना, बारह छदो मे वेलि के महात्म्य का वर्णन, दो पदो मे वेलिकार का विनय प्रदर्शन और निर्माणकाल आदि के छद आते है

इस प्रकार हम देखते है कि कथा सूत्र वस्तुत· एक होते हुए भी भागवत, विष्णु पुराण, हरिवश पुराण तथा वेलि की कथावस्तु मे गहरा वैषम्य है डॉ तैस्सितोरी को, भागवत मे केवल चार ऐसे स्थल मिले है जहाँ थोडा बहुत भाव साम्य मिलता है. शेष सारी घटनाएँ और कल्पनाएँ वेलिकार की उर्वर कल्पना-शक्ति की उपज है.

कथा वैषम्य

(१) भागवत, विष्णु पुराण, हरिवश पुराण आदि मे वेलि की भाँति मगलाचरण. ग्रथ का विषय, (तुलसीदासजी के समान) सत असत की वदना, और निर्माणकाल विषयक छद नही है. यह स्वाभाविक ही है क्योकि वेलि की भाँति एक ही विषय को लेकर लिखे जाने वाले जैसे ये स्वतत्र ग्रथ नही है

(२) भागवत, विष्णु पुराण, हरिवश पुराण मे रुक्मिणी के लक्ष्मी का अवतार होने, जन्म बाल्यावस्था, वय सधि, विद्याध्यन और यौवनागमन आदि का उल्लेख नही है जबकि वेलि मे इनका बहुत सुदर वर्णन किया गया है

(३) भागवत, विष्णुपुराण, हरिवशपुराण आदि मे रुक्मी का पुरोहित भेज कर शिशुपाल को बरात लेकर आने का निमत्रण देने की घटना का उल्लेख नही है

(४) भागवत मे शिशुपाल की बरात मे शाल्व, जरासध, दतवक्त्र विदूरथ, पौड्रक आदि के आने का वर्णन है क्योकि उसको आशका थी कि कही श्रीकृष्ण रुक्मिणी का अपहरण न करले. वेलि, विष्णु पुराण और हरिवश पुराण मे इसका कोई उल्लेख नही है.

(५) शिशुपाल की बरात के आगमन पर नगर की सजावट, रुक्मिणी के सदेशवाहक ब्राह्मण का सो जाना और प्रात काल होते ही अपने आपको द्वारिका मे पाना आदि वर्णन भागवत, विष्णु पुराण और हरिवश पुराण मे नही है.

(६) रुक्मिणी का पत्र भेजना वेलिकार की नई सूझ है. भागवत मे रुक्मिणी द्वारा मौखिक सदेश भेजने का वर्णन है, पर हरिवश पुराण मे तो श्रीकृष्ण बिना किसी सदेश के रुक्मिणी के लावण्य से आकर्षित हो, बलराम के साथ अपने आप आ जाते है.

(७) भागवत और वेलि मे रुक्मिणी अबिकापूजन के लिये जाती है जबकि हरिवश पुराण मे अबिका के स्थान पर इद्राणी के मदिर मे जाने का उल्लेख है

(८) वेलि और भागवत मे रुक्मिणी हरण के लिये श्रीकृष्ण बलराम से किसी प्रकार की अनुमति नही लेते जबकि हरिवश पुराण मे बलराम से आज्ञा लेकर वे रुक्मिणी का हरण करते है

(९) युद्ध वर्णन मे चारो कथाओ मे किसी प्रकार का साम्य नही है युद्ध-वर्षा-रूपक वेलिकार की नई सूझ है.

(१०) एक बार युद्ध मे पराजित होने पर भी भागवत मे जरासध आदि अन्य राजागण शिशुपाल को भविष्य मे विजय की आशा दिलवाते हैं, जबकि वेलि, विष्णु पुराण और हरिवश पुराण मे इसका उल्लेख नही है

(११) भागवन और विष्णु पुराण मे युद्ध मे जाने के पूर्व रुक्मी की प्रतिज्ञा का उल्लेख है जबकि वेलि और हरिवश पुराण मे नही है.

(१२) पराजित अवस्था मे रुक्मी का लौट कर वापस न आने का वर्णन तो विष्णु पुराण मे है पर भोजकट नामक नगर बसाने का उल्लेख भागवत और हरिवश पुराण मे ही है. वेलि मे इसका उल्लेख नही है.

(१३) भागवत मे रुक्मिणी के विनय करने पर श्रीकृष्ण रुक्मी को जीवित छोड देते हैं वेलि मे रुक्मिणी विनय नही करती, पर श्रीकृष्ण ही रुक्मिणी के मन का ध्यान रख रुक्मी को नही मारते हैं हरिवश पुराण मे रुक्मी स्वय भगवान से

अभयदान मागता है और श्रीकृष्ण उसे क्षमा कर अभय कर देते है विष्णु पुराण मे इस घटना का उल्लेख नही है

(१४) रुक्मी को विरूप करने पर भागवत मे तथा वेलि मे बलराम श्रीकृष्ण की भर्त्सना करते है और उपालम्भ देते हैं विष्णुपुराण व हरिवशपुराण मे इसका उल्लेख नही है. भागवत मे श्रीकृष्ण की भर्त्सना के उपरात बलराम रुक्मिणी को सात्वना भी देते है.

(१५) भागवत, हरिवश पुराण और वेलि मे जहाँ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के द्वारिका पहुँचने पर विधिवत विवाह का उल्लेख है, विष्णु पुराण मे इसे राक्षस-विवाह घोषित किया है.

(१६) भागवत व हरिवश पुराण मे प्रद्युम्न के उत्पन्न होने का उल्लेख नहीं है जबकि वेलि व विष्णु पुराण मे इसका उल्लेख है.

(१७) विवाहोपरान्त श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का प्रथम मिलन, ऋतु वर्णन, और वेलि का माहात्म्य आदि वेलिकार द्वारा प्रस्तुत किये गये सर्वथा नये प्रसग उसके अपने मस्तिष्क की सूझ है.

एक ही कथा मे घटना-वैषम्य के कारण उत्पन्न विविध रूपो के अवलोकन करने पर लगता है कि वेलि मे सृजित अन्य प्रासगिक घटनाओ के कारण मूल कथा मे किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नही आई है वरन् कथानक अधिक सुघड़ व सुगठित हो गया है तथा काव्यात्मक सौदर्य निखर उठा है

वेलिकार के समकालीन भक्त पद्मा तेली ने भी रुकमणी-हरण के विषय को लेकर 'क्रिसन रुकमणी रो विवाहलो' वि स. १६१६ के आस-पास लिखा है.[1] वेलि जहाँ राजस्थान की साहित्यिक भाषा डिंगल मे लिखी गई है, 'विवाहलो' तत्कालीन जन भाषा मे लिखा गया ग्रथ है और यही कारण है कि जन साधारण मे जो सम्मान व लोकप्रियता 'विवाहलो' को प्राप्त हुई, वह वेलि को न हो सकी. साहित्य-ससार मे वेलि का स्थान निर्विवाद बहुत ऊँचा है ही.

वेलि की भाँति विवाहलो भी वर्णन प्रधान काव्य है. इसमे कुल मिला कर २७० छद व पद हैं विवाहलो मे युद्ध के समय जरा राक्षसी का आना, विवाहोत्सव मे राजस्थान की प्रथानुसार गाये जाने वाले 'बधावा-गीत' व 'गाली गीत' आदि का समावेश, जनकवि भक्त पद्मा तेली की अपनी सूझ है. भाषा की सरलता एव

---

१. द्रष्टव्य 'वरदा' वर्ष ३, अक २ पृ ५५ श्री अगरचद नाहटा का 'रुकमणी मगल' शीर्षक लेख और स. १६६६ के गुटका सग्रह मे प्राप्त पदमा तेली कृत 'श्रीकृष्ण रुकमणी विवाहलो' की सम्पूर्ण प्रतिलिपि.

सरसता, लोक-व्यवहार-चित्रण तथा राजस्थान की सस्कृति मूलक गुण कथन और उसकी वर्णन शैली, इन सभी बातो ने उसे लोक साहित्य का सिरमौर बना दिया है

वेलि और विवाहलो मे उपर्युक्त बातो के अतिरिक्त कथानक मे भी कई अन्य स्थानो पर वैषम्य है.

पद्मा भक्त की ही भाँति राजस्थान के रीति-रिवाजो के आधार पर कोटपूतली के कवि सहसमल ने भी सवत् १७२८ पौष शु ३ गुरुवार को एक 'रुकमणी मगळ' विविध राग रागिनियो मे (गेय काव्य) बडी सुदर रचना की है, युद्ध, विवाह, डोरड़ो, सिर गूथी, राई-लूण उतारना, गाली, भोजन आदि का वर्णन वेलि और विवाहलो से भिन्न प्रकार की स्थानीय विशेषताओ वाली छोटी पर महत्वपूर्ण कृति है.

पद्मा कृत विवाहलो व सहसमल रचित 'रुकमणी मगळ' को ही भाँति इसी विषय पर महाराज पृथ्वीराज राठौड के समकालीन नरहरि दास और नददास ने ब्रजभाषा मे 'रुकमणी मगळ' लिखे है. जहाँ नददास ने कथा का प्रारम्भ शिशुपाल को विवाह के प्रस्ताव भेजे जानी वाली घटना से आरम्भ किया है वहाँ नरहरिदास ने वेली के समान ही भीष्मक के कुण्डिनपुर मे राज्य करने वाली घटना से किया है. नंददास कृत 'रुकमणी-मगळ' व वेलि दोनो उत्कृष्ट कोटि के काव्य है. दोनो रचयिताओ ने अपनी प्रतिभा, काव्य-कौशल व भाषा-सौष्टव का सुदर परिचय दिया है. 'मंगळ' जहाँ भक्तिभावना से ओत-प्रोत सुदर सरल भाषा मे लिखा हुआ समतल मैदान मे प्रवहमान सरिता के समान है तो वेलि भक्ति और शृगार प्रधान कठिन साहित्यिक भाषा-भूमि पर बहने के कारण रसिको व साहित्यकारो के हृदय को ही जीत सकती है.

नरहरिदास का 'मगल' अपेक्षाकृत सरल भाषा मे है और काव्यगत विशेषताओ की दृष्टि से भी उपर्युक्त दोनो ग्रथो की तुलना मे एक उत्कृष्ट ग्रथ नही बन पाया है.

वेलि की भाषा व कला पक्ष

निश्चय ही वेलि की भाषा ओजमयी डिंगल है जो समग्र राजस्थान की साहित्यिक भाषा के सिंहासन पर निर्विवाद आसीन थी. कई विद्वानो ने अनजाने ही इस भाषा को कृत्रिम व कर्णकटु आदि बतलाकर इसके साथ घोर अन्याय किया है. इन विद्वानो ने ऐसा भी मान लिया था कि यह भाषा केवल वीर रस के ही उपयुक्त हैं. शृ गार इत्यादि अन्यान्य रसो के लिये यह सर्वथा अनुपादेय है, परन्तु शृ गार और इतर रसो की सूक्ष्म से सूक्ष्म कल्पनाये भी जब वेलि मे अभिव्यजित हुई तथा इसके दोहले गागर से सागर बन गये तो न केवल साहित्यक रसिक मुग्ध ही हुये पर अनेको ने तो दाँतो तले उगली भी दबाई. हेय दृष्टि से देखा जाने वाला उपेक्षित डिंगल नाम और डिंगल साहित्य अब अधिकाधिक सम्मान व पठनपाठन ही नही शोध का साधन बनने लगा. वस्तुत: यह अति समुन्नत और सक्षम भाषा है, जिसमे प्रत्येक रस का सुदर व साधिकार निर्वाह हुआ हे

वेलि की भाषा का रूप मूलत प्राचोन राजस्थानी है, पर इस पर मध्यकालीन भाषा परिवर्तन की प्रवृत्तियो का प्रभाव स्पष्ट है—

१) रेफ का लोप और उसके स्थान पर या तो पूर्व व्यजन से सयुक्त होकर अथवा अकार सहित 'र' का प्रयोग. यथा—

कर्म का क्रम, करम. धर्म का ध्रम, धरम. स्वर्ग का स्त्रग, सरग निर्मल का न्रिमल अथवा निरमळ. निर्जन का न्रीजण अथवा निरजन. प्रार्थना का पराथना.

२) सयुक्त 'र' का लोप यथा—

प्रसाद का प्रसाय या पसाइ. ब्राह्मण का बामण या बभण.

३) 'ऋ' का स्थान 'र' 'रि' 'र' द्वारा लेना. यथा—

ऋषि का रिषि, रिखि. कृष्ण का क्रिसन, या क्रिस्न.
नैऋत्य का नैरति, नैरति अथवा नैरिति.
मृदग का म्रिदग या म्रदग. कृश का क्रिस, क्रस.
कृपा का क्रिपा. अमृत का अम्रित. इत्यादि

४) मध्य व अन्त्य 'न' के स्थान पर बहुधा 'ण' का प्रयोग[१] यथा–

गृिद्धनी का ग्रीधणी, ग्रीधण, ग्रीझण, ग्रीझणी, ग्रीझणि.
गजगामिनी का गयगमणी, गैंगमणी
चद्राननि का चद्राणणि. ज्वलन का जळण

५) वर्ण वर्गो के दूसरे और चौथे महाप्राण वर्णों का तथा उष्म 'ष' का 'ह' मे परिवर्तन होना यथा–

माघ का माह, मेघ का मेह, मुक्ताफल का मुताहळ या मोताहळ. वसुधा का वसुह, सधव का सुहव, गाथा का गाहा, मुख का मुह, पुष्प का पुहुप, पौष का पोह.

६) मूर्धन्य 'ष' और सयुक्त व्यजन 'क्ष' का 'ख' मे परिवर्तन,[२] यथा–

षट का खट, चक्षु का चख, क्षीण का खीण. क्षुधा का खुधा कर्षण का करखणि, ज्योतिषी का जोतिखी, क्षणान्तर का खिणतरि. नक्षत्र का नखतर.

७) मूर्धन्य 'ष' का 'स' और 'क्ष' का 'छ' मे परिवर्तन. यथा—

भाषा का भासा, क्षुधा का छुधा.

यहाँ पर राजस्थानी भाषा के मुख्य अग, जिनसे गठित होकर वह अपने स्वतन्त्र रूप मे प्रस्थापित हुई, उसके क्रिया स्वरूप, सर्वनाम, विशेषण और विभक्तियो आदि के कुछ शब्द सअर्थ दे रहे है, जिनसे सगठन का एक मोटा चित्र सामने उभर आता है–

क्रिया–

माडणो = आरभ करना. औझडणो = प्रहार करना. ठरणो = ठडा होना
आणणो = लाना. दीसणो = दिखाई देना आखणो = कहना.
आपणो = देना. आपडणो = पीछे भाग कर पकड लेना.
मुणणो = कहना. साभळणो = सुनना. कळकळणो = चमकना.
हा = थे. थयो = हुआ हुइयै = होगा.

---

१ शब्द के प्रारभ का 'न' कभी 'ण' मे परिवर्तित नही होता जैसा कि सत साहित्य के विद्वान श्री परशुराम चतुर्वेदी ने मीराँपदावली मे बतलाया है यथा- नद का णद, नैन का णैण, नैनन का णैणण इत्यादि प्रत्येक स्थान पर न के ण मे होने के चतुर्वेदीजी के नियम को मान कर हम अर्थ का अनर्थ कर बैठेंगे उदाहरण के लिये 'मन' और 'मण' राजस्थानी मे 'मण' का अर्थ चालीस सेर के वजन से है श्री चतुर्वेदीजी ने मीरापदावली के प्रथम पद मे ही 'रे मण परस हरि रै चरणां, पाठ देकर अर्थ का अनर्थ कर दिया है. क्या चालीस सेर वाला वजन हरि के चरणो को स्पर्श करेगा ?

२. राजस्थानी का यह परिवर्तन प्रभाव ब्रज और अवधी भाषाओ पर भी पाया जाता है.

सर्वनाम

हू = मैं. तूभ = तेरा. मूभ = मेरा अम्हां = हमारे
सो = वह. तइ = उस, उसको. तिणि = उस, उसने, उससे, उसमे.
जिका = जो जासु = जिसका. जिणि = जिस. कुण = कौन
काई = क्या औ = यह. ईए = इसने. किहि = किसी इत्यादि

अव्यय

म = मत. नीठि = कठिनतासे वळे या वळि = फिर.
नेडउ = निकट साम्हा = सामने प्रति = से, ओर, प्रत्येक.
किरि = मानो हिव = अब. अजे = अभी तक इत्यादि

विभक्तिएँ

रा, री, रे = का, की, के
ची, चे, चौ = की, के, का
तणा, तणी, तणै, तणो = का, की, के, को इत्यादि

शब्द भण्डार

वेलि मे डिंगल के अतिरिक्त संस्कृत के तत्सम, कुछ ठेठ प्राकृत व अपभ्रंश, कुछ विदेशी शब्द तथा देशज शब्दो का समुचित प्रयोग किया गया है यह इस बात का भी प्रत्यक्ष प्रमाण है कि कवि को न केवल अनेक भाषाओ का ज्ञान था, बल्कि इन शब्दो को अपने भावानुकूल अभिव्यक्ति का माध्यम बना कर कवि ने अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ता का परिचय दिया है

तत्सम शब्द

कस्मात्, कस्मिन, किल मित्र, किमर्थ, किमत्र, केन, कार्य,
परियासि, कुत्र, गति, मति, नासिका, पयोधर, कुच, कपोल, सुर, भ्रमर इत्यादि

देशज शब्द

लाडो, बाकिया, अंधारी, आडग, काठळ, निवाण
बाजोट, कोरण, वळे, अनड, ढूलडी, पिण आदि ।

तदभव शब्द

परमेसर, सरसति, वागेसरी, रिखेसर, प्रियाग, नयण आदि ।

विदेशी शब्द

नासफरिम, गरकाब, सिलह, हवाई आदि ।

मराठी व गुजराती प्रत्यय और अव्यय

चा, चैं, चो, ची और शू ।

इस प्रकार हम देखते है कि प्रसगानुसार सस्कृत, राजस्थानी व विदेशी अनेक भाषाओ की शब्दावली लिये 'वेलि' का स्वरूप वस्तुत: निखर आया है 'वेलि' की भाषा पर कवि का पूर्ण वर्चस्व था जिससे उसमे सरसता व रसाभिव्यक्ति की समर्थता के दर्शन होते है यह बात स्वय कवि ने छद स २९७ के प्रथम दुहाले मे स्पष्ट की है—

भाषा, सस्कृत, प्राकृत भणता,
मूझ　भारती　ए　मरम　।

वेलि मे सस्कृत का सर्वश्रेष्ट उदाहरण तो छद स. ५५ मे है जब सदेशवाहक ब्राह्मण, रुक्मिणी का पत्र ले कर द्वारिका पहुचता है और वहाँ श्रीकृष्ण उससे उसका परिचय पूछते हैं —

कस्मात? कस्मिन ? किल मित्र ! किमर्थ ?
　　केन कार्य ? परियासि कुत्र ?
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण !
　　पुरतो मे प्रेषित पत्र ॥५५॥

अलंकार

जिस प्रकार सस्कृत का अनुसरण करते हुये भी राजस्थानी छदशास्त्र की अपनी मौलिकताएँ है उसी भाँति इसका अपना अलकार शास्त्र है कवि मछ कृत 'रघुनाथ रूपक' और किसना आढा प्रणीत 'रघुवर जस प्रकाश' आदि उसके अपने डिगल रीति ग्रथ है वस्तुत डिगल के छद व अलकार-शास्त्र का स्वतत्र रूप से विकास हुआ है.

वेलि अलकारो का रत्नाकर है. शब्दालकारो व अर्थालकारो के साठ से भी अधिक भेदोपभेदो का इसमे प्रयोग हुआ है जैसा कई बार देखा जाता है कि कई कवियो के काव्य इनसे बोझिल बन जाते है, पर पृथ्वीराज के काव्य मे एक साथ चार चार अलकारो के प्रयोग पर भी दुरूहता और कृत्रिमता का नाम मात्र नही है. इसके विपरीत भाषा बडी सशक्त व सजीव बन गई है. इनसे भावोत्तेजना मे बडी सहायता पहुँची है स्व श्री विपिनबिहारी त्रिवेदी के शब्दो मे कहे तो–

'पृथ्वीराज के अलकार काव्य की आत्मा **रस** — के साधक है न कि बाधक' और फिर पृथ्वीराज हिदी के उस काल (रीतिकाल) मे हुये थे जहाँ अलकारविरहित कामिनी, कविता और मित्र शोभा नही पाते थे तथा जहाँ इसी बल पर ताम्र-पत्र, पट्टे इत्यादि प्राप्त होते थे प्रो स्वामी के शब्दो मे वास्तव मे वे कारीगर थे, जो उपयुक्त अलकारो को उपयुक्त अवसरो पर साहित्यिक श्रीवृद्धि के लिये प्रयुक्त कर देते थे ।

शब्दालंकार

शब्दालकारो का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है. राजस्थानी के प्रमुख शब्दालकार **वयणसगाई** का तो अति कठोरता से पालन हुआ है वयणसगाई को डिंगल कवियो ने काव्य का अपरिहार्य अग माना है प्रो नरोत्तमदास स्वामी ने ठीक ही लिखा है कि "ससार की किसी भी भाषा मे शायद ही किसी अलकार का निर्वाह इतनी कठोरता के साथ किया गया हो" वयणसगाई के अतिरिक्त अनुप्रास और उसके विभिन्न भेद छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास और लाटानुप्रास, यमक के दोनो भेद सार्थक और निरर्थक और श्लेष अलकारो का प्रयोग कवि ने साधिकार किया है. इसके साथ कवि ने पुनरुक्तिप्रकाश अलकार का भी खुल कर प्रयोग किया है

अनुप्रास

रस, भाव आदि के अनुकूल वर्णों का बारबार प्रकर्षता से पास पास मे रखने को अनुप्रास कहते है अनुप्रास के तीनो भेदो का कवि ने अबाध रूप से प्रयोग किया है यह अतिशयोक्ति नही होगी, यदि हम यह कहे कि सारी वेलि अनुप्रासमय है

छेकानुप्रास

छेक का अर्थ है 'चतुर' चतुरजनो को प्रिय होने के कारण इसे छेकानुप्रास कहते है इसमे वर्णों का एक ही क्रम से प्रयोग होना चाहिये. वेलि मे से उद्धरण दृष्टव्य है —

लाज लोह लगरे लगाये,
गय जिमि आणी गय-गमणि

वृत्यनुप्रास

जिसमे वृत्तिगत एक अथवा अनेक वर्णो की अधिक बार आवृति होती हो उसे वृत्यनुप्रास अलकार कहते है यथा—

बहु विलखी वीछडतइ बाळा.
बाळ – सघाती बाळपण ।

लाटानुप्रास

एक या एक से अधिक शब्द एक ही अर्थ मे, पर तात्पर्यमात्र की भिन्नता से अधिक बार दुहराये जायँ तो उसे लाटानुप्रास कहते है यथा—

जळनिधि ही समाइ नही जळ
जळबाळा न समाइ जळदि

और

घटि घटि घण घाउ, घाइ घाइ रत घण
ऊच छिछ ऊछळइ अति

पुनरुक्तिप्रकाश

जहाँ शब्द की आवृति हो तथा प्रत्येक बार उस शब्द का अर्थ अभिन्न हो और साथ ही अन्वय प्रत्येक बार भिन्न हो, वहा पुनरुक्तिप्रकाश अलकार होता है यथा—

जिणि सेस सहस फण, फणि फणि बि बि जीह
जीह जीह नव नवौ जस.

एक ही साथ कवि ने चार शब्दालकारो (छेकानुप्रास, लाटानुप्रास, वृत्यनुप्रास और यमक) को इस दोले मे कितनी सुदरता से प्रयुक्त किया है—

कळकळियां कुत किरण कळि ऊकळि
वरजित विसिख विवरजित वाउ
धडि धडि धबकि धार धारूजळ
सिहरि सिहरि समखै सिळाउ ॥११६॥

श्लेष

पिंडि नीपनौ कि खेत्र प्रवाळी
सिरा हस नीसरै सति ॥१२५॥

उपर्युक्त दोहले के पिंडि, प्रवाळी और सिरा मे श्लेष अलकार है. पिंडि = (१) वृक्ष का तना (२) धड. प्रवाळी = (१) विद्रुम (२) किशलय. सिरा = (१) ऊपर का भाग (२) रक्तनाडी (३) सिट्टे.

वयणसगाई

वैसे वयणसगाई अलकार को अनुप्रास अलकार कहा जा सकता है, पर यह उससे भिन्न और अधिक व्यापक है. इसमे चरण के प्रथम शब्द के आदि वर्ण को उसी चरण के अतिम शब्द के आदि मे लाकर सबध स्थापित किया जाता है—

सरसती न सूझै, ताइ तू सोझै
वाउवा हुऔ कि वाउलौ
मन सरिसौ धावतौ मूढ मन
पहि किम पूजै पागुलो ॥४॥

उपर्युक्त छद के प्रथम चरण मे स, दूसरे मे व, तीसरे मे म और चौथे चरण मे प वर्ण सबध अर्थात वयण सगाई अलकार है. वेलि मे एक दो अपवादो को छोडकर वयणसगाई अलकार का सर्वत्र प्रयोग हुआ है, जो पृथ्वीराज की काव्य-क्षमता का सूचक है वयणसगाई अलकार के भी अनेक भेद होते है—उत्तम, मध्यम और अधम. वैणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अतिम शब्द के आदि, मध्य और अत मे आता है—इस दृष्टि से भी वैणसगाई के तीन भाग माने गये है :—

(१) आदिमेल (२) मध्य मेल और (३) अतमेल. वैसे कवि ने अधिकांशत: उत्तम वैण सगाई का ही प्रयोग किया है. पर कही कही मध्यम या अधम वैणसगाई के दृष्टात भी दृष्टिगोचर होते हैं.

आदि मेल

माखण चोरी न हुवै माहव ।
रुखमिणी कमोदणी रुख ।

उपर्युक्त उदाहरणो मे वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अतिम शब्द के आदि मे आया है. माहव का 'मा' और रुख का 'रु' ।

मध्य मेल

वरसि अचळ गुण अगी ससी सवति ।
मकरध्वज वाहृणि चढयौ अहिमकर ।

उपर्युक्त दोनो उदाहरणो मे वैण सगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अतिम शब्द के मध्य मे आया है. सवति मे 'व' और अहिमकर 'म' की स्थिति दृष्टव्य है.

अंतमेल

कस छूटी छुद्र घटिका

इस दुहाले मे घटिका शब्द मे 'का' अतमेल का उदाहरण है.

सामान्यत वर्ण-मैत्री के नियम निम्नलिखित है—

(१) असमान स्वर परस्पर मित्र होते है जैसे अ, उ, इ आदि.
(२) अर्द्ध स्वर (य, व) मे भी मैत्री होती है
(३) ब और व मे भी मैत्री होती है.
(४) सभी स्वरो और अर्द्ध-स्वरो मे वर्ण मैत्री होती है.
(५) अल्प प्राण वर्ण अपने समयोगी महाप्राण का मित्र होता है.
(६) त वर्ग और ट वर्ग के समयोगी वर्ण मित्र होते है

अर्थालंकार

अर्थालकारो मे कवि ने दृष्टात, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, सदेह विशेषोक्ति, अनन्वयोपमा, सार, परिकराकुर, काव्यार्थापत्ति, निदर्शनामाला, लुप्तोत्तमा, यथासख्य, उपमा, हेतु, विभावना, स्वाभावोक्ति, अत्युक्ति, रूपक, पूर्णोपमा, सहोक्ति, प्रतीप, पदार्थावृत्तिदीपक, अतिशयोक्ति, उदात्त, व्याघात, दीपक, एकावलि, परिकर, काकुवक्रोक्ति, हेतु समुच्चय, उल्लेख, व्यतिरेक, हेतूत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा, भ्रातिमान, वक्रोक्ति, श्लिष्ट रूपक, मालोपमा, असम, अपह्नुति सागरूपक, उदाहरण, प्रतिवस्तूपमा अप्रस्तुतप्रशसा, असगति, अनुमान, मीलित, काव्यलिंग, पर्यायोक्ति, अधिक, अल्प,

कारणमाला, अर्थान्तरन्यास, स्मरण, समासोक्ति, विशेष, अन्योन्य आदि का प्रयोग किया है. उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा तो बहुतायत से प्रयुक्त हुये है.

छंद

डिंगल का अपना छद शास्त्र है इसके अनुसार छोटा साणोर छद के मुख्य चार भेदो मे से वेलियो और खुडद साणोर दो भेद है वेलि मे इन दोनो छदो का समुचित रूप से प्रयोग हुआ है अतएव यह कहना गलत होगा कि 'क्रिसन-रुकमणी री वेलि' केवल वेलियो छद मे ही लिखी गई है और इसी कारण इसका नाम वेलि पडा.

वेलियो छद मे सामान्यत विषम चरणो मे १६ व सम चरणो मे १५ मात्रायें होती हैं तथा अत मे SI होना चाहिये। प्रथम दोहले के प्रथम चरण मे १८ मात्राये भी हो सकती है यथा—

SS II II II SI ISS
वीणा डफ महुयरि बस वजाए = १८
SS II II SII SI
रोरी करि मुख पचम राग = १५

वेलि मे वेलिकार ने वेलियो छद की मात्राओ का तो ध्यान रखा है, पर अपनी सुविधानुसार स्वतत्रता से काम लेकर SI के स्थान पर लघु लघु, लघु गुरु व गुरु गुरु का भी प्रयोग किया है.

खुडद-साणोर मे सामान्यत: विषम चरणो मे १६ व सम चरणो मे १३ मात्राये होती हैं और अत मे लघु लघु या लघु गुरु आना चाहिये इसमे भी प्रथम दोहले के प्रथम चरण मे १८ मात्राये हो सकती हैं यथा—

S III SIS II SIIS
श्री-वदनि पीतता, चिंति व्याकुलता = १८

III IIIS SI II
हियइ ध्रगध्रगी खेद हुह = १३

II II SI IS SIIII
घरि चखि लाज पगे नेउर-धुनि = १६

IS ISII SI II
करे निवारण कठ कुह ॥ = १३

उपर्युक्त विवरण से यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छद को हम छोटा साणोर ही मानें.

मुहावरा

सुदर शब्द चयन के साथ-साथ कवि ने अपनी कृति मे प्रचलित मुहावरों का भी यथास्थान स्वाभाविक प्रयोग किया है इससे भाषा लावण्यमयी हो गई है. यथा—

वाद माडणो = हठ ठानना ।	पग माडणो = भागना बद कर मुकाबला करना ।
वाहर चढणो = आर्त की सहायतार्थ आक्रमण करना	मिस करणो = बहाना बनाना ।
	लोह साहणो = लोहा लेना ।
दीपक देवणो = दीपक जलाना ।	मन राखणो = मन की बात करना ।
कहणौ आवणौ = कहते बनना ।	मीट लागणी = नीद की झपकी आना ।
कठ करणो = मुखाग्र करना ।	

साधारणतः मुहावरो के अस्वाभाविक प्रयोग से भाषा बोझिल बन जाती है, पर वेलि मे ऐसा सभव नही हो पाया है उपर्युक्त सारे मुहावरे वास्तव मे इतने एक रस हो गये है कि इन्हे ढूढने मे यथेष्ट परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है.

वयणसगाई के सतत श्रेष्ठ प्रयोग, से युक्त तथा अन्य पचास से भी अधिक विविध अलकारो का प्रवहमान शैली मे बिना किसी गत्यावरोध के जो उत्कृष्ट रचना वेलि के रूप मे हमे आज उपलब्ध है, उसका डिगल साहित्य मे तो अद्वितीय स्थान है ही, पर जैसे जैसे इसका अध्ययन और अध्यापन विस्तृत बनता जायेगा, ससार की विद्वद्मडली का यह केन्द्र बिन्दु बनेगी और इस प्रकार ससार के गौरव ग्रथो मे समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगी.



वेलि के पात्र

आकार मे लघु होते हुए भी वेलि एक महाकाव्य है. वर्णन प्रधान होने के कारण इस काव्य मे चरित्र-प्रधान काव्यो की भाँति चरित्र-चित्रण का अवकाश अपेक्षाकृत कम रहा है. फिर भी काव्याकार की मर्यादा मे रहकर कवि ने चरित्रो को उभारने का जितना प्रयास किया है, वह सफल रहा है एक बात और भी है कथानक के नायक (श्रीकृष्ण) और नायिका (रुक्मिणी) दोनो इतने लोकप्रिय व प्रसिद्ध पौराणिक देवी पात्र रहे है कि इस देश की धर्मप्राण जनता के लिये उनके चरित्र की विशद व्याख्या की आवश्यकता नही है सर्वपूज्य और सर्वशक्तिमान होने के कारण भी कदाचित कवि ने इस ओर कम ध्यान दिया है.

शास्त्र-सम्मत चार प्रकार के (धीरोदात्त, धीरोदत्त, धीरललित और धीर प्रशात)नायको मे से धीरोदात्त नायक मर्वोपरि है भगवान श्रीकृष्ण इस कथा के नायक हैं. उनसे श्रेष्ठ धीरोदात्त नायक और कौन हो सकता है? वेलि के प्रमुख पुरुष-पात्रो में कृष्ण, रुक्मकुमार, बलराम व दूत के रूप मे ब्राह्मण आते है स्त्री-पात्रो मे प्रमुख पात्र रुक्मिणी ही है गौण पुरुष-पात्रो के अन्तर्गत रुक्मिणी के पिता भीष्मक, शिशुपाल, उसके सुभट, कुन्दनपुर के नागरिक, गौरी-पूजन के समय रुक्मिणी के साथ चलने वाले सैनिक तथा द्वारिका के नागरिको का समावेश है, जबकि गौण स्त्री-पात्रो मे रुक्मिणी की माता, उसकी सखियाँ, द्वारिका तथा कुदनपुर की स्त्रियाँ है. प्रतिनायक के रूप मे शिशुपाल के पात्र को उभारने की आवश्यकता लगती है, पर वास्तव मे कथा की वर्णनात्मकता मे काव्य को सुगठित बनाये रखने के लिये जितना अपेक्षित था, उतने ही चरित्र-चित्रण को वेलिकार ने महत्व दिया है. उससे अधिक तिल भर भी नही.

वैसे प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पक्ष होते हैं—एक व्यक्तिगत व दूसरा सामाजिक साहित्य मे पात्रो के इन दोनो पक्षो पर बराबर विचार होता रहता है, पर वेलि मे श्रीकृष्ण और रुक्मिणी दोनो अवतारी है, अतएव उनसे कई अलौकिक कार्य हो जाते हैं.

रुक्मिणी

जैसा कि 'वेलि का काव्यरूप' मे हमने निर्देश किया है, रुक्मिणी 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' की न केवल नायिका ही है, बल्कि उसका सर्व प्रमुख-पात्र है. कवि ने

रुक्मिणी के जन्म से लेकर प्रपौत्र अनिरुद्ध के उत्पन्न होने तक की कथा का इसमे समावेश कर, रुक्मिणी के सुदीर्घ जीवन की अनेक झाँकियो का उत्तम चित्रण किया है काव्य के प्रारभ मे ही रुक्मिणी को जगद्धात्री और लक्ष्मी का अवतार आदि बता कर कवि ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह एक सामान्य राजकुमारी न होकर, अलौकिक पात्री है —

'रामा अवतार नाम ताइ रुकमणि'.

विदर्भ देश के राजा भीष्मक की प्राणप्यारी पुत्री रुक्मिणी अनिद्य सुन्दरी थी बचपन मे ही वह बालक्रीडा करती हुई ऐसी लगती थी जैसे मानसरोवर मे क्रीडा करता हुआ हस का बच्चा बत्तीस लक्षणो से युक्त रुक्मिणी राज्यप्रासाद मे सखियो सहित इस प्रकार लगती है मानो निर्मल आकाश मे चद्रमा तारागणो के साथ शोभित हो रहा हो —

रामा अवतार नाम ताइ रुक्मिणि
मान सरोवरि मेरुगिरि
बाळकति करि हस चौ बालक
कनकवेलि बिहुँ पान किरि ॥

× × ×

राजति राजकुँअरि राय अंगण,
उडीयण वीरज अम्ब हरि ।

शैशवास्था मे ही उसने अपनी अप्रतिम प्रतिभा के बल पर अनेक शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लिया था तथा चौसठ कलाओ को भी सीख लिया था —

व्याकरण. पुराण, समृति सासत्र विधि,
वेद च्यारि, खट अग विचार ।
जाणि चतुरदस, चौसठि जाणि,
अनत अनत तसु मधि अधिकार ॥२८॥

यौवनागम के साथ ही स्त्री सहज जो लज्जा उसे होती है तथा अपने माता-पिता के सामने उसे अपने अगो को छिपाने मे भी जो लज्जा अनुभव होती है, उसका वर्णन कवि ने बडे सुन्दर ढग से किया है, द्रष्टव्य है —

आगळि पित मात रमती अगणि,
काम विराम छिपाडण काज ।
लाजवती अगि एह लाज विधि,
लाज करन्ती आवै लाज ॥१८॥

श्रीकृष्ण के गुणो का श्रवण कर रुक्मिणी उनकी ओर आकर्षित होती है और उन्हे पति रूप मे प्राप्त करने के लिये हर-गौरी की पूजा करती है पूर्वराग का यह सुन्दर उदाहरण है—

साभळि अनुराग थयो मन स्यामा,
वर प्रापति वछती वर।
हरि गुण भणि, ऊपनी जिका हर,
हर तिणि वदे गावरि हर ॥२६॥

वाछित पति-प्राप्ति के लिये इसी परम्परा के अनुकरण मे हमारे देश मे आज भी कुमारिकाएँ इस व्रत का बडे सयम से पालन करती है. भीष्मक और उनकी पत्नी यही चाहते थे कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से ही हो, पर रुक्मी अपनी बहिन का विवाह गुण, शील, वश आदि मे उनके ही समान शिशुपाल से करना चाहता था यही रुक्मिणी के धैर्य की परीक्षा थी उसे भगवान मे अपार श्रद्धा थी. वह उन्हे सादर स्मरण कर ब्राह्मण के द्वारा सदेश प्रेषित करती है जो उसकी विनय और बुद्धिमना का द्योतक है रीतिकालीन विरहिणी नायिका की भाँति पर उसकी भाँति अतिशयोक्ति पूर्ण व ऊहात्मक न होकर भी उसने यह कागज अपने काजल मिले अश्रुओ की स्याही और नखो को लेखनी बना कर लिखा था—

× × ×
लिखि राखे कागळ नख लेखणि
मसि काजळ आँसू मिळित ॥४२॥

यक्षिणी का मेघ द्वारा और मारवणी का क्रौच (कुरझा) पक्षी के द्वारा और लोकगीतो की नायकिओ का सुए द्वारा सदेश-सप्रेषण-विधि हमारे साहित्य की अन्यतम धरोहर है रुक्मिणी ने अपने इस पत्र मे एक सच्चे भक्त की भाँति, अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, तथा अशरणशरण को उनके विरुद और जन्म-जन्मान्तर के सबध का स्मरण करवाया था कि तीन तीन बार आपने मेरी रक्षा की थी, चौथी बार क्या आप मेरी रक्षा के लिये चढ कर नही आयेगे —

चौथीआ वार, वाहर करि चत्रभुज,
सख चक्र धर गदा सरोज।

एक अभिसारिका नायिका की भाँति रुक्मिणी ने अपने पत्र मे मिलन स्थल हर-गौरी के मन्दिर का बडी सूझ-बूझ से सकेत कर दिया था—

पूजा मिसि आविसि पुरखोत्तम
अबिकालय नयर आरात ॥६६॥

अपने इस चातुर्यपूर्ण पत्र लेखन मे रुक्मिणी पूर्णतया सफल हुई उसके इस मनोवैज्ञानिक व मर्मस्पर्शी पत्र ने अचूक कार्य किया. श्रीकृष्ण पर इसका अनुकूल प्रभाव पडा और वे द्रवित होकर तुरत रुक्मिणी का हरण करने चल पड़े.

ब्राह्मण का विलब से लौटना और भगवान के आगमन के किसी समाचार के अभाव मे रुक्मिणी का चितातुर होना स्वाभाविक था, फिर भी उमे दृढ विश्वास था कि श्रीकृष्ण चाहे तो निमिष मात्र मे यहा उपस्थित हो सकते है ब्राह्मण को देखते ही रुक्मिणी उसके चेहरे के भावो से समझ जाती है कि परिस्थति सानुकूल है

श्रृ गार स्त्रियो का सदैव से ही प्रिय विषय रहा है रुक्मिणी ने भी इसके पश्चात् अपना अन्यतम श्रृ गार किया और जब देवी पूजा के पश्चात् वह मदिर से बाहर आई तो उसके अपूर्व सौदर्य और अग भगिमा तथा मन मोहिनी मुसकान के फलस्वरूप सारी सेना सम्मोहित हो गई. इसी बीच श्रीकृष्ण रथ लेकर आ पहुँचे और रुक्मिणी का हाथ पकड उसे रथ मे चढा, रथ हाँक दिया. हरिणाक्षी का हरि हरण कर चले गये —

वाहर रे वाहर कोई छै वर,
हरि हरिणाखी जाइ हरि ।।

रुक्मिणी को अपने भाई से अपार प्रेम था युद्ध के समय जब रुक्मी ने भगवान कृष्ण को ललकारा तो भगवान ने अपनी प्रियतमा की मन की बात को समझ उसका वध न कर केवल उसके केश काट दिये रुक्मी के विद्रूप होने से रुक्मिणी के हृदय को पुन आघात-सा लगा कृष्ण ने उसके हृदयगत भावो को ताड और बलराम की प्रताडना पर रुक्मी के केश पुन॰ उत्पन्न कर दिये पति और भाई के बीच युद्ध से उत्पन्न रुक्मिणी के अन्तर्द्वन्द्व को कवि ने मुखरित नही होने दिया है.

प्रथम मिलन-रात्रि के समय रुक्मिणी मे स्थित सात्विक और सचारी या व्यभिचारी भावो यथा स्वेद, लज्जा, वैवर्ण्य, भय और सकोच आदि का जो सहज प्राकृतिक वर्णन कवि ने किया है, वह अत्यन्त वास्तविक व मार्मिक है—

स्वेद—

कीधइ मधि माणिक हीरा कु दणि,
मिळिया कारीगर मयण ।
स्यामा तणइ लिलाटि सोहिया,
कु कुम-बिंदु प्रसेद-कण ।।१७५।।

(रुक्मिणी के भाल पर कु कुम की बिदिया और पसीने की बू दे शोभायमान थी ऐसा जान पडता था मानो कामदेव रूपी चतुर कारीगर ने कुन्दन पर, माणिक को मध्य मे रख कर हीरे जड दिये हो)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने रुक्मिणी के अद्वितीय चरित्र का भव्य और सर्वांगपूर्ण चित्राकन किया है, जो देवी पात्र होते हुये भी इस धरती का लगता है और जो गरिमामय होते हुये भी दैनदिन जैसा स्वाभाविक लगता है.

कृष्ण :

कथा नायक कृष्ण, जो कुल से उच्च, गरिमा से मडित, शौर्य और साहस की प्रतिमूर्ति तथा आदर्श प्रेमी के रूप मे अंकित किये गये हैं, एक सामान्य पुरुष न होकर अवतारी पुरुष है. कवि इस तथ्य को भूलता नही है कि वे श्री-पति हैं. ऐसे भगवान का पात्राकन करना कोई सहज कार्य नही है फिर भी कवि एक सद्प्रयत्न करता है क्योकि ऐसा किये विना जीवन का साफल्य कहाँ ?

श्रीकृष्ण एक आदर्श प्रेमी है रुक्मिणी के पत्र की प्राप्ति पर वे एक क्षण भी व्यर्थ न गँवा कर, यहाँ तक कि बलराम को भी सूचित किये बिना अकेले ही तुरत रवाना हो जाते हैं उन्हे एक प्रेमी भक्त पुकार रहा है. वे विलम्ब कैसे सह सकते ?

सारग मिळीमुख साथि सारथी,
प्रोहित जाणणहार पथ ।
कागळ चउ ततकाल क्रिपानिधि,
रथि बइठा साभळि अरथ ।।६७।।

जब भीष्मक की सेना द्वारा मन्दिर का सारा प्रागण खचाखच भरा हुआ था, ऐसे समय मे भगवान श्रीकृष्ण का रथ पर अकेले आना और रुक्मिणी का हरण करना उनके अतुलित साहस, अनुपम शौर्य, अनूठी निर्भीकता तथा विद्युत सम क्षिप्रता का भव्य परिचय है. वे किसी चोर की भाँति नही आये थे. रुक्मिणी को ले जाते समय उन्होने उपस्थित समुदाय को ललकारा था कि हरि हरिणाक्षी को लिये जा रहा है, यदि उसका कोई वर हो तो छुडाने के लिये आ जाय.

ऐसे श्रीकृष्ण तो पूर्णकाम योगेश्वर थे, फिर भी रुक्मिणी के रूप सौदर्य द्वारा प्रेरित उनकी आँखे अतृप्त है वे बार बार अपनी प्रियतमा की ओर इस भाँति देखते है, जैसे कोई निर्धन धन को लालायित दृष्टि से देखता है—

अति प्रेरित रूप आँखियाँ अत्रिपत,
माहव जद्यपि त्रिपत मन ।
वार वार तिम करै विलोकन,
धण मुख, जेही रक धन ।।१७०।।

द्वारकाधीश होते हुये भी, जैसे ही वे सदेशवाहक ब्राह्मण को आते देखते है उठ कर उसका स्वागत करते है व प्रणाम करके सत्कार करते है. भगवान के विनयशीलता की यह पराकाष्ठा है

प्रणयोत्सुक श्रीकृष्ण की उत्कठा, सचमुच एक नव-परिणीत वर की भाँति है. भगवान का वर्णन करते हुये भी कवि ने एक साधारण वर (मनुष्य) की मनोदशा का तादृश्य चित्रण प्रस्तुत किया है. वे अधीर है अपनी प्रेयसी का रूप पान करने के

लिये और इसीलिये वे एक क्षण भर भी स्थिर नही बैठ सकते. शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक लौटना, पैरो की आहट व नूपुर ध्वनि सुनने के लिये दरवाजे पर कान लगाना, मन मे एक स्वर्गीय रोमाच उत्पन्न होना आदि आतुर प्रियतम के मनोभावो का कवि ने बडा मनोहारी वर्णन किया है—

पति आतुर त्रिया मुख पेखण
निसा तणौ मुख दीठ निठ ।

× × ×

अटत सेज द्वार बिच आहुटि,
स्रुति दे हरि घरि समाश्रित ।।

वे एक कुशल शासक, व्यवस्थापक व आदर्श पति है, जिनके राज्य मे सारी प्रजा सानद व निर्भय है. अब तो जगत के निर्माणकर्ता स्वय जगत मे बसने लगे हैं और अनत लीलामय भगवान स्वय मानवी लीला करने मे लगे हैं तो फिर भय कैसा ? उन्ही के प्रताप से क्रोध, निंदा, हिंसा, नशा और दुर्वचन आदि अस्पृश्यो की भाँति सदैव के लिये दूर हो गये हैं—

ससार सुपहु करता ग्रह सग्रह,
गिणि तिणि हीज पचमी गाळि ।
मदिरा रीस हिंसा निंदा मति,
च्यारे करि मूकिया चडाळि ।।२७७।।

जैसा कि हम ऊपर कह आये है, भगवान के चरित्र का विस्तृत वर्णन कवि को अभीष्ट न था. फिर भी, जितने भी अश का वर्णन किया गया है, वह प्राकृतिक व उत्तम है.

रुक्मकुमार :

वाचाल, विवेकहीन व अधीरता के कारण अस्थिर रहने वाला रुक्मकुमार, विदर्भ-पति भीष्मक का ज्येष्ठ पुत्र और रुक्मिणी का बडा भाई था. श्रीकृष्ण से द्वेष करने के कारण, वह धृष्ट होकर अपने पिता की अवज्ञा कर बैठता है. उनको अपमानित करता हुआ कहता है कि वे बुद्धिहीन हो गये है. कोई उनका विश्वास न करे —

व्रिधपणै मति, कोइ वेसासौ
पातरिया माता इ पिता ।।

× × ×

मावीत्र म्रजाद मेटि, बोले मुखि ।

एक स्वछद पुरुष की भाँति व्यवहार करके वह शिशुपाल को निमंत्रित करता है. अह भावना से पीडित वह यह नही चाहता कि उसकी बहिन का विवाह एक

ऐसे व्यक्ति के साथ हो जाय, जो कुल, शील और राज्य आदि मे उसके समान ही उच्च न हो. कृष्ण तो ग्वाला है राजाओ से उसका कैसा सबध ?

ग्याति किसी राजवियां ग्वाळा,
किसी जाति, कुळ पाँति किसी ।

उपर्युक्त अवगुणो के होते हुए भी रुक्मकुमार एक साहसी व दृढ पुरुष था. एक ओर जब बलराम सारी सेना को रोके हुए सहार-रत थे और कृष्ण रुक्मिणी को भगा कर लिये जा रहे थे, रुक्मी ही कृष्ण को ललकार कर युद्ध करने के लिये निमन्त्रित करता है वह आयुध पर आयुध चला कर कृष्ण का वध करना चाहता है, पर इस दु साहस मे वह स्वय बुरी तरह पराजित और अपमानित होता है श्रीकृष्ण रुक्मिणी के हृदयगत भावो को समझ, उसे क्षमा कर देते है और इस तरह उसकी जान बच जाती है

यद्यपि प्रतिस्पर्धी और प्रतिनायक की दृष्टि से, रुक्मकुमार का कोई महत्व नही है, फिर भी समग्र काव्य मे दो बार पाठको के समक्ष उपस्थित होकर, अपनी कुल की मर्यादा और बहिन के प्रति स्नेह जतला कर फिर अदृश्य हो जाता है. यह उसका अज्ञान ही था कि आवेश के कारण वह कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को नही जान सका

बलराम :

हलायुधधारी बलराम श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता है. वीरता और साहस मे वे श्रीकृष्ण के समान अद्वितीय थे अपने भाई के प्रति उनके हृदय मे अपार प्रेम था श्रीकृष्ण का हिताहित उनका हित अनहित था इस समाचार पर कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करने चल पडे हैं वे भावी आपत्ति का ध्यान कर, सेना सहित कुन्दनपुर के लिए प्रस्थान कर देते है. इसके पश्चात् तो बलराम ही एक कुशल रणनीतिज्ञ की भाँति सैन्य सचालन कर भीष्मक, शिशुपाल आदि की सम्मिलित सेना का सहार कर देते है उनकी विजय का समाचार द्वारकावासियो मे उल्लास और आनद का वातावरण उत्पन्न कर देता है

स्नेह सिंचित व्यग्य-बाण कसने मे भी वे बडे प्रवीण है जब उन्होने देखा कि श्रीकृष्ण ने रुक्मकुमार को विद्रूप कर दिया है, तो उन्हे यह कार्य अरुचिकर लगा. उन्होन कहा कि हे भाई ! तुमने बहुत अच्छा किया. जिसकी बहिन को अपने पास बिठाया—ब्याहा, उसे उचित दण्ड दिया —

अनुज ! अे उचित, अग्रज इम आखइ,
दुमट सासना भली दयो,
बहिनि जासु पासे बइसाणी,
भलउ काम किउ, भला भई ॥१३५॥

उनके इस उपालभ का उचित प्रभाव पडा और श्रीकृष्ण ने रुक्मकुमार के केशो को पुन उत्पन्न कर दिया.

सदेशवाहक ब्राह्मण

सदेश प्रेषण, फिर वह किसी के माध्यम से क्यो न हो, भारतीय साहित्य की उत्तम धरोहर रहा है. सतप्त रुक्मिणी महल पर चढ कर किसी पथिक को देखने लगी इतने मे उसे एक यज्ञोपवीतधारी वृद्ध ब्राह्मण दिखाई पडा उसको बुलवा कर रुक्मिणी ने प्रणाम किया और द्वारिका तक सदेश पहुचाने की विनती की. ब्राह्मण को अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण ख्याल था और इसीलिये बडा चिंतित भी था वह जानता था कि रातभर चलने पर भी वह गतव्य स्थान पर समय पर नही पहुच सकेगा फिर वह थक भी गया था इसलिये नगर के बाहर निकल कर चिंतित ब्राह्मण सो गया प्रात काल जगा तो उसने अपने आपको द्वारिका मे पाया. उसका विस्मित होना स्वाभाविक था उसको सारी घटना स्वप्नवत लगी. अपार हर्ष के साथ साथ भगवान श्रीकृष्ण मे उसकी भक्ति और प्रगाढ हुई.

सदेश कहना भी एक कला है वृद्ध ब्राह्मण बडी चतुराई और मार्मिकता से पत्र पढने लगा, जिससे भगवान पर उसका अनुकूल प्रभाव पडा. श्रीकृष्ण तुरत ब्राह्मण को साथ लेकर कुदनपुर की ओर चल दिये.

पीपल के पत्ते की भाँति कपित रुक्मिणी का मन बडी दुविधा मे था. इधर ब्राह्मण ने भी देखा कि सबके बीच मे उसे सदेश दिया भी कैसे जाय ? वह पर्यायोक्ति के द्वारा, श्रीकृष्ण के कुदनपुर आने का समाचार कह देता है. यहाँ एक बार और ब्राह्मण की चतुरता और बुद्धि का पता हमे चलता है.

शिशुपाल

प्रति-नायक के रूप मे शिशुपाल का पात्राकन नहीवत् है रुक्मकुमार का सदेश पाकर, जिस जोर शोर मे शिशुपाल बारात लेकर चलता है, उससे तो ऐसा लगता है कि आगे चल कर कवि, शिशुपाल के पात्र को अपनी विविध रगो भरी तूलियो से उभारेगा, पर वैसा नही देख कर एक निराशा-सी हाथ लगती है.

शिशुपाल चदेरी का राजा था उसकी बारात मे अनेक राजागण थे. शौर्य मे शिशुपाल भी कम न था वेलिकार ने वर्णन किया है कि शिशुपाल का मुख सूर्य के समान तेजस्वी था, जिसका देखकर मगल गीत गाती हुई कुदनपुर की नारियो के मुख कमल के समान खिल गये, पर रुक्मिणी कमोदिनी के समान कुम्हला गई—

गावइ करि मगळ चन्द्रि चढि गउखइ,
मनइ सूर सिसुपाळ-मुख ।

पदमणि अनि फूलइ परि पदमणि,
रुकमणी कमोदणी रुख ।।४२।।

राग रग मे मस्त शिशुपाल व उसके वीरो ने जब रुक्मिणी हरण की बात सुनी तो मागलिक वस्त्रो पर कवच कसे और यादवो की सेना का पीछा किया भयकर युद्ध मे शिशुपाल और जरासघ सहित उसके साथी हार जाते है और सा-मुह लौट जाते हैं. इस युद्ध मे शिशुपाल ने अपना युद्ध कौशल्य का सुदर परिचय दिया. भगवान श्रीकृष्ण से आमने-सामने के युद्ध मे शस्त्रो की झडी लग गई—

अनत अनइ सिसुपाल अउझडइ
झड मातउ माडियउ झड ।।

शिशुपाल के हार कर चले जाने के पश्चात् वेलि मे अत तक उसका वर्णन कही नही आता.

वेलि का काव्य रूप

सर्वप्रथम वेलि के सम्पादक द्वय—सर्वश्री सूर्यकरण पारीक और ठाकुर रामसिह ने वेलि के काव्य रूप पर अपनी भूमिका (पृ १०५ से १०६) मे प्रकाश डाला था स्व. श्री पारीकजी ने इसे खण्ड-काव्य घोषित किया तब से अद्यावधि विभिन्न विद्वानो द्वारा सपादित छ अन्य सस्करण निकल आये है, पर वेलि के काव्य रूप की चर्चा किसी भी विद्वान सम्पादक ने नही उठाई है इसका एक प्रमुख कारण यह हो सकता है कि स्व० पारीकजी की भाँति सबने इसको खड-काव्य स्वीकार कर लिया हो और इस प्रकार विवाद का कोई स्थान ही शेष न रहा हो 'हिंदी के मध्यकालीन खड-काव्य' नामक शोध प्रबन्ध के लेखक डॉ० सियाराम तिवारी ने भी कृष्णभक्ति शाखा के खड-काव्यो के अन्तर्गत इसका उल्लेख किया है, पर निरतर परिवर्तनशील परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे समूचे प्रश्न का पुन. मूल्याकन करना अति आवश्यक हो गया है

वैसे महाकाव्य और खण्डकाव्य मे कोई तात्विक अन्तर नही है इन दोनो मे मात्राभेद है, प्रकार का नही इनका भेदक तत्व आकारजनित है अतएव बाह्य व स्थूल है आतरिक अथवा मूल आत्मा सबधी भेद नहीवत है फिर भी सस्कृत के आचार्यो ने महाकाव्य और खण्डकाव्य मे जो भेद निश्चित किये है[1], विचारणीय होते हुए भी युगानुकूल परिवर्तनो की अपेक्षा रखते है

यहाँ एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान बरबस आकर्षित होता है कि हिंदी की उत्पत्ति सीधे सस्कृत से न होकर प्राकृत अपभ्रश से हुई है, अतएव हिंदी के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए अपभ्रश की शब्दावली, उसके व्याकरणिक गठन और उसके लक्षण-ग्रथ अपरिहार्य है इसके विपरीत हुआ यह है कि हिंदी के विवेचको ने हिदी साहित्य-शास्त्र के क्षेत्र मे सर्वथा सस्कृत साहित्य-शास्त्र का अनुकरण किया है, जिससे कई भ्रम व विसगतियाँ उत्पन्न हुई है अपभ्रश एक समय समस्त उत्तर भारत मे ही नही, सुदूर कर्नाटक प्रदेश तक साहित्याकाश मे

---

१. कविराज विश्वनाथ के अतिरिक्त अन्य किसी आचार्य ने खड-काव्य की परिभाषा नही दी है उन्होने भी एक पक्ति मे इसकी इतिश्री कर दी है. जो अपर्याप्त है—

'खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुचारि च ।' (साहित्य दर्पण)

आच्छादित थी[1] उसका साहित्य अत्यन्त प्रौढ, वैविध्यपूर्ण और विशिष्ट परम्पराओ से युक्त था.

इससे भी अधिक एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि वेलि एक डिगल ग्र थ है, उसके अपने छद व अलकार शास्त्र हे, उसकी अपनी शैलीगत परम्परा है, अतएव वेलि के महाकाव्यत्व को समझने के लिए डिगल की भव्य-परपरा को समझना भी नितात आवश्यक है

ऐसी दशा मे हमारी इस भव्य वसियत से मुह मोड कर मात्र सस्कृत की ओर मुखापेक्षी होना कहाँ तक उचित है ? हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास' नामक शोध-प्रबन्ध के लेखक डॉ० शम्भुनाथसिह ने भी इसी प्रकार के विचार अपने उपर्युक्त ग्रथ मे प्रस्तुत किये है—"यह हिदी का दुर्भाग्य रहा है कि यद्यपि उसके अधिकाश मूल्यवान साहित्य का मूल-स्रोत प्राय. प्राकृत, अपभ्र श का साहित्य था, पर उसका साहित्य-शास्त्र प्रारम्भ से ही सस्कृत-साहित्य का अनुसरण करता रहा है. .हिदी के काव्य-रूपो का विवेचन प्राकृत-अपभ्र श के आधार पर विशेष रूप से होना चाहिये, केवल सस्कृत के अलकार शास्त्रो के आधार पर नही. महाकाव्य की जो परिभाषा सस्कृत के आचार्यो ने दी है, वह मूलत सस्कृत काव्यो को देख कर बनाई गई है"

सस्कृत काव्यो के लक्षण निश्चय ही तत्कालीन प्रचलित ग्रथो पर आधारित थे। अतएव उनका सर्वयुगीन रूप नही हो सकता। प्राय सभी आचार्यो ने महाकाव्य सबधी परिभाषाओ मे महाकाव्यो के बाह्य की ओर ही सविशेष भार दिया है यह सही है कि इन आचार्यो द्वारा निर्धारित लक्षणो का उपयोग आज के कवि अपने महाकाव्यो मे कर रहे है, पर इनमे से कई लक्षण तो ऐसे हैं जिनका निर्वाह आधुनिक युग मे कठोरता से नही होरहा है, फिर भी हम उन्हे महाकाव्यो की सज्ञा से अभिहित करते आरहे है मगलाचरण, धीरोदात्त सद्वशोत्पन्न नायक, सर्ग सख्या सर्गान्त छद परिवर्तन, भिन्न भिन्न सर्गो मे भिन्न भिन्न छदो का प्रयोग आदि कुछ ऐसे लक्षण है जो आज अदृश्य जैसे हो गये है यथा 'कामायनी' मे न तो मगलाचरण ही हे और न सर्गान्त छद परिवर्तन ही डॉ० रामकुमार वर्मा कृत 'एकलव्य' का नायक सद्-वशीय न हो कर निषाद पुत्र एकलव्य है.

---

१ 'अपभ्र श के महाकवि चतुर्मुख स्वयभू, त्रिभुवन स्वयभू और पुष्पदत की रचनाएँ कर्नाटक मे रची गई सिद्ध सप्रदाय के सरहपाद और कण्हपाद ने अपने अपभ्र श ग्रथ दोहाकोश' क्रमानुसार आसाम और पूर्वबगाल मे रचे हैं बौद्धतत्र का 'डाकार्णव' नेपाल मे रचा गया अपभ्र श का सबसे प्रामाणिक व्याकरण आचार्य हेमचद ने सिद्धहेम शब्दानुशासन के आठवें अध्याय मे दिया है, जो गुजरात मे रचा गया है प्रातीय बोलियो का काफी प्रभाव होते हुये भी भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशो मे लिखा हुआ जो अपभ्र श साहित्य उपलब्ध है उसकी भाषा एक है' डॉ भोगीलाल साडेसरा का एक निबध 'गुर्जर इतिहास एव सस्कृति कुछ विचार', जिसका हिदी अनुवाद इस लेखक ने 'मरु भारती' जनवरी १९६७ मे प्रकाशित करवाया है

प्रगति व सुधारो के सदर्भ मे आज जब कि सभी प्रकार के और सभी क्षेत्रों मे वर्गो और वर्णो के बधन धराशायी हो रहे है और मानवता उभर रही है, तब अधानुकरण कर केवल लकीर के फकीर बने रहना कोई योग्य आधार नही है समयानुसार परिवर्तन आवश्यक है आज जब कि गताब्दियो से पद दलित और शोषित वर्ग हमारी सहानुभूति के पात्र बन रहे है, तब सद्वशोत्पन्न नायक की बात बे-ईमानी होगी मगलाचरण के कोई माने नही है छद-बध निर्बंध होगये हैं तथा शैलीगत परिवर्तन स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है. हमे महाकाव्यो के लक्षणो का नव मूल्याकन करना ही पडेगा.

स्वयभू के 'पउमचरिय' से लगा कर जयमित्र हल्ल कृत 'बहुमाणकव्वु' तक अपभ्र श के कुल पच्चीस महाकाव्यो की रचना हुई है, जिनसे एक सुदीर्घ परम्परा का पता चलता है आचार्य हेमचन्द्र के 'काव्य नुशासन' मे यह भी अत्यन्त स्पष्ट है कि इन सारे महाकाव्यो मे सस्कृत आचार्यो द्वारा निर्धारित लक्षणो का यथावत् पालन नही हुआ है सच तो यह है कि इनका परिपालन आवश्यक भी नही था स्वय सस्कृत के आचार्यो ने महाकाव्य की विभिन्न परिभाषाएँ दी है भामह, दण्डी, रुद्रट और विश्वनाथ ने अपने ग्रथो क्रमश —'काव्यालकार', काव्यादर्श', 'काव्यालकार' तथा 'साहित्यदर्पण' मे महाकाव्य की जो परिभाषाएँ दी है इन परिभाषाओ मे उत्तरोत्तर परिष्कार की भावना परिलक्षित होती है । आचार्य विश्वनाथ ने तो पूर्ववर्ती सभी लक्षणो का समाहार कर दिया है इस प्रकार हम देखते है कि महाकाव्य की परिभाषा सतत परिवर्तनशील रही है ।

काव्यानुशासन मे हेमचन्द्र ने महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—पद्य प्राय सस्कृतप्राकृतापभ्र श ग्राम्यभाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत-सर्गाश्वाससध्यावस्कधक-बध सत्सधि शब्दार्थ वैचित्र्योपेत महाकाव्य—यहाँ प्राय. शब्द बडा लाक्षणिक है. इसका प्रयोग यहाँ अधिकारसूत्र के रूप मे हुआ है इससे यह स्पष्ट है कि महाकाव्य मे प्राय सर्ग, सधि और अर्थवैचित्र्य आवश्यक है अनिवार्य नही । इस व्याख्या से, वे काव्य जिनमे सर्गाभाव आदि है, महाकाव्य के अन्तर्गत ही रखे जायेगे इससे यह भी स्पष्ट है कि महाकाव्य के ये लक्षण न केवल सस्कृत, अपभ्र श आदि पर लागू है, बल्कि ग्राम्यभाषा के काव्यो पर भी लागू है हेमचद्र ने इस प्रकार एक बडी विशद व्याख्या कर दी है, जिसे परवर्ती सस्कृत आचार्यो ने परिमार्जित कर, उसे सीमित व सुनिश्चित बना दिया है

ऐसी दशा मे बहुमुखी प्रतिभा के धनी, क्रान्तिद्रष्टा, वीरवर पृथ्वीराज राठौड अपने अत्यन्त प्रख्यात ग्रथ वेलि मे एक ओर परम्परागत काव्य परिपाटियो का निर्वाह करें और दूसरी ओर शैलीगत नये प्रयोग करे तो आश्चर्य की बात नही वास्तव मे वेलि तो तत्कालीन युग की काव्य-परम्परा का एक क्रान्तिकारी सीमा चिन्ह है.

स्व० श्री पारीकजी ने लिखा है कि 'शास्त्रानुमत महाकाव्य के प्राय: समस्त लक्षण विद्यमान होते हुए भी कुछ की अविद्यमानता के कारण कालिदास के मेघदूत की भाति वेलि एक खण्डकाव्य कहा जा सकता है 'सर्ग बधाशरूपत्वाद' (दण्डी) महाकाव्य का यह एक उपभेद कई एक रीतिग्रथो मे 'सघात काव्य' नाम से भी कहा जा सकता है विश्वनाथ कविराज ने खण्डकाव्य की परिभाषा यो की है—खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्यैकदेशानुचारि च. अर्थात काव्य के एक अश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है. महाकाव्य के लक्षणो का अन्वेषण करते हुये आशिक रूप मे प्राय महाकाव्य के सभी गुण इस खण्डकाव्य मे मिलते है'

महाकाव्य की दृष्टि से यहा सक्षेप मे महाकाव्य मे अपेक्षित लक्षणो की चर्चा तथा वेलि मे इनके उपयोग का वर्णन करना समीचीन होगा—

बाह्य उपकरण

(१) मगलाचरण—'आदौ नमस्क्रियाशीर्वाद वस्तुनिर्देश एव वा'—विश्वनाथ के अनुसार वेलि के प्रथम छद को परमेश्वर, सरस्वती और गुरु को प्रणाम करते हुये मगलाचरण लिखा गया है—

> परमेसर प्रणवि सरसति पुणि
> सदगुरु प्रणवि त्रिण्हे ततसार ।

(२) कथानक व कल्पनाशक्ति—महाकाव्य का यह द्वितीय लक्षण असक्षिप्त (अर्थात न बडा हो और न छोटा हो) तथा इतिहास अथवा पुराण से सबधित होना चाहिये । साथ ही कथानक का प्रख्यात व लोकप्रिय होना आवश्यक है ।

वेलि का कथानक हमारे महान सास्कृतिक-ग्रथ महाभारत पर आधारित है. इसकी लोकप्रियता इसी से स्पष्ट है कि इस कथानक के आधार पर विभिन्न भारतीय भाषाओ (हिदी, ब्रज, राजस्थानी, मराठी, बगला, गुजराती) मे शताधिक ग्रथ लिखे गये है इसका कथानक अत्यन्त सुसगठित है, जिसमे शिथिलता का अवकाश तक नही रहा है वास्तव मे महाकाव्यकार पृथ्वीराज ने अपनी कल्पनाशक्ति से कई नये प्रसगो की उद्भावना कर इस प्राचीन धार्मिक कथानक को अत्यन्त प्राणवान व रोचक बना दिया है. वेलि मे ऐसे सोलह स्थल है जो महाकाव्यकार की अपनी मौलिक उर्वर कल्पना के चमत्कार है.

(३) सर्गबद्धता:—सर्ग योजना का मूल उद्देश्य कथानक के समन्वित प्रभाव को उत्पन्न करना है. यह कथावस्तु के सयोजन और विभाजन दोनो के लिये आवश्यक है, जिससे कि कथानक की विशालता का नियोजन किया जा सके. पर इसका अर्थ यह नही है कि असाधारण प्रतिभाशाली कवि अपने काव्यकौशल के बल पर सर्गहीन महाकाव्य का निर्माण नही कर सके डॉ० सियाराम तिवारी ने लिखा है

कि—'महाकाव्य की कथा का सर्गबद्ध होना इसलिये आवश्यक है कि उसकी कथा की विशालता होती है सर्गीकृत किये बिना उसमे सगठन नही लाया जा सकता. अगर कवि अपनी असाधारण दक्षता के बल पर कथा को बिना अध्यायो मे विभक्त किये हुए कथा-योजना की सारी कला को उसमे समाविष्ट भी कर दे तो अनवरत चलने वाली इस कथा को पढने का धैर्य पाठक मे नही रह सकता [1]

वेलि मे सर्गबद्धता का अभाव है यह सत्य है पर यदि इसी मात्र लक्षण के अभाव मे हम वेलि को महाकाव्य स्वीकार न करे तो इसे हमारी हठधर्मिता के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? जैसा कि ऊपर के उद्धृत अश से स्पष्ट है—महाकाव्य मे सर्गबद्धता की आवश्यकता केवल कथानक की सुसगठितता के लिये ही है और यदि कोई कवि अपनी असाधारण प्रतिभा के बल पर कथा को सुनियोजित स्वरूप प्रदान कर दे और उसमे कही भी कथाशैथिल्य के दर्शन न हो तो हमे उसे महाकाव्य मानने मे हिचक क्यो होनी चाहिये ? यदि कवि की कृति मे महाकाव्य की आत्मा सुरक्षित हो तो काव्य के बाह्य स्थूल नियमो का परिपालन कवि के लिये बधनरूप क्यो कर हो सकते हैं ? जहाँ तक पाठक के धैर्य का प्रश्न है, महाकाव्यकार को सच्ची कसौटी भी यही है कि यदि वह अपने जिज्ञासु पाठको की उत्सुकता व सरसता को सतत नही बनाए रख सकता तो उसके अशक्त महाकाव्य के माध्यम से जिस जीवन-दर्शन को वह अपने पाठको को सप्रेषित करना चाहता है, सर्वथा असफल रहेगा और उसकी कृति अप्रभावोत्पादक कही जायेगी ।

वेलि के कथानक मे न तो ऐसा शैथिल्य ही दिखाई पडता है और न पाठको के धैर्य का अत ही, विपरीत इसके वह तो भक्ति और साहित्य दोनो दृष्टियो से निरतर पारायण व अध्ययन की वस्तु है ।

(४) चरित्र—महाकाव्य का नायक स्वभाव से धीरोदात्त तथा वश से सद्वशोत्पन्न (ब्राह्मण/क्षत्रिय) होना चाहिये । पौराणिक देवता भी कथा के नायक हो सकते है । नायक के व्यक्तित्व एव कृतित्व मे जातीय जीवन के आदर्शों की प्रस्थापना के लिये सघर्षरत रहने की क्षमता होनी चाहिये ।

वेलि के नायक स्वय भगवान श्रीकृष्ण है । उनसे बढकर और कौनसा नायक महाकाव्य के नायक होने की क्षमता रखता है ? यादवेन्द्र श्रीकृष्ण के मनुष्य देह धारण का कारण स्वय ही महान था ।

प्रतिनायक के रूप मे शिशुपाल भी गुण, वश तथा बल मे लगभग समान था शिशुपाल की पराजय द्वारा महाकाव्यकार असद्पात्रो पर सद्पात्रो की विजय बतलाता

१. मध्यकालीन खड काव्य (शोध प्रबन्ध) प्रथम अध्याय.

है और इस प्रकार उदात्त चरित्र की सृष्टि कर, महाकाव्य की चरित्र सबधी विशेषताओ को सर्वाग दृष्टि से पूर्ण करता है

महाकाव्य का मुख्य पात्र पुरुष ही क्यो हो ? क्या कोई धीरोदात्त सद्वशोत्पन्न स्त्री महाकाव्य का मुख्यपात्र नही हो सकती ? क्या तत्कालीन युग के पुरुष-वर्चस्व के कारण ही तो कही इस प्रकार के नियम नही बने, जो पुरुष-दाक्षिण्य को प्रकट करते रहे? इस अरुचिकर पर अभिनव विचार को ध्यान मे रख कर विचार करें तो वेलि की मुख्य पात्री रुक्मिणी सभी दृष्टियो से सर्वथा उपयुक्त पात्र है। आधुनिक हिन्दी महाकाव्य — पार्वती, दमयन्ती उर्मिला और उर्वशी आदि इसी ओर इगित करते ही है फिर वेलि मे रुक्मिणि की कथा उसके जन्म से लेकर पौत्र-प्राप्ति तक ली गई है, जो उसके महाकाव्यत्व की द्योतक है वास्तव मे देखा जाय तो खडकाव्य के रूप मे इसका अत रुक्मिणी के विवाह के साथ ही समाप्त हो जाना चाहिये था, पर ऐसा न होकर काव्य का आगे चलता रहना भी उसके महाकाव्यत्व का परिचायक है।

(५) वस्तु व्यापार व परिस्थिति चित्रण—इस पर आचार्यों ने अधिक जोर दिया है उनका मानना है कि घटना का प्रवाह चाहे क्षीण हो, पर अलकृत वर्णनो की प्रधानता होनी चाहिए वेलि मे घटनाओ का प्रवाह कही भी क्षीण नही हुआ हे और अलकृत वर्णनो की प्रधानता तो उसकी एक प्रमुख विशेषता है. इस काव्य मे आये हुये लबे वर्णन महाकाव्य के ही उपयुक्त है, खण्डकाव्य के नही.

(क) प्रकृति चित्रण

प्रकृति के विविध रूपो का कलात्मक वर्णन महाकाव्यकार का इष्ट होना चाहिए. सध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, सूर्य, चन्द्र, वन, पर्वत. नदी, मरु, समुद्र, नगर आदि का यथायोग, सागोपाग व अलकृत वर्णन होता चाहिए वेलिकार ने वेलि मे इन सभी का समुचित वर्णन किया है एक दो उदाहरण दृष्टव्य हैं—

(1) सध्या वर्णन—

सकुडित समसमा सध्या समयै
रति वछित रुषमणि रमणि ।
पथिक वधू द्रिठि पख पखिया
कमळ-पत्र सूरिज किरण ॥१६२॥

(11) वन व नगर वर्णन—

प्रात काल द्वारिका नगरी का वर्णन कितना भव्य है—

पणिहारी पटळ दळ वरण चपक दळ,
कळस सीस करि कर कमळ ।

तीरथि तीरथि जगम तीरथि,
विमळ ब्राह्मण जळ विमळ ।।४६।।
जोवै जा, गृहि गृहि जगन जगावै,
जगनि जगनि कीजै जप जाप।
मारगि मारगि अम्ब मोरिया,
अम्बि अम्बि कोकिल आळाप ।।५०।।

रुक्मिणी के साथ द्वारिका लौटने पर नगर वासियो ने जो भव्य सजावट की उसका वर्णन छद स० १४३ से १४५ मे द्रष्टव्य है।

(iii) वर्षा वर्णन

वरसतै दहड नड अनड वाजिया,
सघण गाजियौ गुहिर सदि।
जलनिधि ही सामाइ नही जळ,
जळबाळा न समाई जळदि ।।१६६।।

(ख) जीवन के विभिन्न व्यापारो एव परिस्थितियो का वर्णन—

प्रेम, विवाह, मिलन कुमारोदय, राजकाज, मत्रणा, दूत-प्रेषण, यज्ञ, सैनिक अभियान, युद्ध तथा नायक को विजय आदि का भी सुदर वर्णन महाकाव्य का आवश्यक अग है वेलि मे उपर्युक्त सारे प्रसगो का सुदर चित्रण हुआ है—

(i) युद्ध वर्णन—

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ।
धडि धडि धबकि धार धारूजळ
सिहरि सिहरि समरवै सिळाउ ।।११७।।

(ii) कुमारोदय—

अनि वरिस वधै ताइ मास वधै ए,
वधै मास ताइ पहर वधन्ति।
लखण बत्रीस, बाळ लीला मै,
राजकुअरि द्रूलडी रमन्ति ।।१३।।
सैसव तनि सुखपति जीवण न जाग्रति.
वेम सधि सुहिणा सु वरि
हिव पल पल चढनौ जि होइसै,
प्रथम ज्ञान एहवी परि ।।१५।।

(iii) दूत प्रेषण—

तितरै हैक दीठ पवित्र गळित्रागो,
करि प्रणपति, लागी कहण ।
देहि सदेश लगी दुवारिका,
वीर वटाऊ ब्राह्मण ॥४४॥
म म करिसि ढील, ह्विव हुए हेकमन,
जाइ जादवाइद्र जत्र ।
माहरै मुख हुता, ताहरै मुंख
पग वदण करि देइ पत्र ॥४५॥

(६) छंद और अलंकार विधान:—

छदबद्धता महाकाव्य के लिये अनिवार्य है । वलिकार ने भी छदोबद्ध काव्य का निर्माण किया है, पर कवि ने सस्कृति छद शास्त्र का अनुकरण न कर डिंगल छद शास्त्र को अपनाया है. इसी प्रकार डिंगल के अलकार शास्त्रानुसार, जो सस्कृत व हिंदी रीति शास्त्रो से भिन्न है, कई नये अलकारो के प्रयोग से वेलि ने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया हैं, वेलिकार ने वेलि मे सर्वत्र 'वयण-सगाई' अलकार का प्रयोग किया है ।

अंतरंग पक्ष

(i) रसात्मकता —

'वाक्य रसात्मक काव्य'—रस को काव्य की आत्मा माना गया है. रसात्मकता महाकाव्य के अतरग का निर्माण करती है. प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्यो मे वीर, शृ गार और शात रसो मे से किसी एक की प्रधानता तथा अन्य रसो की सम्यक् योजना का उल्लेख किया है आधुनिक काल को यह बधन स्वीकार्य नही है और इस युग के अनेक महाकाव्यो मे करुण रस प्रधान है वेलि मे शृंगार रस प्रमुख है कविराज विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण मे शृ गार के तीन भेद दिये हैं —

धर्मार्थकामैस्त्रिविध: शृ गार·

वेलि मे धर्मशृ गार का प्रयोग हुआ है, अतएव जो लोग वेलि पर शुद्ध शृ गार का आक्षेप करते हैं, वह न्यायसगत नही है

(ii) महत् उद्देश्य व जीवन दर्शन—

महाकाव्य जीवन-दर्शन और महान उद्देश्य से अनुप्राणित रहता है और इसका उद्देश्य चतुर्वर्ग फल प्राप्ति अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति है किंतु वर्तमान जीवन के सघर्ष और वैज्ञानिकता के सदर्भ मे यह लक्षण स्वीकार नही किया

जा सकता है—वेलिकार वेलि के द्वारा आध्यात्मिक सदेश देना चाहता है, जिसका उल्लेख उसने बार बार किया है—जिन भगवान ने हमे जन्म देकर, मुख मे जिह्वा दी है तथा हमारा भरण पोषण किया है, उसके कीर्तन के बिना ससार मे कैसे चल सकता है—

जिण दीध जनम जगि, मुख दे जीहा,
क्रिसन जु पोखण भरण करै ।
कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन
स्रम कीधा विणु केम सरै ।।७।।

छद सख्या २७८ से २९५ तक कवि ने वेलि के नित्य प्रति पारायण से होने वाले लाभो को समझाया है और साथ ही कहा है कि वेलि तो स्वर्ग प्राप्ति की सीढी है—

मुगति तणी नीसरणि मडी
सरग लोक सोपान इळ ।।२९४।।

वेलि के पठन-पाठन से इहलोक मे ऐश्वर्य सुख व समृद्धि मिलती है तो परलोक मे मोक्ष की प्राप्ति होती है —

मधुकर रसिक सुभगति मंजरी.
मुगति फूळ फळ भुगति मिसि ।।२९२।।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक दृष्टि से वेलि एक महाकाव्य है. जहाँ स्थूल भेद का अवकाश है, वह दो भिन्न परम्पराओ (सस्कृत साहित्य-शास्त्र और अपभ्र श साहित्य-शास्त्र) के कारण है, जो आगे चल कर डिंगल साहित्य-शास्त्र के कारण और अधिक गहरा होता जाता है. अतएव वेलि के काव्यरूप को समझने के लिये सस्कृत साहित्य-शास्त्र ही यथेष्ट न होगा । इसको पूर्णरूपेण समझने के लिये अपभ्र श की परम्परा और उससे प्रसूत पर स्वतत्र रूप से विकसित डिंगल परम्परा को समझने की भी अत्यन्त आवश्यकता है

पृथ्वीराज की भक्तिभावना

विश्व के इतिहास मे राजस्थान का यह सुदर सौभाग्य रहा है कि वीरता की अखूट धारा के साथ साथ यहाँ भक्ति रस की धारा भी निरतर प्रवहमान रही है एक ओर जहाँ महाराणा प्रताप अपने असख्य रणबाकुरो के साथ स्वतत्रता के अमर दीप के ज्योतिपुंज की रक्षा मे रत थे तो दूसरी ओर धर्म रक्षार्थ, भक्ति की पीठिका पर एक शात शीतल ज्वाला प्रज्वलित थी, जिसमे मीरा, दादू आदि अगणित सत भक्तो ने अपने स्नेह कणो का अक्षय योगदान दे रखा था

एक ही युग मे वीरता और भक्ति के इस सुदर और अद्भुत समन्वय पर सहज ही गौरवान्वित हुआ जा सकता है. विशेषत ऐसे व्यक्तित्व पर जिसमे उपर्युक्त दोनो गुण अपनी सर्वोच्चता के साथ समन्वित हुये हो. पृथ्वीराज राठौड ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी है, जिन्होने अपनी खड्ग से विकट शत्रुओ को परास्त कर विजय-श्री का वरण किया है तो दूसरी ओर भक्ति रस मे आकठ प्लावित हो, अपने साहित्य से अगणित मानवो को भक्ति-सलिला मे निम्मंजित करवाया है.

सगुणोपासक पृथ्वीराज राठौड अपने समकालीन तुलसी सूर, मीरा आदि भक्त प्रवरो से अनेक दृष्टियों से भिन्न थे. तुलसी और सूर राजपुरुष न थे और न ही उन्हे स्वाभिमान के रक्षार्थ अथवा बादशाही आज्ञावश सुदूर प्रदेशो मे युद्ध करने पडे थे सूर ने सगुणधारा के अतगत केवल सख्यभाव से कृष्णोपासना की थी जब कि पृथ्वीराज राठौड ने इसी धारा के अतर्गत राम और कृष्ण दोनो की उपासना की है. इस दृष्टि से तुलसी और पृथ्वीराज मे साम्य है. तुलसी ने रामभक्ति के ग्रथो के प्रणयन के साथ साथ 'कृष्णगीतावली' की रचना कर अपनी कृष्ण भक्ति का परिचय दिया है तो पृथ्वीराज ने दसरथ राव-उतरा दूहा' के माध्यम से अपनी रामभक्ति का परिचय भी दिया है फिर भी जैसे तुलसी का मन रामभक्ति मे अधिक रमा है, पृथ्वीराज का मन कृष्ण भक्ति मे अधिक लवलीन हुआ है सूर ने जबकि केवल ब्रज-भाषा का प्रयोग किया है, तुलसी ने मुख्य रूप से अवधी और गौण रूप से ब्रजभाषा का प्रयोग किया है परन्तु पृथ्वीराज की प्रधान भाषा डिंगल थी और उन्होने पिगल (ब्रज मिश्रित राजस्थानी) मे भी कई रचनाएँ की है पाडित्य व कला प्रदर्शन मे वे केशव के अधिक समीप है, पर केशव सी बोझिलता के दर्शन उनमे नही होते. पृथ्वीराज की इतनी विशेषताओ के होते हुये भी तुलसी के दैन्य और सूर की सहज विह्वल भावना की तीव्रता के दर्शन पृथ्वीराज मे अपेक्षाकृत कम है

मीरा और पृथ्वीराज एक ही कुल के राजपुरुष थे लिगभेद व तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ मीरा के मार्ग की घोर अवरोधक थी मीरा को जीवन पर्यन्त उनसे तुमुल सघर्ष करना पडा, जबकि पृथ्वीराज इनसे मुक्त थे दोनो कृष्णोपासक भक्त थे, पर मीरा-सी तीव्र सवेदनशीलता के दर्शन पृथ्वीराज मे नही होते मीरा की भाषा जन मन के गले की हार थी तो पृथ्वीराज ने इस क्षेत्र मे डिंगल का प्रयोग कर कई विद्वानो के इस भ्रम का सर्वथा परिहार कर दिया कि डिंगल केवल वीर रसोपयोगी ही है

अतर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनो से यह प्रमाणित हो चुका है कि पृथ्वीराज मूलत एक भक्त कवि थे 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार वे पुष्टि सम्प्रदाय के प्रवर्तक वल्लभाचार्यजी के पुत्र गोसाई विट्ठलनाथजी के शिष्य थे. पृथ्वीराज स्वय गोकुल मे ठकुरानी घाट पर उनके दर्शनार्थ गये थे और वही पर उनसे दीक्षा ली थी गोसाई विट्ठलनाथजी का उनको आशीर्वाद था कि 'तुमको काल कबहू बाधा न करैगो तथा तुम श्री ठाकुरजी के सदा सनमुख रहोगे' स्वय पृथ्वीराज ने अपने एक दोहे मे अपने तीन गुरुओ के सबध मे कहा है कि —

दीक्षा गुरु विठलेश है, गुरु गदाधर व्यास ।
चतुराई गुरु रामसिह, तीन गुरु पृथिदास ।।

(विट्ठलनाथजी भक्ति के द्वारा परलोक मार्ग के, गदाधर व्यास विद्या और शिक्षा के द्वारा काव्य मार्ग के और रामसिह अपने चातुर्य द्वारा राजनीति और युद्ध कला आदि लोक व्यवहार के मार्ग के———ये तीन इनके विशिष्ट गुरु रहे है. अपने दीक्षा गुरु विट्ठलनाथजी से वे अत्यन्त प्रभावित थे 'विट्ठल रा दूहा' मे कवि ने इन्हे भव्य भावाजली अर्पित की है—

आनि त्रिलोक त वाह, सोभता सूझै नही ।
आरीसौ आपाह, दीठो वल्लभदेव-सुत ।।

पुष्टि सम्प्रदाय मे दीक्षित होने से स्वभावत उनका काव्य इस सम्प्रदाय के सिद्धातो से ओत प्रोत है. ब्रह्मवाद सबधी सिद्धात पक्ष को छोड कर यदि हम वल्लभाचार्य के साधना पक्ष का विचार करे तो वैष्णव सप्रदाय मे यही साधना पक्ष पुष्टि मार्ग कहलाया है भगवान के अनुग्रह ही को पोषण (पुष्टि) कहते है.[1] 'कृष्णानुग्रहरूपाहि पुष्टि कालादि बाधिका' अर्थात् कालादि के प्रभाव को रोकने वाली श्रीकृष्ण की कृपा ही पुष्टि है भगवान का यह अनुग्रह लौकिक व अलौकिक दोनो ही फलो का दाता है

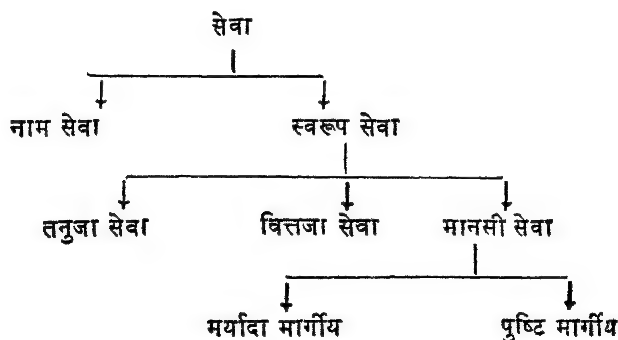
१ श्रीमद्भागवत, द्वितीय स्कध, दशम अध्याय, चौथा श्लोक—'पोषण तदनुग्रह' भागवतार्थ प्रकरण, निबधकार ।

'कृष्ण सेवा सदा कार्या मानसी सा परामता ।'

श्री हरिरायजी ने लिखा है कि तीन प्रकार की सेवा मे मानसी सेवा ही फलरूपिणी है. यह निरोध रूपा भी है तथा भावात्मक भी ।

इसके अतिरिक्त, पर पुष्टिमार्गीय भक्ति सबधी थोडा विस्तृत वर्णन हमे श्री रघुनाथजी शिवजी मुखिया रचित 'श्री वल्लभ पुष्टि प्रकाश' से प्राप्त होता है—

(१) पुष्टि मार्ग के अनुसार सेवा के दो प्रकार हैं—नाम सेवा और स्वरूप सेवा. स्वरूप सेवा तीन प्रकार की है—तनुजा, वित्तजा और मानसी । मानसी सेवा भी दो प्रकार की है—मर्यादा मार्गीय व पुष्टि मार्गीय मर्यादा मार्गीय सेवा मे शास्त्रानुकूल मर्यादा मार्ग पर चलते हुए भक्त अपनी अहता और ममता को दूर करता है, पर इसमे पहले आत्म ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है पुष्टि मार्गीय मानसी सेवा करने वाला प्रारम्भ से ही श्रीकृष्ण के अनुग्रह की इच्छा करता है और अपने शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान की भक्ति करता हुआ भगवान के अनुग्रह से सहज ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है.



(२) जबकि सामान्य पूजा मे कर्मकाण्ड का प्राधान्य होता है, पुष्टि मार्गीय पूजा मे भावना का.

(३) पुष्टि-मार्गीय सेवा-विधि के दो क्रम हैं—नित्य सेवा विधि तथा वर्षोत्सव सेवा विधि प्रात काल से शयन पर्यन्त सेवा विधि नित्य सेवा-विधि है, जिसमे वात्सल्य की प्रधानता है वर्षोत्सव की सेवा-विधि मे छ ऋतुओ के उत्सव, वैदिक पर्वों के उत्सव तथा जयतियो का समावेश है

(४) नित्य और वर्षोत्सव सेवा-विधियो के तीन मुख्य अंग हैं—शृंगार, राग और भोग मनुष्य इन्ही तीनो विषयो मे फँसा रहता है. उनसे मुक्ति पाने के लिये ही श्री वल्लभाचार्य ने इन विषयो को भगवान श्रीकृष्ण मे लगाना का उपदेश दिया, जिससे ये भगवान स्वरूप हो जायँ.

(५) पुष्टि मार्ग मे सेव्य श्री कृष्ण है सेव्य के रूप मे श्रीकृष्ण के ये रूप प्रचलित है—(१) श्री मथुरेशजी (२) श्री विट्ठलनाथजी (३) श्री द्वारकाधीशजी (४) श्रो गोकुलनाथजी (५) गोकुलचँद्रमाजी (६) श्री बालकृष्णजी व (७) श्री मदन मोहनजी

(६) पुष्टि सम्प्रदाय मे जमुनाजी का भी बडा महत्व है प्रभु का जो स्वरूप और उनमे जो गुण है, उनको श्री यमुनाजी मे भी माना गया है. वे प्रभु की परम प्रिया है, इसलिए यमुनाजी को श्रीकृष्ण मे रति बढाने वाली माना गया है.

जैसा कि हम ऊपर देख चुके है, पुष्टि मार्गीय भक्ति मे मानसी सेवा का सर्वाधिक महत्व है हमारे चरित्र नायक पृथ्वीराज भी अपने इष्ट देव, श्री लक्ष्मी-नाथजी की यही सेवा किया करते थे, जिसका प्रमाण हमे 'दयाळदास री ख्यात', भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास कृत 'भक्तिरस बोधिनी टीका' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे उपलब्ध है.

अपने ग्रन्थ 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' का प्रारभ कवि ने जिस मगलाचरण के छन्द से किया है उसमे भी अपने इष्ट देव श्री लक्ष्मीनाथजी (माहव) का स्मरण किया है क्योकि वे ही मगलस्वरूप हैं—

परमेमर प्रणवि, प्रणवि सरसति, सद-गुरु प्रणवि, त्रिणहे तत-सार ।
मगळ-रूप गाइजइ माहव, चार सु ऐ ही मगळाचार ।।

अपनी हीनता से भिज्ञ होते हुये भी कवि अपने इष्ट देव के गुणानुगान करने बैठ गया है, क्योकि उसे आत्म विश्वास है कि उनके यश का वर्णन किये बिना किसी कार्य मे सफलता प्राप्त नही हो सकती यहाँ कवि ग्रथारभ से ही भगवान के अनुग्रह की इच्छा करता है—

कमळापति तणी कहेवा कीरति,
आदर करे जु आदरी ।

× × ×

स्त्रीपति ! कुण सुमति, तूझ गुण जु तवति

× × ×

कहण तणउ तिण तणउ कीरतन,
स्रम कीधा विण केम सरइ ?

पुष्टि मार्ग मे सेव्य श्री कृष्ण हैं. पृथ्वीराज ने इन्ही श्रीकृष्ण को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाकर और अत्यन्त विनम्रतापूर्ण ढग से उनका यश गाकर

एक सच्चे भक्त की भाँति उन्होने अपने इष्ट की सेवा की है, जिसको हम नवधा भक्ति के 'नाम स्मरण' के अतर्गत रख सकते है. पुष्टि मार्ग मे नवधा भक्ति का बडा महत्व है.

पुष्टिमार्ग मे निहित नित्य और वर्षोत्सव सेवा-विधि, दोनो ही प्रकार की सेवा-विधियो का चुस्तता से परिपालन किया जाता है इन सेवा-विधियो के मुख्य तीन अग है—शृ गार, राग और भोग. श्री वल्लभाचार्य इन तीन अति सशक्त शक्तियो से भक्त के जीवन मे होने वाली हानि का ध्यान रख, इनको भगवद्भक्ति मे ढालने के लिये ही उपदेश दिया कि इनको श्रीकृष्णार्पण कर दिया जाना चाहिये, जिससे ये भगवानमय हो जायँ वास्तव मे आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से यही (sublimation) उर्ध्वीकरण (प्रतिशोधन) है काम की इस असाधारण शक्ति को जैसे ही (channalisation) रचनात्मक प्रवृत्तियो की ओर ढाल दिया जाता है, यह मारक शक्ति अत्यत वेगयुक्त व अत्यन्त बलशाली बन जाती है, जिससे सफलता प्राप्ति के साथ साथ मनुष्य मे दृढता और आत्मविश्वास की भावना बलवती बन जाती है. वेलि मे जो शृ गार वर्णन हुआ है, और जिस पर से उन पर घोर शृ गारिकता का आरोपण किया जाता है, वह उनकी इसी उर्ध्वीकरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है

पृथ्वीराज ने 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' मे जिस मर्यादित रूप मे भगवान श्री कृष्ण के सयोग शृ गार का वर्णन किया है, सभवत उसके पीछे उनको अपने सप्रदाय की इसी विशेषता को परिपुष्ट करने का उद्देश्य रहा हो.

यमुनाजी का पुष्टि सम्प्रदाय मे बडा महत्व है इनको श्रीकृष्ण मे रति (भक्ति) बढाने वाला माना गया है. इस सम्प्रदा के प्रत्येक व्यक्ति की सदैव यही इच्छा बनी रहती है कि भगवान के परमलीलाधाम, गोकुल, मथुरा, वृदावन आदि की यात्रा करूँ और यमुनाजी मे निमज्जन. यही नही, कई लोग तो आज भी अपनी अतिम अवस्था मे वही जाकर निवास करते है, जिससे कि उनका देहात भी उस पुण्य सलिला के किनारे पर हो, जो भगवार की परमप्रिया है. 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे तथा अन्यत्र उनकी मृत्यु का जो प्रसंग दिया गया है, वह पृथ्वीराज की इस उत्कट इच्छा का प्रबल प्रमाण है कि उनका देहात किसी अन्य स्थान पर न होकर मथुरा के प्रसिद्ध विश्रात घाट पर ही होगा वे काबुल विजयार्थ गये थे जहाँ से शीघ्र आना सभव न था पर उन्होने काबुल पर विजय पताका फहराकर, तथा अपने गुरु का स्मरण कर केवल ढाई दिन मे सीधे मथुरा के विश्रात घाट पर आ गये और अपने नश्वर देह को छोड दिया.

पुष्टि मार्गीय प्रभाव के अतिरिक्त कवि पर समसामयिक अन्य भक्ति प्रवाहो का प्रभाव भी स्पष्ट है तुलसी, सूर तथा अन्य सत-भक्त कवियो की भाँति कवि ने प्रारम्भ मे अपना दैन्य प्रकट किया है. तृतीय छद मे ही कवि कह देता है कि मेरा

यह प्रयत्न ऐसा है जैसे गूगा आदमी वाणी की अधीश्वरी को जीतने का प्रयत्न करे—

जाणै वाद माडियउ जीपण, वागहीण वागेसरी

और जब शेषनाग, जिनके सहस्र फन हैं और प्रत्येक फन मे दो दो जिह्वाएँ है, वे भी उनका पूर्णरूप से गुणानुगान नही कर सकते तो मै एक जीभ वाला सासारिक मेढ़क जैसा मनुष्य उनका गुणगान कैसे कर सकता हूँ—

जिणि सेस सहस फरा, फणि बि-बि,
जीह जीह नव नयौ जस ।
तिणि ही पार न पायौ त्रीकम.
वयण डेडरा किसौ वस ।।

फिर भी उनके यशगान के बिना न तो मनुष्य का काम ही चल सकता है और न उसका उद्धार ही हो सकता है—

कहण तणौ तिणि तणौ कीरतन,
स्रम कीधा विणु केम सरे ?

पद पद पर पृथ्वीराज मे अपनी इस वेलि से भगवान के अलौकिक स्वरूप का वर्णन किया है भगवान ही की कृपा से ब्राह्मण का एक रात्रि मे द्वारका पहुँच जाना, कुन्दनपुरी मे अलग अलग वृत्तियो के लोगो को भगवान का अलग अलग रूपो मे दृष्टिगोचर होना, अबिका दर्शन के समय रुक्मिणी का समूचे सैन्य का अपनी सम्मोहन शक्ति द्वारा मूर्छित करना और रुक्मिणी की प्रार्थना पर रुक्मी के कटे हुये केशो को पुन उत्पन्न कर देना आदि अनेक घटनाएँ भगवान श्रीकृष्ण के सर्वशक्तिमान स्वरूप की परिचायक है अशरणशरण श्रीकृष्ण के अलौकिक स्वरूप को कवि क्षण भर के लिये भी नही भूलता.

इधर रुक्मिणी भी रमा अवतार है—'रामा अवतार नाम ताइ रुकमणि' वह जगद्धात्री है, मातृशक्ति है, अतएव परम पूजनीया है वह लोकमाता, सिधु-सुता, श्री, लक्ष्मी, पद्मा, प्रभा, इदिरा, रामा, हरिवल्लभा व रमा है उस माँ का पार कौन पा सकता है ?

काव्य के अतिम छदो मे जहाँ कवि ने वेलि का माहात्म्य और पारायण का सविस्तार वर्णन किया है, वहाँ थोडी आत्मश्लाघा की भावना विद्वान समालोचको को अखरती है, किंतु यहाँ भी कवि ने एक निश्चित परिपाटी का ही पालन किया है, ऐसा प्रतीत होता है. डॉ तैस्सितोरी इस परम्परा से अवगत न होने के कारण लिख बैठे कि "After seven more stanzas mentioning among other

things Pradyumana's son Aniruddha (st 271–7), comes the conclusion which consists of twenty eight stanzas (278-305) and is very noteworthy as the boldest possible self-eulogy, which an author could compose The presumptous tone of this conclusion is in striking contrast with the modest tone of the introduction, evidently, the Poet is so pleased with the work he has done that he must say bravo to himself." (सात और छन्दो के बाद, जिनमे और बातो के अतिरिक्त प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध का वर्णन है, कवि ने ग्रथ की समाप्ति के अट्ठाईस छदो (२७८-३०५) मे आत्मश्लाघा का वह साहसिक वर्णन किया है, जिसे कदाचित ही कोई कवि कर सके. उनकी ये अतिम अभिमान पूर्ण उक्तियाँ उनके ग्रथारभ की पक्तियो का पूर्ण विरोधाभास लिये हुये है प्रत्यक्ष ही, कवि अपनी कृति से इतना प्रसन्न था कि उसे अपने आपको शाबास कहना ही था) Dr Tessitori further says, "Seeing that Prithi Raja's production is really incensurable, we may well forgive him for his outburst of self-confidence, it is on a small scale and in a different form" (डॉ० तैस्सितोरी ने आगे कहा कि पृथ्वीराज की रचना वास्तव म निष्कलक रचना है हम उसकी आत्म-विश्वामपूर्ण अतिशयोक्ति को क्षमा कर सकते है क्योकि यह अत्यन्त अल्पमात्रा मे तथा भिन्नस्वरूप मे है)

डॉ० तैस्सितोरी की अतिम पक्तियो से दो बातो का पता चलता है प्रथम तो यह कि पृथ्वीराज से भी कही अधिक आत्मश्लाघा करने वाले कवि इस विश्व मे है तथा द्वितीय यह कि यह भिन्न स्वरूप मे है यह भिन्न स्वरूप क्या है ? यहाँ हम प्रो० नरोत्तमदास स्वामी से पूर्णतया सहमत है कि 'यह प्रशसा कवि के काव्य की नही, भगवान के पावन चरित्र की है, जिसके पठन, श्रवण, मनन और निदिध्यासन से आस्तिक जन समस्त मनोरथो की पूर्ति और विविध सिद्धियो की प्राप्ति सहज सभाव्य मानते है ये अलौकिक गुण वेलि के अपने नही परन्तु हरि चरित्र के है, जो हरि चरित्र के सम्पर्क के कारण वेलि मे भी प्रतिफलित है ' 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' की भूमिका मे प्रो० सूर्यकरण पारीक ने लिखा है कि '..........यह भी सभव है कि इसके पाठ से हमारा त्रिविध ताप व त्रिविध रोग दूर न हो, एव भवसागर से पार न हुआ जाय, परन्तु जब हम इन सब फलाकाक्षाओ से अपने चचल मन को हटा कर, लीलामय भगवान और महामाया लक्ष्मी के सासारिक चरित्रो के रहस्य जानने मे, अध्यवसाय और निश्चल भक्तिपूर्वक चित्त को लगावे तो क्या इस ग्रथ को पढने

---

1. Page XI Introduction by Dr L P Tessitori of his book—'वेलि रुकमणी री.' प्रकाशक—एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता A D 1919

से हमको मनशुद्धि प्राप्त न होगी ?.... परन्तु फलादेश के साथ कवि का यह भी कहना है कि मनशुद्धि की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब श्रद्धा और भक्तिपूर्वक इस कथा का अनुशीलन किया जाय'...... महाराज पृथ्वीराज के काव्य मे आत्मश्लाघा अथवा मिथ्याभितान की आशका करना निरी भूल है '[1]

वैसे वेलि के प्रारभ की भाँति, अत मे भी कवि ने अपना दैन्य प्रकट किया है. छद सख्या ३०० मे कवि ने विनम्रतापूर्वक कहा है कि—

> अहिया मुख-मुखा, गिळित उग्रहिया
> मू गिणि आखर अ मरम ।
> मोटा तणा प्रसाद कहइ महि,
> अइठउ आतम स्रम अधम ।।३००।।

(भावार्थ —मैने अनेक महापुरुषो से हरि गुण सुने, सुन कर उनको हृदयगम करके पुनः कविता के माध्यम से प्रकट कर दिये इसमे मेरा कुछ नही है सज्जन लोग इसे प्रसाद कहेगे तो दुष्ट लोग इसी को जूठन कहेगे)

> हरि-जस-रस साहस करे हालिया,
> मो पडिता ! वीनती मोख ।
> अम्हीणा तम्हीणइ आया,
> स्रवण तीरथे वयण स-दोष ।।३०१।।

(मेरी कविता अनेक दोषो से भरी है, पर हरि यश का सम्पर्क कर आपके कर्ण रूपी तीर्थ तक अपने दोषो को दूर करने आई है हे पडितो ! मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देकर इसे निर्दोष कर दे.)

और अत मे छद सख्या ३०३ मे कवि ने अपनी क्षतियो को स्पष्ट स्वीकार किया है—

> भलउ तिकउ परसाद भारती,
> भूडउ ताइ माहरउ भ्रम ।

ऐसे भक्त कवि पर आत्मश्लाघा का दोषारोपण औचित्य की कसौटी पर खरा नही उतरता. सस्कृत के अनेक कवियो के तथा सत प्रवर तुलसीदास ने भी

---

१. 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' भूमिका पृ० १००–१०१. प्रकाशक हिन्दुस्तानी अकेदमी, प्रयाग. सन् १९३१.

अपने काव्यो मे उपर्युक्त आत्मश्लाघा की परिपाटी का निर्वाह किया है तुलसीदासजी ने रामचरितमानस मे कहा है कि।—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल, अछत तनु, साधु समाज प्रयाग।।

और

मन कामना सिद्धि नर पावा, जे यह कथा कपट तजि गावा।,
कहहिं सुनई अनुमोदन करही, ते गोपद इव भवनिधि तरही।।

वेलि का भाव पक्ष

पतित-पावनी, पुण्य-सलिला जाह्नवी जिस प्रकार सगम मे यमुना और सरस्वती से तथा इसके पूव भी अनेक छोटी मोटी सरिताओ से मिल कर, एक विशाल और भव्य रूप धारण कर सबको पावन करती हुई निरतर प्रवहशील है, उसी भाँति वेलि की भक्तिरस रूपी सूर सरिता मे शृ गार और वीर रस रूपी यमुना तथा सरस्वती और रौद्र, भयानक व वीभत्स रूपी अन्य अनेक रस-सरिताओ का मिलन है, जिसमे उसका भाव-सौदर्य निखर उठा है और जिसमे अवगाहन से भयकरतम अघो का विनाश हो जाता है और जिस प्रकार गगा अत मे जाकर अपने पति महोदधि मे मिल जाती है ठीक उसी प्रकार वेलि भी अनत स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण तक पहुँचाने का अमूल्य उपाय है ।

यद्यपि काव्यशास्त्रियो ने सर्वसम्मत होकर भक्ति को रस रूप मे अंगीकार नही किया है तथापि यह निसदिग्ध है कि वेलि का अगीरस भक्तिरस ही है. नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि ने जिन आठ रसो की स्थापना की थी, उनमे परवर्ती आचार्यो ने सशोधन कर 'शात' को भी रस रूप मे स्वीकार कर लिया उसके पश्चात् आधुनिक युग तक यह एक अत्यन्त विवादास्पद विषय रहा है कि काव्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण से भक्ति को किस कोटि मे रखा जाय क्या भक्ति को भी स्वतत्र रस के रूप मे अगीकार कर नौ के स्थान पर दस मान लिये जाय या अन्य पुरोगामी आचार्यों की भाँति इसे केवल 'भाव' के रूप मे स्वीकार कर सतुष्ट हुआ जाय ? आचार्य भरत ने न तो भक्ति को रस रूप मे स्वीकार किया था और न भाव के रूप मे ही पर, दण्डी, अभिनव गुप्त, मम्मट, विश्वनाथ और पण्डितराज जगन्नाथ के सम्मुख भक्ति विषयक समुचित सामग्री थी, फिर भी काव्यशास्त्रियो ने यही प्रतिपादित किया कि भक्ति एक रस न होकर केवल 'भाव' है दण्डी ने भक्ति को रस न कह कर 'प्रेयस' अलकार कहा है[1] तो रुद्रट ने इसे कुछ उठाने और व्यापकता देने का प्रयत्न किया[2] और एक नये रस 'प्रेयान' की कल्पना की अभिनव गुप्त ने इसे एक स्वतत्र रस न मान कर 'शात' रस के एक अग के रूप मे स्वीकार किया है जबकि मम्मट ने इसे केवल एक भाव कह कर छोड दिया है.

---

१ काव्यादर्श, दण्डी

२. 'हिंदी वैष्णव साहित्य मे रस परिकल्पना'—डॉ प्रेमस्वरूप गुप्त पृ. २०४.

'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'—के अनुसार कुछ काव्यशास्त्रियो ने **प्रेयांस, दान्त, उद्धत, भक्ति, लौल्य,** तथा **कार्पण्य** को भी रस माना है प्रेयाम का अन्य नाम वात्सल्य है, जिसे काव्यप्रकाशकार ने भाव के अन्तर्गत मान लिया है. टीकाकार ने लिखा है कि:—**'प्रेयासादि त्रयस्तु भावान्तर्गता इति बोध्यम। एतेनाभिलाषस्थायिको लौल्यरस: श्रद्धास्थायिको भक्ति रस स्पृहास्थायिक. कार्पण्याख्यो रसोऽतिरिक्त इत्यपास्तम्।'** साहित्य दर्पणकार ने वत्सल को रस मानते हुये लिखा है कि **'स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रसं विदु ।'**

इस प्रकार हम देखते है कि सभी आचार्य यद्यपि भक्ति के पृथक अस्तित्व को स्वीकार नही करते फिर भी क्रमश हम एक ऐसी प्रवृत्ति को विकसित होती हुई देखते है, जो भक्ति को एक स्वतंत्र रस के रूप मे मानने मे अग्रसर है

वैष्णव आचार्यो ने भक्ति रस की स्वतत्र सत्ता को स्वीकार कर काव्य-शास्त्रियो को सर्वथा नया दृष्टिकोण दिया है महाप्रभु चैतन्य से प्रभावित गौडीय सप्रदाय के आचार्य रूप गोस्वामी के द्वारा प्रणीत **'हरिभक्ति रसामृत सिंधु'** और **'उज्ज्वलनीलमणि'** का मूल विषय भक्ति रस का प्रतिपादन ही है रूप गोस्वामी के उपर्युक्त ग्रथो के टीकाकार जीव गोस्वामी ने अपनी टीकाओ मे भक्ति को रस के रूप मे प्रतिष्ठित किया है रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी ने भक्ति रस को प्रमुख मान कर, उसके पॉच मुख्य और सात गौण भेदो के साथ प्रत्येक के स्थायी भावो को इस प्रकार माना है—

मुख्य रस	**क्रमसख्या**	**रस**	**स्थायी भाव**
	१.	शात भक्ति रस	शात
	२.	प्रीत ,, ,,	प्रीति.
	३.	प्रेयान ,, ,,	सख्य.
	४.	वत्सल ,, ,,	वात्सल्य.
	५.	मधुर ,, ,,	प्रियता या मधुरा रति.
गौण रस	१.	हास्य ,, ,,	हास रति.
	२.	अद्भुत ,, ,,	विस्मय रति.
	३.	वीर ,, ,,	उत्साह रति.
	४.	करुण ,, ,,	शोक रति.
	५.	रौद्र ,, ,,	क्रोध रति
	६.	भयानक,, ,,	भय रति.
	७.	वीभत्स ,, ,,	जुगुप्सा रति.

भावपक्ष की दृष्टि से कविता का प्रमुख प्रयोजन रसोद्बोधन या रसनिष्पत्ति है. साहित्य दर्पणकार के **'रसात्मक वाक्यं काव्यं'** मे रस की अभिव्यजना को ही

मुख्य माना है इसीलिए प्रत्येक काव्य मे शास्त्र-मान्य नौ या दस रसो मे से किसी एक या एक से अधिक रसो को ढूढने का प्रयत्न किया जाता है इन्ही नौ या दस रसो मे से रसशिरोमणि या रस राजत्व के पद के लिये पर्याप्त मतवैभिन्य रहा है किसी की सम्मति मे इसका अधिकारी केवल श्रृ गार ही हो सकता है तो अन्य के मतानुसार करुण रस ही इसका सर्वाधिक पात्र है कोई वीर रस का प्रबल पक्षपाती है तो किसी ने अद्भुत रस के लिये भी योग्य तर्क प्रस्तुत किये है. वास्तव मे यह विवाद निरर्थक लगता है क्योकि रस का मूल प्रयोजन तो आस्वाद है **'रस्यते आस्वाद्यते इति रस ।'** यह तो किसी कविता पर आधारित है कि वह स्थायी भावो को कितने अशो तक जागृत कर सकती है यदि श्रृ गारपूर्ण कृति रति (प्रेम) जागृत नही कर सकती तो श्रृ गार को रसराज स्वीकार कर लेने से भी काम न चलेगा इससे तो अद्भुत रस की कृति श्रेष्ट रहेगी, जिसमे साधारणीकरण की क्षमता है और जो अपने स्थायी-भाव विस्मय (आश्चर्य) को जागृत कर सकता है

फिर भी जीवन मे परिव्याप्तता और वर्णन विस्तार के दृष्टिकोण से कई काव्यशास्त्रियो ने भक्ति रस के अभाव मे श्रृ गार को रस-राज के सिंहासन पर आसीन किया है प्रबध काव्य की दृष्टि से कई रस-मर्मज्ञो ने श्रृ गार, वीर तथा शात रस को अगी रस के रूप मे स्वीकार किया है यहाँ पर पुन ध्यान आकर्षण के लिये निवेदन है कि तब तक भक्तिरस को स्वतत्र रस के रूप मे अगीकार न कर लेने के अभाव मे ही यह निर्णय लिया गया था. पर, अब जबकि हमारे सम्मुख भक्ति का अपार साहित्य है और रस की दृष्टि से उसके स्थायीभाव, व्यभिचारी भाव, विभाव (आलम्बन, उद्दीपन) और अनुभाव आदि पर गहनता से विचार विमर्श हो चुका है तब हमे भक्तिरस को भी स्वतत्र रस के रूप मे प्रतिष्ठित करने मे हिचकिचाहट नही होनी चाहिये. भक्ति रस के रसाग इस प्रकार माने गये है—

स्थायी भाव— भगवान विषयक प्रेम (रति) [1]

विभाव— (१) **आलम्बन विभाव**—इसके अन्तर्गत विषय रूप भगवान (राम-कृष्ण) और आधार रूप मे प्रिय भक्तो का समावेश है

(२) **उद्दीपन विभाव**—भगवान के गुण तथा भक्त और कृष्ण-गत भक्त विषयक रति.

अनुभाव— भक्तो की भावानुभूति के परिणामस्वरूप होने वाली चेष्टाएँ इसमे परिगणित है, जैसे प्रेमजन्य अश्रु और रोमाच.

---

१. हिंदी वैष्णव साहित्य मे रस परिकल्पना—डॉ प्रेमस्वरूप गुप्त. पृ. १७६, १७७.

व्यभिचारी भाव—इन्हे सचारी भाव भी कहते है. इनकी सख्या काव्यशास्त्रानुसार तैंतीस ही है जैसे निर्वेद, हर्ष, दैन्य, चपलता, आवेग और तर्क आदि,

सात्विक भाव— कृष्ण सबधी भावो से परिलुप्त चित्त को सत्व नाम दिया गया है. यहाँ भी आचार्य भरत का अनुसरण किया गया है और आठ सात्विको को मान्य रखा गया है—स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वर-भग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय.

ऐसे भक्ति रस को **'रसो वै स.'** तथा **'आनंदो ब्रह्म'** कह कर पुकारा गया है आनद तीन प्रकार के होते है—**विषयानद, काव्यानद और ब्रह्मानंद.** काव्यानद को **ब्रह्मानद** का स्वरूप न कह कर आचार्यो ने इसे **ब्रह्मानंद सहोदर** कहा है.

शृ गार, वीर, वीभत्स आदि अन्य रसो के होते हुये भी वेलि एक भक्तिमय काव्य है, जिसमे अथ से इति भक्त का दैन्य, उसकी अशक्ति और श्रद्धा व्यक्त की गई है, तथा सम्पूर्ण काव्य मे कवि यह न भूला है कि वह किस लोकोत्तर शक्ति का वर्णन कर रहा है वास्तव मे भक्ति रस की प्राणधारा वेलि की शिराओ मे अत सलिला की भाँति बही है इतना होते हुये भी वेलि पर का यह आरोपण कि वह एक शृ गारमयी रचना है, विवेच्य है पृथ्वीराज की वेलि के प्रारभिक छदो मे ही—

त्री-वरणण पहिलउ कीजइ तिणि
गूथियइ जेणि सिंगार ग्रथ ।।८।।

के स्पष्ट उल्लेख से सहज ही एक भ्रम उभर आता है कि वेलि एक शृ गारपूर्ण कृति ही है यही नही कवि ने इसी छद (स ८) की प्रथम पँक्तियो मे अपने मत की परि-पुष्टि के लिये सुकदेव, व्यास आदि का उदाहरण दिया है—

सुकदेव व्यास जयदेव सारिखा.
सुकवि अनेक, ते अेक सथ ।
त्री-वरणण पहिलउ कीजइ तिणि,
गूथियइ जेणि सिंगार ग्रथ ।।८।।

इसके पश्चात् छद स २७८ तक कवि ने कही भी इस बात का उल्लेख तक नही किया है कि यह एक शृ गारिक रचना है इस छद सख्या मे भी कवि ने स्पष्ट उल्लेख न कर वेलि के माहात्म्य का दिग्दर्शन कराते हुये इसमे प्रयुक्त रसो की चर्चा की है—

हरि समरण, रस समभ्रण हरिणाखी,
चात्रण खळ खगि खेत्रि चढि ।

बइमे सभा पारकी बोलण
प्राणिया ! वछइ ते वेलि पढि ।।२७८।।

(हे प्राणी ! यदि तू भगवान का भजन करना, सुदर रमणी के रस को समझना, युद्ध भूमि मे चढ कर शत्रुओ को तलवार से काटना और दूसरे लोगो की सभा मे बैठ कर बोलना चाहता है तो वेलि का पाठ कर)

इस प्रकार कवि ने भगवान के नाम स्मरण के द्वारा भक्ति, सुदर मृगनयनी रमणी को समझने के द्वारा शृ गार और युद्धभूमि मे चढ कर तलवार से शत्रु को काटने के द्वारा वीर रस की प्रतिष्ठा के साथ साथ सभा-चातुर्य की ओर रसिक पाठको का ध्यान आकर्षित किया है. छद सख्या आठ से वेलि केवल शृ गार रस का ग्रथ घोषित होता है जबकि छद सख्या २७८ से इसमे भक्ति, शृ गार तथा वीर—इन तीनो रसो का समावेश है फिर इसी छद मे 'हरि समरण' को प्राथमिकता देकर कवि ने छद सख्या आठ मे उल्लिखित **'गूथयिइ जेणि शृँगार ग्रंथ'** का स्पष्ट विरोध कर दिया है महात्म्य मे वेलि के नित्य पठन से भुक्ति और मुक्ति दोनो प्राप्त होते है, ऐसा कवि ने अनेक बार श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है वेलि यदि मूलत शृ गारपूर्ण ग्रथ होता तो न तो इसका ग्रथकर्ता ही इसके नित्य पठन की चर्चा करता न लोग इसे अपने पाठपूजा मे रखते और न तत्कालीन भक्त और इतिहासकार इसको उन्नीसवाँ पुराण आदि कह कर सबोधित कर अपने श्रद्धा-सुमन चढाते ऐसी दशा मे वेलि का अगीरस शृ गार ही है—मानने का कोई औचित्य नही दिखलाई पडता.

अन्य नदियो को अपने मे आत्मसात करके, उनके सगम के पश्चात् जिस प्रकार केवल गगा ही शेष रह जाती है, ठीक उसी भाँति अनेक रसो के अवस्थित होने पर भी वेलि का अगीरस तो भक्तिरस ही है. गौण रसो मे शृ गार के अतिरिक्त वीर, रौद्र, वीभत्स आदि का सुन्दर निरूपण वेलि मे हुआ है

वीर रस

प्रसंगोचित उसमे वीर रस की जो श्रेष्ठ भावाभिव्यजना हुई है, केवल इसी एक कारण से वीर रस को वेलि का प्रमुख रस स्वीकार नही किया जा सकता न तो कवि का आशय ही किसी वीर काव्य के निर्माण का था और न ही समूचे काव्य के पठन के पश्चात् यह ध्वनि ही निकलती है तेरह छदो के युद्ध-वर्षा-रूपक मे भक्त कवि ने निश्चय ही अद्भुत शौर्य-वर्णन किया है. जिसके पठन से भुजाएँ फडक उठती हैं और आँखे तन जाती हैं तथा मुह तमतमा जाता है पर यह सब तो शत्रुदलन के हेतु था, जो नायक की गरिमा के लिये आवश्यक था,

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है इसके आलम्बन युद्ध क्षेत्र, सैन्य, कोलाहल और रणवाद्य है तथा उद्दीपन है युद्धवीर अगो का फडकना अनुभाव है तो गर्व,

हर्ष, उत्कठा इसके सचारीभाव हैं. वेलिकार ने वेलि मे वीर रस को इन अगो का सुदर चित्रण किया है

रुक्मिणी के पत्र के पढने के साथ ही कृष्ण तुरत अकेले रवाना हो जाते है तथा हरगौरी के मदिर के बाहर विशाल सेना के सम्मुख रुक्मिणी का कर ग्रहण कर रथ मे बिठाने के पश्चात्, जिस ओजमयी वाणी से एकत्रित वीर समुदाय को,

वाहर रे वाहर कोई छै वर
'हरि हरिणाखी जाइ हरि'

के शब्दो द्वारा शत्रु सैन्य को ललकारते है, वही युद्ध-जनित उत्साह स्थायीभाव है

बलराम का सेना लेकर प्रयाण, उनका सैन्य संचालन, दोनो ओर की सेनाओ का भीषण कोलाहल और रणवाद्यो का बजना, वीर रस के आलम्बन हैं—

चढिया हरि सुणि सकरखण चढिया.
कटक-बध नह घणउ किध ।
अेक उजागर कळहि अेहवा
साथी सहु आखाड सिध ।।७४।।

(बलराम ने जब सुना कि कृष्ण अकेले ही हमला करने गये है तो वे चढकर चले. उन्होने बहुत कम सेना को साथ मे लिया क्योंकि एक तो वे स्वय युद्ध करने मे पारगत थे और दूसरे जितने साथी साथ मे थे, वे सब के सब युद्ध करने मे सिद्ध हस्त थे.)

कॉपिया उर काइरा असुभकारियउ
गाजति नीसाणै गडडइ ।

(नगाडो की गडगडाहट से कायरो के हृदय काँप उठे, जैसे बादलो की गर्जन मात्र से अशुभकारी व्यापारी कॉप उठते हैं.)

दोनो सेनाओ के मरने-मारने पर तुले हुये और अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित सैनिकगण ही उद्दीपन हैं ।

युद्ध-वर्षा-रूपक कवि की मौलिक कल्पनाओ द्वारा प्रस्तुत सुदर शब्द चित्र है और इसमे कोई अत्युक्ति नही है कि वे इस साग-रूपक अलकार द्वारा अपने उद्देश्य मे पूर्णत सफल हुये है दोनो सेनाओ के चलने से धूल उठी आकाश धूल से भर गया और धूल से ढका हुआ सूर्य तो ऐसा दिखाई पडता था मानो वातावर्त पर किसी वृक्ष का पत्ता चढा हुआ हो—

ऊपडी रजी मझि अरक अेहवउ
वातचक्र सिरि पत्र वसति ।

वीर वेश और वीर रसोन्मत्त, कवच और शिरस्त्राण धारण की हुई दोनो सेनाये ऐसी लगती थी मानो काल रूपी दो काली घटाएँ उमड-घुमड कर एक दूसरे के आमने सामने खडी हो--

कठठी बे घटा करे काळाहणि,
सामुहे आमुहे-सामुहइ ।

इतने मे युद्ध प्रारभ होगया. सैनिकगणो की हुकार और ललकार के साथ विविध प्रकार के अस्त्रो और शस्त्रो का प्रयोग होने लगा. कवचो से टकरा कर तीर ऐसे गिरने लगे जैसे वर्षा की बूदे समुद्र के जल मे गिरती हो. लडती लडती दोनो सेनाएँ अब अत्यधिक समीप आ जाने के कारण दूरगामी हथियारो का प्रयोग बद होगया और मुठभेड शुरू हो गई युद्धभूमि सतप्त हो उठी धडो पर तलवारो के वार इस प्रकार चमक रहे थे जैसे वर्षाकाल मे घनशिखरो मे बिजलियो का चमकना--

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरसत विसिख विवरजित वाउ ।
धड धड धडकि धार धारूजळ,
सिहर सिहर समरवई सिळाउ ।।११६।।

युद्ध मे चौसठ योगिनियाँ हर्षोन्मत्त हो ऐसी कूद रही थी, जैसे वर्षाकाल मे योगिनियाँ (बुदबुदे) नाचती हो माथे कट-कट कर गिर रहे थे और कबध उठ उठ कर लड रहे थे.[1] श्रीकृष्ण और शिशुपाल ने शस्त्रो की झडी लगादी जैसे वर्षाकाल मे वर्षा की झडी लग जाती है वर्षा की झडी से पानी बहने के समान शस्त्रो की झडी से रक्त बह चला ।

बलराम ने युद्धभूमि मे अपने सैनिको को उत्साह दिलवा कर जल्दी जल्दी ऐसे हल (बलराम का आयुध) चलाया. जैसे वर्षा के बाद कृषक आलस्य न कर खेत मे हल चलाते है महाबली बलराम ने अपनी भुजाओ के बल से तलवार द्वारा शत्रुओ के सिरो को काट काट ऐसे ढेर लगा दिये जैसे किसान हँसुओ द्वारा फसल को काट काट कर बालो का ढेर लगा देता है और जैसे किसान खलिहाल मे बालो को इकट्ठा

---

१ श्री नरोत्तमदास स्वामी ने अपनी टीका में ध्रू (मस्तक) के कटकर गिरजाने और कबध के लडने की तुलना ध्रू (ध्रुव) नक्षत्र के अदृश्य होजाने पर केतु नक्षत्र के उदय हो जाने से की है जो छद (१२१) मे नही है. ध्रुव तो कभी अदृश्य ही नही होता.

कर उनको पैरो से या बैलो से कुचलवाता है ठीक उसी तरह बलराम ने कभी अपने चरणो से तो कभी घोडो के खुरो से शत्रु सेना को कुचल डाला—

रिण गाहटतइ राम खळा रिण,
थिर निज चरण सु मेढि थिया ।
फिरि चढियइ सघार फेरता,
केकाणा पाई सुगह किया ।।१२७।।

रुक्मी, शिशुपाल और जरासध की सयुक्त सेनाओ को पराजित कर, कृष्ण और बलराम विजयानद मे द्वारिका लौटे, जहाँ सारे नगर ने बडे धूमधाम मे उनका स्वागत किया.

वीभत्स रस :

वीभत्स का स्थायी भाव जुगुप्सा है युद्ध मे लाशो का ढेर लगना, अग-प्रत्यगो का कटना और विकृत बनना, रुधिर के पग्नाले बहना आदि दृश्य मन मे घृणा का भाव जागृत करते है—

ऊजळिया धारा ऊवडियउ,
परनाळे जळ रुहिर पडइ ।

बलराम के घातक शस्त्रो के सचालन से शत्रुओ के शरीरो मे अनेक घाव हो गये प्रत्येक घाव से रक्त के फुहारे छूटने लगे—

घटि घटि घण घाउ, घाइ-घाइ रत गण,
ऊच छिछ उछळई अति ।

और बलराम ने तो तलवार के वारो से युद्ध भूमि मे शत्रुओ के सिरो का ढेर लगा दिया—

बिजडां मुँहे बेडतइ बळिभद्रि,
सिरा पुजि कीधा समरि ।

युद्धभूमि मे हाथो मे खप्पर लेकर चौसठ प्रकार की योगिनियो का उन्मत्त हो, नृत्य करना, गिद्धनियो का नोच नोच कर लाशो को विदीर्ण करना, प्रसन्न वदन होकर रक्त पीना अथवा मास भक्षण करना आदि वीभत्स रस के विभाव हैं असह्य पीडा के कारण घायल सैनिको का कराहना तथा अत मे मृत्यु को प्राप्त होना, इस रस के व्यभिचारी भाव हैं

यह ठीक है कि वेलि मे वीभत्स रस वीर रस के सहायक के रूप मे प्रस्तुत किया गया है, लेकिन उसे इस रूप मे न लेकर उसकी स्वतत्र सत्ता की दृष्टि से विचार करे तब भी वह अपने आप मे पूर्ण है. वैसे युद्ध मे वीभत्स अवश्यभावी है.

वेलि मे वीभत्स रस का वर्णन छद सख्या १२० से १२८ तक मे किया गया है.

रौद्र रस

प्रसगानुसार वेलि मे समुचित रूप से रौद्र रस को भी स्थान मिला है युद्ध-भूमि दया का स्थल न होकर निर्ममता व क्रोध का स्थान है शत्रु तथा उसके अपराधो को देख कर क्रोध आना स्वाभाविक है युद्ध-वर्षा-रूपक के प्रथम छद मे क्रोधित हो, दोनो सेनाये आमने सामने खडी हो गई —

कठठी बे घटा करे काळाहणि,
सामुहे आमुहे–सामुहइ ।

रुक्मकुमार की ललकार सुन कर भगवान का क्रोधित होना तथा भौहे चढा कर हाथ मे धनुष लेकर प्रत्यचा पर बाण चढाना, और गुस्से मे आकर देखते देखते ही रुक्मी के सारे आयुधो को नष्ट कर देना, रौद्र रस के अनुभावो के सुन्दर दृष्टान्त हैं—

रुकमइयउ पेखि तपत आरणि रणि,
× × ×
बिळकुळियउ वदन जेम वाकारियउ
सग्रहि धनुख पुणच पर सधि ।
क्रिसन रुकम–आउध छेदण कजि,
वेलखि अणी मूठि द्रिठ बधि ।।१३१।।

अन्य रस

अन्य गौण रसो के अन्तर्गत भयानक, अद्भुत तथा हास्य रस को भी वेलि मे समावेश हुआ है. पर रसागो के अभाव मे उनका पूर्ण प्रस्फुटन नही हो सका है. नगाडो की गडगडाहट के साथ कायरो के हृदयो का प्रकम्पित होना, आदि भयानक रस के उदाहरण हैं. दृष्टव्य है—

काँपिया उर कायरा असुभकारियउ
गाजति निसाणे गड़ड़इ ।

वेलि मे तीन चार ऐसे चमत्कारो का वर्णन है, जो अद्‌भुत रस को उत्पन्न करते हैं सर्वप्रथम ब्राह्मण का रात्रि हो जाने से कुदनपुर मे सोना और प्रात.काल मे जगते ही अपने आपको द्वारिका मे पाना—

साझ सोचि कुदणपुरि सूतउ,
जागिउ परभाते जगति ।

स्वय ब्राह्मण को विश्वास नही होता वह आश्चर्य चकित है और कहता है कि कही यह स्वप्न तो नही है—

सप्रति अे किना, किना अे सुहिणउ ?
आयउ हूँ अमरावती.

दूसरी बार अद्‌भुत रस की प्राप्ति हमे उस समय होती है जब रुक्मी आदि अन्य राजाओ की सेना अम्बिका मदिर के बाह्य प्रागण मे रुक्मिणी के अनुपम सौदर्य से मत्र-मुग्ध हो, कुछ क्षणो के लिये तो पाषाणवत् हो जाती है—

मन पगु थियउ, सहु सेन मूरछित,
तह नह रही सपेखतइ ।
किरि नीपायउ तदि निकुटीअे
मठ पूतळी पखाण मइ ॥११०॥

तृतीय बार अद्‌भुत रस का बोध हमे कृष्ण द्वारा रुक्मी के काटे हुये बालो को फिर से उत्पन्न कर देने के समय होता है. सर्व समर्थ भगवान के लिये असभव क्या है ?—

क्रित करण अकरण अन्नथा-करण,
सगळे ही थोके ससमथ्थ ।
ह्रा लिया जाइ लगाया हूता,
हरि साळइ सिरि थापि हथ्थ ॥१३७॥

समग्र कथा मे हास्य रस की सृष्टि दो अेक स्थानो पर होती है, पर रसागो से परिपुष्ट न होने के कारण केवल उसकी झलक-सी दिखाई देती है. एक तो श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मी के केशो को काट कर उसे विद्रूप बनाते समय सहज ही मुस्कराहट की हलकी रेखा सी मुख पर खिच जाती है. युद्ध मे यह कैसा अभिनव कृत्य ! इसके पश्चात् हास्य रस का एक स्थल और आता है जब सखियाँ 'लाज लोह लगरे लगायइ' वाली रुक्मिणी को भगवान के केलिगृह मे पहुचाकर और द्वार बद कर एक दूसरे की ओर देख कर हसाहस करती हैं—

चौकि चोकि ऊपरि चित्रसाळी
हुई रहियौ कहकहाहट ।।१७१।।

इसके पूर्व कृष्ण-रुक्मिणी के मनोभावो को समझ जब सखियाँ भौहो से हँसती हुई केलिगृह से बाहर निकली तो हास्य का एक मधुर वातावरण छा जाता है—

हसि हसि भ्रूहे, हेक हेक हुइ
गृह बाहरि सहचरि गई ।।१७२।।

शृंगार रस

नाट्यशास्त्र के आचार्य भरत ने कहा है कि ससार मे जो कुछ पवित्र, मेध्य (उत्तम) और दर्शनीय है, वही शृ गार है—'**यत्किचिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वल दर्शनीय वा तत शृ गारेणापमीयते ।**' विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' मे शृगार का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

शृग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुक.
उत्तम प्रकृतिप्रायो रस शृङ्गार इष्यते ।

(कामदेव के उद्भेद (अकुरित होने) को शृग कहते है उसकी उत्पत्ति का कारण, अधिकाश उत्तम प्रकृति से युक्त रस शृगार कहलाता है.)

शृगार रस मे स्त्रीपुरुष विषयक प्रेम का वर्णन रहता है, जिसे साहित्य मे रति कहते है. भोजराज ने अपने '**शृ गारप्रकाश**' में शृगार का ही एक मात्र रस माना है. यहाँ तक कि साख्य दर्शन से प्रभावित होकर उन्होने अहकार को भी शृगार का पर्याय स्वीकार किया है यदि कोई कवि शृगारी होगा तो सारा जगत रसमय हो जायेगा और विपरीत इसके यदि कवि अशृगारी हुआ तो सब कुछ नीरस हो जायेगा. शृगार की व्यापकता और आस्वाद की उत्कृष्टता के कारण ही आचार्यों ने इसे रसराज की सज्ञा से सबोधित किया है. रति इसका स्थायीभाव हे नायक और नायिका (प्रेमी और प्रेमीपात्र) इसके आलम्बन है अनुराग शून्य वेश्या को छोडकर सभी नायिकाओ की गणना आलम्बन विभाव के अन्तर्गत होती है सुदर प्राकृतिक दृश्य, सुगध, चदन, भ्रमर, चाँदनी, पुष्प, सगीत, चद्रमा और वसत ऋतु आदि इसके उद्दीपन है अवलोकन (अनुरागपूर्ण भृकुटिभग और कटाक्ष) तथा स्पर्श आदि इसके अनुभाव है स्मृति, हर्ष, लज्जा, मोह, आवेग, रोमाच, चचलता, उत्कठा आदि इसके सचारी भाव हैं.

शृगार के दो भेद हैं—(१) सयोग शृगार और (२) वियोग अथवा विप्रलम्भ शृंगार. प्रेम मे निमज्जित होकर परस्पर दर्शन, आलिगन, चुबन आदि रति के उपभोग से सयोग शृगार की व्यंजना होती है. इस रस के लिये नायक-नायिका के

सामीप्य के साथ साथ चित्त की एकता भी आवश्यक है ठीक इसके विपरीत नायक-नायिका के बीच अपरिमित प्यार और गाढानुराग होते हुये भी सयोगवशात् समागम न होने पर वियोग शृगार होता है पूवराग, मान, प्रवास, और करुण— इसके ये चार प्रकार है. यही एक मात्र रस है जहाँ इसके उद्दीपन वैशिष्ट्य लिये हुये हैं. सयोगावस्था मे जो उद्दीपन सयोग को उद्दीप्त कर सुख का सर्जन करते है वियोगावस्था मे, वे ही उद्दीपन विप्रलभ को उद्दीप्त कर, दुख को उद्दीप्त करते है

सयोग-वर्णन के पूर्व वियोग-वर्णन प्राचीन परिपाटी रही है वेलिकार ने इसी परपरा का पालन किया है क्योकि कथा को देखते हुये वियोग की सभी अतर्दशाओ का वर्णन कवि को न तो अभीष्ट ही था और न अवकाश ही था इसीलिये वेलि मे वियोग शृगार के दो तीन दृष्टातो को छोड कर, सर्वत्र सयोग शृगार का ही अत्युत्तम वर्णन हुआ है ऊपर वियोग शृगार के जिन चार प्रकारो का वर्णन किया गया है उनमे से' पूर्वानुराग' और 'मान' को छोड कर अन्य दो 'प्रवास' और 'करुण का वर्णन तो नाम भर के लिये वेलि मे हुआ है 'मान' का भी केवल संकेत मात्र मिलता है इस प्रकार हम देखते हैं कि वेलि मे विप्रलभ शृगार के केवल एक प्रकार 'पूर्वानुराग' का ही वर्णन हुआ है पूर्वानुराग अथवा पूर्वराग के चार भेद होते है— (१) प्रत्यक्ष दर्शन, (२) चित्र दर्शन, (३) गुण श्रवण और (४) स्वप्न दर्शन 'ढोला मारू रा दूहा' मे मारू को स्वप्न मे ढोला के दर्शन हुये और वह उस पर मुग्ध हो गई—

असइ आरखइ मारुवी, सूती सेज बिछाइ।
साल्हकुँवर सुपनइँ मिल्यउ, जागि निसासउ खाइ।।

रामचरितमानस मे प्रत्यक्ष दर्शन का एक भव्य चित्र तुलसीदासजी ने प्रस्तुत किया है एक ओर से राम और दूसरी ओर से सीता का राज्यप्रासाद की फुलवारी मे आना और दोनो की दृष्टि का मिलना सीता ने राम की अवर्णननीय शोभा को हृदयगम कर लिया—

लोचन मग रामहि उर आनी, दीन्हे पलक-कपाट सयानी।

इधर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने सीता को देखा तो राम के अग फडकने लगे—**'फरकहि सुभग अग सुनु भ्राता'** जिन्होने स्वप्न मे भी पर नारी को नही देखा, उनके मन मे यह मोह कैसा ? **'मोह अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहुँ परनारि न हेरी।'**

इस सात्विक प्रत्यक्ष दर्शन के विपरीत जायसी के पद्मावत मे बादशाह ने जैसे ही दर्पण मे पद्मावती की एक झलक देखी तो मूर्छित हो गया इसके पूर्व भी राघव के द्वारा पद्मिनी के गुण श्रवण कर बादशाह अलाउद्दीन मूर्छित हो गया था—

राघौ जौ धनि बरनि सुनाई ।
सुना साह मुरुछा गति आई ।।

हीरामन तोता ने जब पद्मावती के अपूर्व रूप का वर्णन किया तो रत्नसेन भ्रमर की भाँति आकर्षित हो गया—

हीरामनि जौ कँवल बखाना । सुनि राजा होइ भँवर लुभाना ।
आगे आउ पखि उजियारे । कहहि सो दीप पतग के बारे ।।

रूपनगर की राजकुमारी चचल ने रत्नसिंह का चित्र-दर्शन किया तो वह उसके वृषभकध, उन्नत ललाट और कातिमय मुखमण्डल से अत्यन्त प्रभावित हो मुग्ध हो गई.

वेलिकार ने वेलि मे रुक्मिणी के पूर्वराग का आधार उसका शास्त्राध्ययन बतलाया है अनेक ग्रथो और पुराणो में वर्णित श्रीकृष्ण के सौंदर्य और महिमा विषयक सामग्री का पठन कर वह न केवल श्रीकृष्ण की ओर आकृष्ट होती है, बल्कि उन्हे पति रूप मे पाना चाहती है गुण श्रवण से प्रेरित होकर, इच्छित वर प्राप्त करने के लिये वह हरगौरी का व्रत रखती है. वह चाहती है कि श्रीकृष्ण से उसका प्रेम मजिष्ठा के रग की भाँति प्रगाढ बना रहे मजिष्ठा (मजीठ) का राजस्थानी समाज मे बडा सम्मान है. राजस्थानी महिलाये आज भी इसे अपने चूडे पर लगाती हैं उनका यह मानना है कि मजिष्ठा के रग की भाँति उनका पति प्रेम भी प्रगाढ बना रहे.

द्वारिका में ब्राह्मण के मुख से जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी के सौंदर्य और उसकी प्रगाढ भक्ति के बारे मे सुनते हैं तो वे इतने गदगद व रोमाचित हो जाते हैं कि पत्र तक नही पढ सकते और ब्राह्मण को ही सदेश वाचन के लिये लौटा देते है—

आणद लखण रोमाचित आसू,
वाचत गदगद कठ न वणइ ।
कागळ करि दीधउ करुणाकरि,
तिणि तिणि हि ज ब्राह्मण तणई ।।५७।।

जायसी के पद्मावत अथवा रीतिकालीन अन्य कवियो द्वारा वर्णित पूर्वअनुराग जहाँ ऊहात्मक अधिक हो गया है वहाँ वह मर्यादा की सीमाओ का उल्लघन भी कर गया है, लेकिन वेलिकार ने मर्यादा मे रह कर पूर्व राग के चित्र को बडा स्वाभाविक व सयत भाषा में निरूपित किया है

तीन दिन बीत गये हैं ब्राह्मण सदेश का उत्तर लेकर अभी तक द्वारिका से नहीं लौटा है और इधर शिशुपाल दल बल के साथ बारात लेकर आ पहुँचा है.

रुक्मिणी अत्यत चिंतित है भगवान तो भक्त की आर्त पुकार सुन कर तुरत दौडे आते है इस बार इतनी देर कैसे की ? चिंतातुर रुक्मिणी की प्रतीक्षा प्रतिक्षण बढती जाती है, फिर उन्माद की अवस्था तक नही पहुँचती—

रहिया हरि सही, जाणियउ रुक्मिणी,
कीध न इतरी ढील कई।
चिनातुर चिति इम चितवती,

और इतने मे शुभशुकुन रूप छीक हुई **'थई छींक तिम धीर थई'** रुक्मिणी का मुरझाया हुआ मुख-कमल खिल उठा और वह आश्वस्त हो जाती है.

ब्राह्मण को आते देख कर तो रुक्मिणी के हृदय मे उथल-पुथल मच गई. हृदय सागर मे भावोर्मियो की बाढ सी आ गई कृष्ण के समाचार जानने की तीव्र उत्कठा थी, पर गुरुजनो और सहेलियो के बीच अपना मुख खोले तो कैसे ? न रहा ही जा सकता था और न कहा ही रुक्मिणी के इस द्विधापूर्ण चित्त का कवि ने सुदर और मनोवैज्ञानिक चित्र अकित किया है—

चळपत्र थिउ दुज देखे चित्त,
सकति न रहइ न पूछि सकति ,
औ आवै जिम जिम आसन्नौ,
तिम तिम मुख धारणा तकति ।।७१।।

इसके पूर्व रुक्मिणी के हृदय मे 'अभिलाषा' का उदय होता है. वह अत्यन्त भयभीत और चिंतातुर थी. अपनी इस दुखपूर्ण अवस्था में वह रीतिकालीन नायिकाओ की भाँति प्रलाप न कर केवल अश्रु मिश्रित काजल से कृष्ण को पत्र लिख देती है, जो शका, विषाद, स्मृति आदि अनेक सचारी भावो से युक्त, आकुलता और विह्वलता से परिपूर्ण एक मार्मिक चित्र है. उसकी अधीरता का पता तो इसी से चलता है कि ब्राह्मण को सदेश देने के पश्चात् रुक्मिणी नही चाहती कि वह एक क्षण भी कुदनपुर में खोये—

म म करिसि ढील हवि हुये हेक मन
जाइ जादवा-इन्द्र जत्र ।

अपने प्रियतम कृष्ण-आगमन का समाचार सुन वह मन ही मन अति आनदित होती है. चाहती है कि ब्राह्मण पर त्रिलोक लुटा दूँ, पर लाज की बेडियाँ केवल नमस्कार भर करवा कर, रुक्मिणी के हृदयस्थ भावो को परोक्ष रूप मे प्रगट कर देती है—

बभण मिसि वदे, हेतु सु बीजउ.

विवाहोपरात प्रथम-रात्रि मिलन के प्रसग पर विरहातुर रुक्मिणी को एक अलग कक्ष मे बिठला कर, वेलिकार ने कृष्ण की आतुरता का जो सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है, वह अद्वितीय है कृष्ण को प्रत्येक क्षण दूभर लगता है वे सुसज्जित केलिगृह मे चहलकदमी कर रहे है कभी थोडेक क्षणो के लिये शय्या पर बैठ जाते है तो कभी शीघ्रता से द्वार तक पहुँच कर कानो से आहट लेने का प्रयत्न करते है—

पति अति आतुर त्रिया मुख पेखण

× × ×

अटत सेज-द्वार विचि आहुटि,

स्तुति दे हरि धरि समाम्रित ।

'गागर मे सागर भरयो' की उक्ति के अनुसार वेलिकार ने यद्यपि विप्रलभ शृगार का अत्यन्त सक्षिप्त वर्णन किया है पर यह सक्षेपण अनेक कवियो के विशद वर्णन से कही अधिक विलक्षण, सुदर तथा साकेतिक होते हुये भो पूर्ण है यह मार्मिकता कवि की अद्भुत क्षमता का द्योतक है, जिसमे सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावो की सुदर व्यजना हुई है.

संयोग श्रृंगार

इसके पूर्व हम कह आये हैं कि **'त्री वरणण पहिलौ कीजै, गू थिये जैणि सिगार ग्रंथ'** जैसी उक्ति से स्वभावत पाठको की प्रथम प्रतिक्रिया यही होगी कि वेलि का अगी रस शृगार ही है लबे समय से चली आरही परम्परा का निर्वाह भर करने के लिये **'त्री वरणण पहिलौ कीजै'** लिख कर कवि ने साहित्य दर्पणकार का अनुकरण किया है—**'आदौ वाच्य स्त्रिय राग· पुंस पश्चातदिङ्गितै.।'** नि सदेह शृगार के सयोग पक्ष का वर्णन वेलि मे उत्तम कोटि का हुआ है, फिर भी इसकी प्राणधारा भक्ति है कृष्ण साक्षात परमात्मा है रुक्मिणी भी लक्ष्मी का अवतार है. रुक्मिणी और कृष्ण का मिलन आत्मा का परमात्मा से मिलन है आत्मा और परमात्मा के मिलन पर ही स्वर्गीय सुख की प्राप्ति होती है

शृगार के आलम्बन पक्ष के नायक-नायिकाओ के लिये साहित्य-शास्त्राचार्यों ने कुछ आदर्श स्थापित किये हैं वे महान गुणो से युक्त होने चाहियें, पर इनके इन आदर्शो का पालन रीतिकाल मे कितना हुआ है, हम भली भाँति परिचित हैं कृष्ण और राधा सामान्य नायक-नायिकाओ की भाति नग्न रति क्रीडाओ के पात्र बने वास्तव मे रीतिकालीन कवियो के लिये ये नाम तो बहाना भर थे, जिनकी आड मे वे अपनी कुत्सित वृत्तियो का चित्रण कर सके.

वेलि मे वर्णित सयोग शृगार की रमणीयता के दर्शन हमे पॉच स्थलो पर होते है (१) रुक्मिणी का बाल-सौदर्य, (२) वयसधि, (३) यौवनावस्था का सौदर्य, (४) विवाह से पूर्व तथा (५) विवोहापरान्त (प्रथम मिलनादि).

(१) रुक्मिणी का बाल-सौदर्य

भीष्मक राजा की छठी सतान रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है वह अनिंद्य सुदरी है, जिसके दर्शन भर से शृगार रस का स्थायीभाव रति जागृत होता है बत्तीस लक्षणो से युक्त अष्टागवती यह नायिका अपने बाल्यकाल मे मानसरोवर मे क्रीडा करती हुई अति सुन्दर हस-शावक के समान शोभायमान है इतनी सुदर उपमा के पश्चात् भी ऐसा लगता है कि यह उपमा भी अपूर्ण है अतएव उसने तुरत दूसरी उपमा दी कि वह सुमेरु-गिरि पर उगी हुई दो पत्तो वाली कनक लता के समान है अपने बाल्यकाल मे ही जो इतनी लावण्यमयी है पूर्ण वयस्का होने पर उसका सौदर्य कितना अतुलनीय होगा, कल्पनातीत है समशील तथा समवयस्का सखियो के साथ राजप्रासाद के प्रागण मे खेलती हुई रुक्मिणी ऐसी लगती है मानो निरभ्र आकाश मे तारागणो के साथ चद्रमा शोभित हो—

राजति राजकुवरि राय अगणि,
उडयण वीरज अंबहरि ।

(२) वयसंधि ·

आयु की दृष्टि से मनुष्य की जो चार अवस्थाये मानी गई है, उनके बीच की तीन अवस्थाओ को वयसधि कहते है, पर साहित्यिक दृष्टि से वयसधि से तात्पर्य केवल कौमार्यं से यौवनावस्था मे प्रवेश करने की अवस्था से है रुक्मिणी सामान्य नारी नही है अतएव उसके अवयवो का विकास भी असामान्य है अन्य बालिकाएँ जितना एक वर्ष मे बढती है, उतनी वह एक मास मे बढ जाती है—

अनि वरिस वधै ताइ मास वधै,
ए वधै मास ताई पहर वधति ।

इस प्रकार वह तुरत यौवनावस्था मे प्रवेश कर लेती है. शैशवास्था मे यौवन सुषुप्त रहा है. उसकी जागृति के कोई चिन्ह प्रकट नही होते और वयसधि तो मानो स्वप्नावस्था के समान है जहाँ अर्द्ध तद्रा और अर्द्ध जागृति की अवस्था रहती है—

सइसव तनि सुसुपति, जोवण न जागृति.
वेस सधि सुहिणा सु वरि ।।

यौवनागम के साथ ही रुक्मिणी के मुख पर अरुणोदय जैसी कांति छा गई थी तथा कुच जागृत हो उठे थे. कवि ने इस अवस्था की अनोखी पर पावन कल्पना

कर यह प्रमाणित कर दिया है कि यौवनागो का वर्णन करते हुये भी यदि कृतिकार सयम से काम ले तो अश्लीलता से किनारा काटा जा सकता है अकुरित-यौवना के कुच ऐसे जाग उठे है जैसे सूर्योदय के समय सध्यावदन करने के लिये ऋषिगण जाग उठे हो—

पेखे किरि जागिया पयोहर,
सजा वदण रिखेसर ।।

रुक्मिणी अब शनै शनै यौवन मे पदार्पण करती जारही है उसके हृदय मे शाति नही है और उसके विकसित होते हुए उरोज और नितम्बादि उसे एक विचित्र उलझन मे डाल देते है. कहाँ तो वह समय था जब वह अपने गुरुजनो के सम्मुख निरवस्त्र होकर भी नि:सकोच घूमा करती थी और कहाँ आज वस्त्राभूषणो से आवेष्टित होकर भी उसे अपने विकासोन्मुख कामकेद्रो (अगो) को छिपाने मे लज्जा हो रही है यही ही नही उसे तो लज्जा करते हुये भी लज्जा हो रही है :—

आगळि पितमात रमति आगणि,
काम विराम छिपाडण काज ।
लाजवती-अगि अेह लाज विधि,
लाज करती आवइ लाज ।।१८।।

स्वाभावोक्ति, अनुप्रास और विभावना अलकारो द्वारा कवि ने क्या ही सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है !

वेलिकार ने यौवन रूपी बसत का नवीन उपमाओ द्वारा अनूठा वर्णन किया है. यौवन के कारण रुक्मिणी के उन्नत अवयव ही पुष्पित वन है उसके नेत्र कमल सदृश हैं और उसका सुहावना स्वर पिक स्वर जैसा है पलके भ्रमर है और उसका सुन्दर अग ही मलयाचल है तथा उसका श्वासोच्छ्वास ही दाक्षिणात्य पवन है जो शीतल, मद और सुगधित है —

दळ फूलि विमळ वण, नयन कमल दळ,
कोकिल कठ सुहाइ सर ।
पापणि-पख सवारि नवी परि,
भूहारे भ्रमिया भ्रमर ।।२०।।

(३) नखशिख वर्णन

अष्टागवती रुक्मिणी का शृ गारपूर्ण वर्णन होते हुये भी वह निष्कलंक है. सच तो यह है कि कवि को केवल बाह्य सौदर्य ही अभीष्ट नही है, क्योकि वह तो क्षणभगुर व माया है तथा जो भोग वासना से पूर्ण है, जिसमे तृप्ति नही होती, पर उसका आभास मात्र होता है रुक्मिणी तो लक्ष्मी का अवतार है अतएव देवी शक्ति है.

उसके अभ्यातर सौदर्य को प्रकट करना ही कवि का उद्देश्य रहा है, जिसमे इद्रियो की नही, पर आत्मा की परितृप्ति निहित है.

साहित्य मे नायिकाओ के नख-शिख वर्णन की दीर्घ परम्परा है. वेलिकार को भी वेलि मे दो अनेक स्थल मिले हैं, जहाँ उसने जम कर, रुक्मिणी के नख-शिख वणन नही, पर शिख-नख का वर्णन किया है ऐसा कर, उसने किसी परम्परा को भग नही कर, देव-सौदर्य-वर्णन-परम्परा का पालन किया है, जिसमे शिखा से प्रारभ कर पाँवो के नखो तक आया जाता है.

अठारह पुराण, चौसठ कलाओ और चौदह विद्याओ मे पारगत रुक्मिणी को भली-भाँति यह समझ मे आगया कि सभी विद्याओ का मूल तो अनत भगवान कृष्ण ही है और इसीलिये उनके अपूर्व गुणो का श्रवण कर, उसका हृदय कृष्णानुरक्त हुआ—

साभळि अनुराग थयो मन श्यामा.

कृष्ण-आगमन के शुभ समाचार को सुन, अत्यत हर्षित हो, पहिले से सिखलाई हुई एक सखी से आज्ञा मगवाकर प्रियतम मिलन के मिस रुक्मिणी अम्बा माता की पूजा करने चली. रवाना होने के पूर्व उसने सर्वोत्तम शृगार किया गुलाब जल से स्नान करने के पश्चात् उसके घने व लबे काले केशो से जल-कण ऐसे चू रहे थे जैसे किसी माला के काले रेशमी डोरे के टूट जाने पर मोती गिर रहे हो—

कुमकुमै मजण करि धौत वसत्र धरि,
चिहुरे जळ लागो चुवण ।
छीणै जाणि छछोहा छूटा,
गुण मोती मखतूल गुण ॥८१॥

स्नानातर अपने घने, लबे काले केशो को अपनी गौर वर्ण स्निग्ध भुजाओ पर सुकाने का उपक्रम करती हुई रुक्मिणी की कल्पना कर, कवि की वाचा फूट पडी केशराशि को सुकाती हुई रुक्मिणी ऐसी लग रही थी जैसे मन रूपी मृग को फँसाने के लिये कामदेव रूपी अहेरी ने अपना केश जाल फैला रखा हो सादृश्य का ऐसा उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है—

लागी बिहु करे ध्रपणै लीधै,
केस पास मुगता करण ।
मन मृग चै कारणै मदन ची
वागुरि जाणे विसतरण ॥८२॥

सखियो ने उसे शृगार चौकी पर बिठलाकर, अनूठा शृगार करना प्रारम्भ किया. पुष्प और मोती युक्त वेणी गूँथी गई, माग भरी गई, पद्माक्षो मे काजल डाला

गया और उसके पश्चात् रुक्मिणी ने स्वय अपने हाथो से अर्द्धचद्राकार तिलक बनाया सखियो ने माथे मे शीशफूल, कानो मे कर्णफूल तथा गले मे नाना प्रकार के रत्न जडित हार पहिनाये कचुकी धारण करने पर तो कवि को ऐसा लगा कि मानो हाथी के कुभस्थल को अबेरी से ढक दिया गया हो अथवा कामदेव से युद्ध करने के लिये यह शभु का कवच है या फिर ऐसा लगता था मानो भगवान के स्वागतार्थ तम्बू खडा कर उसकी कसो को खीच दिया गया हो—

इभ कभ अधारी कुच सु कचुकी,
कवच सभु काम क कळह ।
मनु हरि आगमि, मडे मडप,
बधण दीध की वारगह ।।६०।।

गौर वर्णी भुजाओ पर मणियुक्त फुदने वाले काले रेशमी धागो से बँधे रत्नजडित भुजबध, चदन वृक्ष पर लटकते हुए मणिधरो के समान सुशोभित थे. अन्य बहुमूल्य अलकारो से अलकृत और अमूल्य वस्त्रों को धारण की हुई रुक्मिणी की देह की तुलना वेलि से करता हुआ कवि कोमल कल्पना करता है कि रुक्मिणी के अगो पर शोभित अलकार पुष्प है, उसके पयोधर फलो के सदृश है और उसके वस्त्र नव प्रस्फुटित कोमल पत्ते है दूसरी बार की गई वेलि और नारी देह की तुलना क्या हमे ग्र थ के शीर्षक की ओर दिशा निर्देश नही कर रही है ?

क्षीण कटि मे करधनी धारण करवाई गई जो ऐसी सुशोभित हुई मानो भाग्योदय रूपी सब ग्रह सिहराशि पर एकत्रित हो गये हो पैरो मे स्वर्ण निर्मित घुघरूदार नूपुरो की शोभा का वर्णन तो बडा ही मौलिक और अनूठा है वे ऐसे लग रहे थे मानो चरण-कमल के मकरन्द की रक्षा करने के हेतु पोत गणवेश धारण किये हुये पहिरेदार है रुक्मिणी के नाक के आभूषण नथ मे लसित मोती की उपमा देते हुये कवि को पुन भगवद् गुणो का स्मरण हो आता है और एक रमणीय कल्पना करते हुये कहते है कि जिस प्रकार शुकदेव मुनि के मुख मे भागवत शोभित है, उसी भाँति नासिका रूपी शुक, मुख से भागवत का पठन करता है. सुदर श्लिष्टार्थ व्यजना है.

सोलह शृगार से सज्जित हो रुक्मिणी ने मुख मे ताबूल धारण किया, जो लाल कमल सदृश मुख मे मकरन्द के समान शोभित था. इस प्रकार हसगामिनी रुक्मिणी की नीलाम्बर से आवेष्टित देह और उसमे से झिलमिलाते हुये विविध रत्नो की काति ऐसी लग रही थी मानो साक्षात कामदेव ने हर्षित हो घर-घर दीपमालायें जलाई है—

अन्तर नीलम्बर अवल आभरण,
अगि अगि नग नग उदित ।

जाणै सदनि सदनि सजोई,
मदन दीपमाळा मुदित ।।१०१।।

नख-शिख का इतना भावपूर्ण व रम्य वर्णन करने के पश्चात् भी कवि को इसकी पूर्णता मे सदेह है, क्योकि साक्षात लक्ष्मी के सौदर्य को अकित करने की क्षमता किसमे है ? पालकी की ओर अग्रसर गजगामिनी रुक्मिणी के लावण्य के वर्णन मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये कवि कहता है—

चकडोळ लगै इणि भाँति सु चाली,
मति तै वाखाणण न मूं।

धूप, दीप, कुकुम, नैवेद्य, कर्पूर, पान, गुलाबजल आदि से युक्त सखियो के बीच रुक्मिणी ऐसी लगती है मानो मूर्तिमान शील लज्जा से घिरा हुआ है 'शील पर भूषणम्'— नारी का श्रेष्ठतम आदर्श तो शील ही है. लज्जा तो शील का एक बाह्य रूप है—

सखी समूह माहि इम स्यामा,
सील आवरित लाज सू ।।१०३।।

सौदर्य मे अपूर्व सम्मोहक शक्ति है रुक्मिणी अपने इसी सौदर्य के कारण कुछ क्षणो के लिये सारे सैन्य को मूर्छित कर सकी कामदेव के पाँचो बाण (आकर्षण, वशीकरण, उन्मादन द्रावण एव शोषण) इसमे सहायक बने रुक्मिणी की चितवन, हास्य, लास्य, चाल और सकोच आदि के कारण उनको वेग मिला, जिसमे सैनिको के मन पगु हो गये और वे प्रस्तर-मूर्ति की भाँति हो गये —

मन पगु थियौ, सहु सेन मूरछित,
तह नह रही सपेखतै ।
किरी निपायौ तदि 'नकुटिए,
मठ पूतळी पाखाणमै ।।११०।।

इन सारे उदाहरणो मे स्थायीभाव रति का आश्रय है रुक्मिणी तथा इसके आलम्बन हैं श्रीकृष्ण उपर्युक्त नख-शिख वर्णन, जिसमे कामाधता का लवलेश भी नही है और जो मर्यादा पूर्ण तथा भक्ति-उन्मुख है, उद्दीपन है, जो रस की उत्कर्षता मे सहायक होता है

(४) मिलन

'रव सभळी कि दीठि रथ'—आवाज से भी तेज गति से चलने वाले आकाशगामी रथ मे भगवान श्रीकृष्ण का मदिर के प्रागण मे पदार्पण हुआ उन्होने रुक्मिणी को अपने हाथ का सहारा देकर रथ मे बिठलाया और द्वारिका के लिये

प्रस्थान किया तुमुल युद्ध के पश्चात्, शत्रु सेना को पराजित कर वे द्वारिका पधारे समस्त द्वारिका उनके स्वागत मे आँखे बिछाये खडी है स्थान-स्थान पर स्वागत द्वार बनाये गये और सारा राजमार्ग अबीर-गुलालादि से आच्छादित हो गया स्त्रियाँ मगल-गीत गारही हैं और पुष्प-वर्षा हो रही है—

मुकरमै प्रोळि, प्रोळिमै मारग,
मारग सुरग अबीरमई ।

× × ×

सकुसळ सबळ सदळ मिरि सामळ,
पुहप बूद लागी पडण ।

रुक्मिणी-कृष्ण का पाणिग्रहण तो पहले ही हो चुका था अब तो मात्र औपचारिक विधि शेष थी. विवाह बडे ठाटबाट से सम्पन्न हुआ और तदोपरात पति-पत्नी को केलि-गृह की ओर ले जाया गया केलिगृह मे मिलन के पूर्व केवल एक छद मे सध्या-समय के क्रियाकलापो का स्वाभाविक वर्णन कर, रति क्रीडा के लिये कवि ने उपयुक्त वातावरण का सृजन कर दिया है—

सकुडित समसमा सध्या समयै,
रति वछिति रुषमणि रमणि ।
पथिक-वधू द्रिठि पख पखियाँ,
कमळ-पत्र सूरिजि-किरणि ।।१६२।।

सारे दिन के घोर परिश्रम के बाद, प्रकृति भी कर्मक्षेत्र से हट कर विश्राम करना चाहती है उसके क्रियाकलापो मे एक स्वाभाविक शिथिलता के साथ साथ नैसर्गिक सकोच उत्पन्न होता है. जिस प्रकार दिन भर अपने परदेशी प्रियतम की राह देखते देखते सध्या समय के अधकार की परिव्याप्ति के साथ, विरहातुर पत्नी की दृष्टि मे भी सकोच आजाता है, जिस प्रकार अपने घोसले की ओर अग्रसर पक्षी सध्याकालीन अधेरे के कारण विवश हो बीच मे ही किसी वृक्ष पर बैठ जाता है, जिस प्रकार अपनी सुवास फैलाता हुआ दिनभर का प्रफुल्लित कमल सध्या समय अपनी कोमल पखुडियो का सकोचन कर लेता है तथा जिस प्रकार दिनकर की प्रखर किरणे सध्या-समय अधेरे से आच्छादित हो, निस्तेज व सकुच जाती है, ठीक उसी प्रकार रति क्रीडा इच्छित रुक्मिणी के हृदय मे भी एक स्वाभाविक सकोच उत्पन्न होता है निश्चय ही वेलिकार ने प्रकृति के सकोचन की प्रक्रिया का रुक्मिणी के मनस्थित सकोच की तुलना से सुदर मनोवैज्ञानिक वर्णन किया है

दूसरी ओर कृष्ण जन्मजन्मातर की अपनी पत्नी रुक्मिणी का मुख देखने को बड़े उत्कठित हैं उनकी हृदयस्थित रति विकसित हो रही है, ठीक उसी प्रकार, जिस

प्रकार रात्रि के कारण चंद्रमा की किरणे विकसित हो जाती है, परकिया नायिकाएँ अपने प्रेमियो से मिलने के लिये अधीर हो जाती है तथा निशाचरगण अपने आहार (प्राप्तव्य) को प्राप्त करने के लिये अपने अपने स्थानो से निकल पडते है. एकात मे बैठे कृष्ण प्रतीक्षा कर रहे है, दीपक जल उठे है अब प्रियतमा का और विरह असह्य है. घुघरू युक्त पैरो मे पडे नूपुरो की ध्वनि सुनने के लिए उनके कर्ण लालायित हैं नेत्र द्वार की ओर लगे है और स्वय द्वार और शय्या के बीच घूम रहे है दरवाजे पर कान देते है और निराश होकर लौट कर आते हैं मिलनातुर कृष्ण की इस व्यग्र दशा का मार्मिक वर्णन कितने कवि कर सके है ?

अटत सेज द्वार बिचि आहुटि,
स्रुति दे हरि घरि समाश्रित ।

पायलो की झकार ने बधाईदारो की भाँति हसगामिनी रुक्मिणी के आने का सदेश दिया. कृष्ण की मिलन-इच्छा तीव्रतर बन गई. उधर रुक्मिणी की मनोदशा दर्शनीय है प्रियतम से मिलने को आतुर, यौवन-मद को छलकाती हुई, पर लज्जा रूपी लोह-लगरो से बधी पग-पग पर रुकती हुई मुग्धा की भाँति आगे बढती है और इस प्रकार कृष्ण की पियामिलन की इच्छा को तीव्रतम बनाती हुई अत मे सखियो के द्वारा वह केलिगृह की देहली तक लायी गयी कृष्ण का मुख-कमल खिल उठा उनका रोम रोम पुलकित हो उठा उन्होने गोद मे लेकर रुक्मिण को शय्या पर आसीन करवाया और चिरतृप्त कृष्ण प्रिया का मुख इस प्रकार देखने लगे जैसे रक धन को. रुक्मिणी तिरछी नजर कर कभी श्रीकृष्ण की ओर देखती तो कभी लज्जावश नतशिर हो जाती और इस प्रकार घूघट मे से अपनी भ्रू-भगिमाओ द्वारा कृष्ण के साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रही थी

अत मे दपति के नेत्र, मुख की चेष्टाओ और हृदयगत भावो को समझ कर, सब सखियाँ आँखो-आँखो मे हँसती हुई शयनागार से निकल गईं. रीतिकालीन अन्य कवियो की भाँति, लज्जा को निर्वस्त्र न कर, कवि ने मौन रह कर, औचित्यादर्श स्थापित कर सब कुछ कह दिया है, जो कवि की अपूर्व शब्द-साधना के साथ-साथ मनोविज्ञान की गजब की पकड का द्योतक है —

वर नारि नेत्र निज वदन विलासा,
जाणियौ अतहकरण जई ।
हसि हसि भ्रूहे, हेक हेक हुई,
गृह बाहरि, सहचरि गई ।।१७२।।

'बिहारी सतसई' मे इसी भाव को चित्रित करने के लिये बिहारी ने जो खुल कर वर्णन किया है, उसमे वह रसानद कहाँ ?—

पति रति की बतिया कही, सखी लखी मुसकाई,
कैं कैं सबैं टलाटली, अली चली सुख पाई ।।

तत्पश्चात् रतिक्रीडा प्रारभ हुई इसका रसानद तो स्वय भोक्ता ही कर सकता है अन्य पुरुष द्वारा इस एकान्तिक क्रीडा का वर्णन करना कैसे सभव है ? जायसी ने अपने रहस्यवादी और सूफी काव्यग्रथ पद्मावत मे जब रतिक्रीडा का खुल कर वर्णन किया है तो बिचारे रीतिकालीन कवियो का क्या दोष, जिनका जीवन ही स्वच्छद शृगार पर आधारित था उन्होने तो विपरीत रति तक का नग्न वर्णन कर दिया, जबकि वेलिकार ने मर्यादा रूपी ढाल से ढँक कर तथा उसे 'अदीठ' और 'अश्रुत' कह कर सरस व्यजना के साथ टाल दिया—

एकान्त उचित क्रीडा चौ आरभ,
दीठौ सु न किहि देव दुजि ।
अदीठ अश्रुत किम कहणो आवै,
सुख तै जाणणहार सुजि ।।१७३।।

'ढोला मारू रा दूहा' मे भी इस एकातिक क्रीडा का वर्णन हुआ है, पर वहाँ भी इसके रचयिता ने चदनवृक्ष और नागर वेल का उदाहरण देकर सात्विक भावो का सचयन कर दिया है—

ढोलउ मारू एकठा करहि कतूहळ केलि ।
जाणै चदन रूखडई विळगी नागर वेलि ।।५५५।।

सुरतान्त रुक्मिणी शय्या पर ऐसी पडी हुई है, जैसे क्रीडा करते हुये गजेन्द्र द्वारा म्लान दशा को प्राप्त कमलिनी सरोवर मे पडी हो उसके ललाट पर प्रस्वेद कण है उसका चित्त व्याकुल है मुख पर पीलापन है तथा नेत्रो मे लज्जा क्या ही हृदयाकर्षक चित्र है—

गजेन्द्र क्रीडता सु विगलित गति,
नीरासइ परि कमलिनी ।

× × ×

श्री वदन पीतता, चित्त व्याकुळता,
हिये धगधगी खेद हुई ।

श्रीकृष्ण पवन के मिस शयनकक्ष से बाहर चले गये हैं और शिथिलावस्था मे शय्या पर पडी रुक्मिणी को उसकी सखियो ने आकर सभाला उस समय रुक्मिणी ऐसी शोभित होरही थी मानो पुष्पित वेलि रसमत्त भौंरो के भार से झुक कर पृथ्वी पर गिर पडी हो और जिस प्रकार किसी का आधार पाकर, बल खाती हुई बेल पुन' ऊपर को उठने लगती है, ठीक इसी प्रकार सखियो का सहारा पाकर

लज्जा और प्रीति के भार से दबी हुई रुक्मिणी (जिसकी नागिन सी वेणी और करधनी खुल गई थी और कचुकी के बधन छूट गये थे) पुन खडी की गई और श्रीकृष्ण के पास पहुचाई गई .—

तिणि तालि सखी गळि श्यामा तेहि,
मिळी भमर भाग जु महि ।
वळि ऊभी थई घणा घाति वळ,
लता केळि अवलब लहि ।।१७७।।

× × ×

पुनरपि पधरावी कन्है प्राणपति,
सहित लाज भय प्रीति सा ।

रत्यान्त के इस विशद वर्णन के पश्चात् वेलिकार पाँच छदो मे प्रभात वर्णन करता है सूर्योदय अनेको का मिलन और अनेको का वियोग करवा देता है उसकी काति से अनेक म्लान होकर सकुच जाते है तो अनेक कमलवत् खिल जाते है. रतिक्रीडा के इस वर्णन मे कवि ने कही भी मर्यादा का अतिक्रमण नही होने दिया है विपरीत इसके वह एक आह्लाददायक स्थिति का सृजन कर सका है, जो कवि के काव्यकौशल्य का अन्यतम दृष्टान्त है लज्जा, उत्कठा, प्रस्वेद, रोमाच, स्पर्श, अवलोकनादि की जो मार्मिक अभिव्यजना इस काव्य के द्वारा प्रकट हुई है, वह अश्लीलता से परे असदिग्ध रूप मे उत्तमकोटि की है

इस प्रकार हम देखते है कि विभिन्न उद्दीपनो (सुगधि, एकान्त स्थल, पुष्प), अनुभावो और सचारीभावो से युक्त वेलि का यह सयोग शृगार वर्णन निश्चय ही सरस, सरल व सुरुचिपूर्ण बन पडा है जो वास्तव मे अद्वितीय है इस प्रेम वर्णन मे कवि अपनी सास्कृतिक परम्पराओ से कट कर नही चला है. विवाहादि मागलिक उत्सवो पर राजस्थान मे प्रचलित रीति रिवाजो के माध्यम से सयोगशृगार को उत्कृष्ट बनाने मे भरपूर सहायता ली है वास्तव मे वेलि मे वर्णित सयोगशृगार अपने आप मे साध्य न होकर, एक भव्य उद्देश्य के लिये साधन भर है, जो पृथ्वीराज जैसे कुशल चितेरे के हाथो दमक उठा है.

———

वेलि में प्रकृति चित्रण

चिरतनकाल से मानव और प्रकृति का साहचर्य रहा है प्रकृति से उसका यह सबध उसके विकास के साथ घनिष्ट होता गया मनुष्य ने प्रकृति की क्रोड मे सुख-दुख के झोले सहे है अवसाद के क्षणो मे मनुष्य ओस-बिन्दुओ के रूप मे रोया है तो हर्षोल्लास के पलो मे वे ही ओसकण उसके मुखरित हास्य के छिटके मोती रहे है पपीहे की पिउ-पिउ की पुकार सयोगावस्था मे जहाँ मानव-हृदय मे आनन्दोर्मियाँ उत्पन्न करती है, वही मधुर आवाज विरहातुर प्रेमी प्रेमिकाओ के लिये स्फुलिंग उत्पन्न कर उनके हृदय को विर्दीण कर देती है सत्य तो यह है कि मनुष्य प्रकृति के माध्यम से अपने सुख-दुख और हर्ष-विषाद को सदैव प्रतिबिम्बित करता रहा है उसकी इस अभिव्यक्ति का साधन साहित्य रहा है और इसीलिये प्रकृति और साहित्य दोनो के साथ मनुष्य का चिरतन सायुज्य रहा है

साहित्य मे प्रकृति वर्णन आठ भिन्न-भिन्न रूपो मे किया जाता है (१) आलम्बन, (२) उद्दीपन, (३) अलकार, (४) परमतत्व का आभास, (५) उपदेश और नीति के माध्यम से, (६) प्रतीक, (७) मानवीकरण और (८) पृष्ठभूमि नथा वातावरण की सृष्टि के लिये सभी कवि अपने अपने विषय और रुचि के अनुकूल, कम-अधिक मात्रा मे प्रकृति के अपरिमित सौदर्य मे निमज्जन कर, उसके रहस्यो को अनावरित करते हुये अपनी कृति को उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं, जिससे वे सहृदयी पाठको के मनो को प्रभावित कर, इच्छित बिंब उत्पन्न कर सकते है मनुष्य यही तक न रुका उसने प्रकृति के जड जगत का तो अपनी इच्छानुसार उपयोग किया ही, पर उसके आश्रित पशु-पक्षी भी उसके आदेशानुसार व्यवहार करने लगे रहस्यवादी कवियो ने तो प्रकृति के नाना रूपो मे अव्यक्त परमात्मा के दर्शन कर उससे जीवात्मा का रागात्मक सबध भी जोडा है

प्रमुख रूप से वेलि मे प्रकृति-चित्रण निम्न रूपो मे पाया जाता है—

१) आलम्बन रूप मे,
२) उद्दीपन रूप मे,
३) अलकार विधान के रूप मे,
४) परमतत्व के आभास के रूप मे,
५) पृष्ठभूमि और वातावरण की सृष्टि के लिये

शब्द-सारथी और बहुज्ञ पृथ्वीराज राठौड कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' मे विवाहोपरान्त जो ऋतुवर्णन अकित किया गया है, वह श्रेष्ठ होते हुये भी ऊपर ऊपर से अनावश्यक-सा लगता है, क्योकि कथा के उत्कर्ष मे अथवा चरित्र के उन्नयन मे उससे किसी प्रकार की सहायता नही मिलती और ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने प्रकृति का स्वतत्र चित्रण कर, साहित्य-शास्त्र परिपाटी का निर्वाह भर किया है. महाकाव्य की दृष्टि से प्रकृति-चित्रण काव्य का अनिवार्य अग हैं वेलि एक महाकाव्य है, इसलिये कवि का यह ऋतुवर्णन काव्य की मूलधारा मे असबधित होते हुये भी, इसका अपना पारम्परिक महत्व व स्थान है समग्र ऋतुवर्णन को स्वतत्र मान लेने के पश्चात् भी वह भावोद्दीपन मे सहायक हुआ है उसकी मौलिकता और सर्वोत्तमता असदिग्ध है.

रुक्मिणी के रूप वर्णन (बाल और युवा) मे प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त, प्रभात वर्णन, युद्ध-वर्षा-रूपक और ऋतुवर्णन आदि वे स्थल है, जहाँ कवि ने जम कर प्रकृति के भावपूर्ण चित्रो को अकित कर साफल्य को प्राप्त किया है

आलम्बन के रूप में

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसके अन्तर्गत दो प्रणालियाँ बतलाई है—(१) बिम्ब ग्रहण प्रणाली तथा (२) नाम परिगणन प्रणाली वेलि मे युद्ध-वर्षा-रूपक तथा अन्यत्र आलम्बन के नाम परिगणन प्रणाली के एक से एक सुदर उदाहरण भरे पडे है. यहाँ कतिपय दृष्टान्त दृष्टव्य है—

हथनाळि हवाई कुहुक बाण हुबि,
होइ वीर-हक गय-गहण ।

(हाथियो पर रख कर चलाई जाने वाली तोपे, हवाई बाण और कुहुक बाणो के आघात होने लगे तथा आकाश को गुजा देने वाला वीरो का शोर हुआ)

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।

(भाले रूपी सूर्य किरण युद्ध मे सतप्त होकर चमकने लगी बाण रूपी वायु चलनी बद हो गई)

कणियर तरु करणि सेवत्री कूजा,
जाती सोवन गुलाल जत्र ।
किरि परिवार सकल पहिरायउ,
वरण वरण विध दे वसत्र ।।२३७।।

(कनेर, करना, सेवती, कूजा, चमेली, सोनचपा, गुल्लाला आदि विभिन्न वृक्षादि फूलो से लद गये. ऐसा मालूम पडता था मानो बसत के जन्म पर वनस्पति

ने अपने सारे परिवार के लोगो को निमत्रित किया है और उन्हे रग बिरगे परिधान पहिना दिये है) यहाँ कवि का वनस्पति ज्ञान दर्शनीय है. वस्तु परिगणानात्मक प्रकृति चित्रण का एक सुदर उद्धरण 'ढोला मारू रा दूहा' से तुलना के लिये प्रस्तुत है, जिसमे देशगत स्वाभाविकता का सजीव चित्रण है—

जिण भुँइ पन्नग पीयणा, कयर-कँटाळा रूख।
आके फोगे छाँहडी, हूँछा भाजइ भूख ।।

विम्ब ग्रहण के रूप मे

आलम्बन की चित्रात्मक प्रणाली के अन्तर्गत कवि ने वर्षा ऋतु मे बादलो का उमड-घमड कर घिर आना, चपला का चमकना, मोरो और पपीहो का बोलना, शरद ऋतु मे सरोवरो मे कमल-दलो का खिलना, दिनो का सकुचित (छोटा) होना, नदियो का घटना, शिशिर ऋतु के अत मे युवा-युवतियो का फाग खेलना, बसत ऋतु मे कोयल का कूजना, पुष्पो का खिलना, सुगधित मलय पवन का बहना आदि अनेको दृश्य, पाठको के हृदय-पटल पर सभी ऋतुओ के चित्र अकित करने मे पूर्ण समर्थ है. समूचा युद्ध-वर्षा-रूपक कवि की उर्वर कल्पना शक्ति, शब्दो का चयन और उनका समर्थ प्रयोग तथा युद्ध की स्वानुभूति का अन्यतम चित्र है, जिसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है.

काळी करि काठळि, ऊजळ कोरण,
धारे श्रावण धरहरिया ।
गळि चालिया दिसोदिसि जळ ग्रभ,
थभि न विरहिण नयण थिया ।।१९५।।

(सावन के बादल, उमडी हुई काली-पीली घटा, जिसके आगे के भागो का किनारा उज्ज्वल सफेद है, धाराओ के साथ बरस पडे वे निरन्तर बरसते ही जाते है रुकते ही नही है, मानो विरहिनी के नेत्रो से अविरल आँसू गिर रहे हो) 'काठळि' और 'कोरण' राजस्थानी के देशज शब्द हैं, जिनका अत्युत्तम प्रयोग कवि ने किया है

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।
धडि धडि धबकि धार धारूजळ,
सिहरि सिहरि समखै सिळाउ ।।११९।।

अनुप्रास की सुदरतम छटा के साथ सारे वर्ण्य प्रसग का ध्वनि चित्र खडा कर दिया है. कवि स्वय वीर योद्धा था अस्त्रशस्त्र सचालन मे निष्णात था और तभी स्वानुभूति पर आधारित युद्ध का एक सजीव और सशक्त चित्र प्रस्तुत कर सका.

एक एक कर सभी ऋतुये आईं और चली गईं अब बसत का आगमन हुआ है. सुगध, पवन रूपी रथ पर चढ कर बसत के शुभागमन का समाचार देती हुई सर्वत्र प्रसरित हो जाती है. कवि ने क्या ही भव्य चित्र प्रस्तुत किया है—

वन नयरि घराघरि तरि तरि सरवरि,
पुरुख नारि नासिका पथि ।
वसत जनमियौ देण वधाई,
रमै वास चढि पवन रथि ।।२३२।।

ऋतुओ का राजा वसत अपना दरबार लगाये बैठा है आज महफिल है, जिसमे वन ही मडप है, निर्झर ही मृदग है, कामदेव ही उत्सव का नायक है, कोकिला ही गायक है, मोर नर्तक है तथा पक्षी ही दर्शक है—

आगळि रितुराय मडियौ अवसर,
मडप वन नीझरण मृदग ।
पचबाण-नायक गायक पिक,
वसुह रग मेळगर विहग ।।२४३।।

अकबर के दरबार मे सम्मानित सेनापति के रूप मे उसने कई महफिलो मे भाग लिया होगा और अपने अधीनस्थ उपसेनापतियो अथवा ठाकुरो के साथ स्वय कितनी ही महफिलो का आयोजन किया होगा. कवि ने सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति के द्वारा एक सरस चित्र खीच दिया है

उद्दीपन के रूप मे

वेलि काव्य मे प्रकृति-चित्रण भावोद्दीपन रूप मे भी हुआ है. इस भावोद्दीपन के कार्य मे प्रकृति का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है—(१) साधर्म्यमूलक और (२) वैधर्म्यमूलक. वैसे वेलि मे अकित ऋतु वर्णन, काव्य का अग होते हुये भी स्वतत्र होने के कारण, परोक्ष रूप से ही सभोग और वियोग—दोनो शृगार पक्षो के भावोद्दीपन मे सहायक हुआ है महाकाव्य में ऋतु वर्णन होना ही चाहिये—इस परम्परा का पालन करते हुए भी जैसा कि हम ऊपर कह आये है यह वर्णन मौलिक व अपूर्व है. सभोग शृगार के पश्चात् ऋतु वर्णन की एक प्रथा रही है. कवि ने ग्रीष्म से प्रारम्भ कर बसत तक—इस क्रम से ऋतु वर्णन किया है. ऋतुराज बसत की महफिल का वर्णन अलग से किया है कृष्ण और रुक्मिणी प्रत्येक ऋतु का प्रसन्नमन भोग करते है और आनन्द प्राप्त करते है—

नैरति प्रसरि निरधण गिरि नीझर,
धणी भजै धण पयोधर
झौळे वाइ किया तरु झखर,
लवळी दहन कि लू लहर ।।१६१।।

नैऋत्य से चल कर लू ने वृक्षो को झखाड और लताओ को जला दिया है. ऐसे समय पति पत्नियो के कुचो का सेवन करते हैं और पत्नी विहीन पुरुष शीतलता

के लिये झग्नो की शरण लेते हैं, पर श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ कस्तुरी की गार और कर्पूर की इटो से बने प्रासाद मे रुक्मिणीजी के कुचो का सेवन करते हुए नित्य नए नए प्रकार से क्रीडा करते है.

एक ही टेमू का पुष्प रतिक्रीडा की इच्छा रखती हुई सयोगिनी के लिये सुखप्रद और क्षीणतन वियोगिनी के लिये कष्टकारक है—

कुसुमित कुसुमायुध ओटि केळि कृत,
तिहि देखे थिउ खीण तन ।
कत सजोगणि किसुख कहिया,
विरहणि कहे पलास वन ।।२५६।।

इसी प्रकार, वासती पवन को लेकर भी दोनो पक्षो मे विवाद है वियोगिनी कहती है कि यह सर्प का भक्ष्य है तो सयोगिनी के लिये यह शीतल और सुगधित मलयपवन है—

गुण गध ग्रहित गिळि गरळ ऊगळित
पवण वाद ए उभय पख ।
श्रीखड सैळ सयोग सयोगिणि,
भणि विरहिणी भुयग भख ।।२६४।।

अलंकार विधान में

आकृति, भाव, गुण और धर्म की समानता को प्रकृति के उपमानो द्वारा मार्मिक रूप से व्यजित करने के लिए कविगण अलकार-विधान मे प्रकृति का उपयोग करते है यौवन रूपी वसत के आगमन के कारण शरीर के विभिन्न अवयवो का तो रूप ही बदल गया है—

नितम्बणी जघ सु करभ निरूपम,
रभ खभ विपरीत रुख ।

और—

धर धर शृग सधर सुपीन पयोधर,
घणी खीण कटि अति सुघट ।
पदमणि नाभि प्रियाग तणी परि,
त्रिवळि त्रिवेणी स्रोणि तट ।।२५।।

रुक्मिणी के नाभि की उपमा प्रयाग से तथा पेट पर पडने वाली त्रिवली के उपमान के रूप मे त्रिवेणी तथा त्रिवेणी के तटो के रूप मे नितबो की उपमा सर्वथा मौलिक व अनूठी है.

रुक्मिणी के नव पल्लवो जैसे कोमल चरणो पर नखो की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने आठ आठ उपमानो से काव्य-सौदर्य की अपूर्व वृद्धि की है नख ऐसे भले प्रतीत होते थे मानो कमल की पखुडियो पर निर्मल जल-बिन्दु हो अथवा तेज हो, मोती हो, रत्न हो, तारे हो. छोटे सूर्य हो, चन्द्रमा हो, हीरे हो या हस के बच्चे हो कवि के उर्वर मस्तिष्क की दाद देनी होगी—

ऊपरि पद-पलव पुनरभव ओपति,
निमल कमळ-दळ ऊपरि नीर ।
तेज कि रतन कि तार कि तारा,
हरि हम-सावक सस-हर हीर ।।

परमतत्व के आभास के रूप में

मगलाचरण से लेकर काव्यान्त तक वेलिकार इस तथ्य को विस्मृत नही कर सका है कि उसके वर्ण्य श्रीकृष्ण-रुक्मिणी सामान्य कथा नायक-नायिका न होकर अलौकिक सत्ता हैं वे क्रमश श्रीविष्णु और लक्ष्मीजी के अवतार हैं उनके बिना इस जीवन का उद्धार कौन कर सकता है ? असभाव्य को सभव करने वाले, किये हुये को अन्यथा करने वाले, पूर्ण पुरुषोत्तम वे ही तो है. वे ही सर्व समर्थ हैं—

कृत करण अकरण. अन्नथा करण,
सगळे ही थोके ससमत्थ ।

कबीर और जायसी के रहस्यवाद जैसी अभिव्यक्ति यद्यपि वेलि मे दर्शनीय नही है, फिर भी शृगार-वर्णन करते करते वारम्बार उनका नामोल्लेख करना ही इस तथ्य का द्योतक है कि वह निरतर परमात्मोन्मुख है Dr L P Tessitori has also said that, "A passing mention of Krsna and Rukumini here and there makes us remember that they are always present behind the screen" बलि को बाँधने वाले तथा मधु नामक दैत्य का संहार करने वाले जगत पति श्रीकृष्ण ग्रीष्म मे जलक्रीडा कर रहे है—

जलक्रीडा क्रीडति जगतपति,
जेठमास एही जुगति ।।१८६।।

और वर्षा ऋतु मे जब श्याम मेघ धरती से मिल जाते है तो ऐसा लगता है जैसे मेघ-कृष्ण और पृथ्वी-रुक्मिणी दोनो आलिंगन बद्ध हो गये है, जीव और परमात्मा का तादात्म्य हो गया है—

धर श्यामा सरिस, स्यामतर जळधर,
घेघूचे गळि बाहाँ घाति ।

मिष्टभाषी कोयलो का बोलना आदि के द्वारा कवि ने द्वारिका की पवित्रता और सुभगता का उत्तम वर्णन किया है तो दूसरी ओर रत्यान्त प्रभात-वर्णन के द्वारा कवि ने प्रकृति की अनेक वस्तुओ के सकुचन और विस्तरण का अनूठा वर्णन किया है, जिसमे कवि की सूक्ष्मदर्शिता और विपुल सासारिक ज्ञान-विज्ञान की मार्मिक अनुभूतियो के दर्शन होते हैं

सूर्योदय के कारण एक ओर जहाँ चद्रमा और दीपक निस्तेज हो जाते हैं तो दूसरी ओर वह चकवा को चकवी से, चोरो को उनकी स्त्रियो से तथा ब्राह्मणो को सरोवरो के घाटो के जल से मिला देता है—

गतप्रभा थियउ ससि रयणि गळति

× × × ×

दीपक परजळतउ इ न दीपइ

× × × ×

सूर प्रगटि ऐतळा समपियउ
चोर, चकव, विप्र-तीरथ वेळ

पृथ्वीराज राजस्थान के वीरता तथा कविता के मूर्तिमत स्वरूप थे वे अप्रतिम योद्धा और महाकवि थे. कलम और तलवार दोनो के धनी इस महापुरुष ने दोनो का उत्तम प्रयोग कर युद्धभूमि और साहित्य क्षेत्र दोनो मे अमरत्व को प्राप्त किया है. बलराम के नेतृत्व मे यादवो के चुनिन्दे सैनिक तथा भीष्मक, शिशुपाल आदि की सयुक्त सेना के बीच मे जब अल्पकालीन पर तुमुल सघर्ष हुआ जिसे वर्णन करने के लिये कवि का हृदय बाग बाग हो उठा और वह पाठको के सम्मुख उसका एक तादृश्य चित्र प्रस्तुत करने मे सक्षम हो सका वेलि मे युद्ध-वर्षा-रुपक वर्णन से युद्ध की विकरालता और गहन हुई है. यही लेखक को अभीष्ट था, जिसके कारण वह एक ऐसे वातावरण का सृजन कर सका, जिस पर विजयलक्ष्मी का वरण तथा उसका आन्दोपभोग किया जा सका.

इन सब के अतिरिक्त रुक्मिणी के रूप और वयसधि के स्वतत्र वर्णन मे कवि आकाश-कुसुम तोड लाया है. मानसरोवर मे तैरते हुये हस-शावक और सुमेरु पर्वत पर दो पत्तो से युक्त कनकलता की प्राकृतिक सुषमा बरबस मनुष्य के आकर्षण का केन्द्र बनती है—

रामा अवतार नाम ताइ रुकमणि,
मानसरोवरि मेरु-गिरि ।
बाळकति किरि हस-चौ बाळक,
कनक-बेलि बिहु पान किरि ॥१२॥

यही अनिद्य सुदरी रुक्मिणी अपनी सखियो के साथ राजभवन के प्रागण मे खेलती हुई ऐसी शोभित है मानो निरभ्र आकाश मे झिलमिलाते तारो के साथ चद्रमा. अनत आकाश का अनत सौदर्य जैसे धारित्री ने अपनी कोख मे रख लिया हो—

सग सखी सीळ कुळ वेस समाणी,
पेखि कळी पदमिणी परि ।
राजति राजकुअरि रायआगण,
उडियण वीरज अम्ब हरि ॥१४॥

शिशिर रूपी शैशव जो अब तक रुक्मिणी के अगदेश मे सुषुप्तावस्था मे था अब यौवन रूपी बसत के आगमन से जाग उठा मुख की अरुणाभा और उन्नत उरोजो की प्रकृति के साथ क्या ही पावन और सरस उपमा दी है जिसमे अश्लीलता की गध तक नही है—

पहिलौ मुखि राग प्रगट थ्यौ प्राची, अरुण कि अरुणोदय अबर ।
पेखै किरि जागिया पयोहर मझा वदण रिखेसर ॥१६॥

इस प्रकार वेलिकार ने वेलि मे अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, प्रतिभा, ज्ञान-बाहुल्य तथा सरस पर सचोट अभिव्यजना के माध्यम से प्रकृति-चित्रण के रूप मे एक ऐसी चिर आनददायी वस्तु प्रदान की है, जिसकी सानी साहित्यक ससार मे दुर्लभ है. अपनी इस विचक्षणता और विदग्धता के कारण वेलि न केवल इस देश के सम्मान का केन्द्र रही पर विदेशी विद्वान भी इसकी सरसता से मुग्ध हुये बिना नही रह सके डॉ० एल. पी तैस्सितोरी ने कितना सत्य लिखा है—The great merit of the poem is in the combination of a delightful genuineness and naturalness of expression with the most rigorous elaborateness of style × × × × We now come to the most exquisite picture of the poem· the falling of the night, the impatient expectation of Krsna and the coming of Rukmini to his thalamus The shyness of the maid and the unbounded joy of Krsna at her arrival, are described with all the mastership, which we should expect from a Rajput of refinement who has had many love experiences of that kind in his life. Then with great ability, Prithiraj draws a discreet curtain before the thalamus of the two lovers and leading us outside into the dark night makes us watch the breaking of the day and then in succession the passing of the six seasons of Indian Year, × × × × It is like a succession of magic-lantern pictures on a wall, each stanza is a quadretto in itself worked to perfection with great elegance in which Indian poets of the seasons succeed so well.

वेलि में औचित्य

'उचित' विशेषण से बनी हुई भाववाचक सज्ञा 'औचित्य' है स्वय उचित शब्द 'उच्' धातु से व्युत्पन्न है[1], जिसके विद्वानो ने अनेक अर्थ दिये है—(१) प्रसन्न होना, (२) योग्य गुणो का समुदाय (३) एकत्रित करना. (४) किसी वस्तु के आदी बनना, (५) उपयुक्त बनना और (६) अनुकूल बनना ।

साहित्य शास्त्र मे औचित्य के प्रतिष्ठापक आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की परिभाषा देते हुये कहा है कि **'उचितस्य च यो भाव तदौचित्यं प्रचक्षते'** अर्थात् उचित के भाव को औचित्य कहते है[2] स्वय उचित की व्याख्या करते हुये क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि जो जिसके सदृश या अनुकूल होता हो, वह उसके लिये उचित है **'उचितं प्राहुरस्चार्यां· सदृश किल यस्य यत्'** उचित के अन्य पर्याय जो साहित्य शास्त्र मे प्रचलित हैं, वे है—(१) अनुरूपता, (२) युक्तिता, (३) विधि दर्शन मार्ग और (४) योग्यता.

उचित और अनुचित मे वस्तु और भाव जगत की कोई भी वस्तु शेष नही रहती दूसरे शब्दो मे इसकी क्षेत्रीय व्यापकता इतनी विशाल है कि इसमे सभी का समावेश हो जाता है फिर भी, यद्यपि 'उचित' की परिभाषा तो नही बदलती पर वस्तु के प्रयोग करने की विधि और इसी प्रकार विचार सरणी भी देशाकालानुसार बदलती रहती है. मध्ययुग की कई विचार धाराएँ आधुनिक युग के अनुरूप नही है. उदाहरणार्थ अस्पृश्यता. आज से तीन सौ चार सौ वर्ष पूर्व जिस कठोरता और किसी सीमा तक निर्दयता से समाज मे इसका पालन किया जाता था, आज वह लगभग अदृश्य-सी हो गई है. आज अस्पृश्यता के पक्षधर को तुरन्त ही प्रतिक्रियावादी आदि कई विशेषणो से अलकृत होने मे देरी नही लगेगी

जिस प्रकार समाज मे औचित्य का आधार आचार-शास्त्र (Ethics) है, उसी प्रकार भाषा मे उसका आधार व्याकरण है तो काव्य मे उसका आधार आस्वाद प्रक्रिया है इसी को एक शब्द मे ऐसा कहा जा सकता है कि काव्य मे

---

१. अर्थ विचार की दृष्टि से कई विद्वान इसे वच् धातु से व्युत्पन्न मानते हैं. तारकनाथ तर्क वागीश, वाचस्पत्यम् पृ० १०५८, १५६६.

२ क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा, पृ० ११६.

औचित्य का आधार 'रस' है. आचार्य क्षेमेन्द्र रस को काव्य की आत्मा मानते है. इस दृष्टि से देखा जाय तो औचित्य काव्य की आत्मा ही नही है, पर, रस का प्राण भी है

चूकि काव्य मे रस के अतिरिक्त भी अनेक रसेतर वस्तुओ का समावेश होता है, अतएव हमे औचित्य के प्रभेदो पर भी एक दृष्टि डाल लेनी चाहिये. औचित्य के भेदोपभेद कुल मिला कर सताइस है[1], जिनको मुख्य तीन भेदो (कविगत, काव्य-गत और सहृदयगत) के अन्तर्गत रखा जा सकता है वेलि को केन्द्र मे रख कर यहाँ प्रमुख भेदो की चर्चा ही समीचीन रहेगी इस दृष्टि से कविगत के अन्तर्गत तत्वौचित्य व स्वाभावौचित्य, काव्यगत के अन्तर्गत भाषौचित्य, अलकारौ-चित्य, गुणौचित्य, छदौचित्य और रसौचित्य तथा सहृदयगत के अन्तर्गत देशौचित्य व कुलौचित्य के माध्यम से हम वेलि को औचित्य की कसौटी पर कसेगे.

वेलि एक प्रबध काव्य है जिसके रचयिता महाराज पृथ्वीराज राठौड एक प्रतिभासपन्न भक्त कवि थे. भावो के अनुरूप भाषा को ढालने की उनकी क्षमता अद्वितीय थी उन्होने डिगल जैसी तथाकथित कर्णकटु भाषा को ऐसा नाथा कि वह प्रसगानुकूल रस-वैविध्य के साथ सबलता से उभर आई है और कही अनौचित्य के दर्शन नही होते.

(१) पदौचित्य

पद का उचित प्रयोग पदौचित्य है. पात्र, प्रसग, परिस्थिति और भाव के अनुसार पद का प्रयोग काव्यार्थ मे विलक्षणता ला देता है

यथा—

रामा अवतारि वहे रणि रावण,
किसी सीख करुणाकरण ।
हूँ ऊधरी त्रिकुटगढ हूँती,
हरि बधे वेळाहरण ।।६३।।

वैसे राम और सीता का काव्य से कोई सीधा सम्बन्ध नही है पर यहाँ रुक्मिणी सारे अवतारो को एक ही भगवान के स्वरूप मान तथा स्वयं को उनकी जन्म जन्मातर की पत्नी (लक्ष्मी, सीता) मान कर अपने उद्धार की प्रार्थना आर्त-भाव से करती है यहाँ भाव के अनुसार काव्यार्थ मे चमक आ गई है.

---

१. डॉ॰ सुरेशचन्द्र त्रिवेदी, 'औचित्य विचार चर्चा' (गुजराती अनुवाद) प्र॰ मेसर्स बी. अेस शाह प्रकाशन, पानकोर नाका, अमदावाद.

(२) वाक्यौचित्य

वर्ण्यविषय का निरूपण करने मे समर्थ वाक्यावली का प्रयोग वाक्यौचित्य कहलाता है. उदाहरणार्थ—

म म करिसि ढील, हिव हुए हेकमन
जाइ जादवाइद्र जत्र ।
माहरै मुख हुँता ताहरै मुखि,
पग वदण कर देइ पत्र ।।४५।।

इस पद मे रुक्मिणी के मन की अधीरता को सुदर ढग से अभिव्यक्त किया गया है. ब्राह्मण के जाने का मना करने पर रुक्मिणी का आग्रहभरी विनती करना तथा एकचित होकर यदुराय कृष्ण के पास द्वारिका जाकर, प्रथम उनके चरणारविंदो मे प्रणाम करना तथा मेरे मुख की बात को अपने मुख से कहना आदि को विविध वाक्यो मे औचित्यपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया गया है.

(३) गुणौचित्य

गुण रस के धर्म हैं वामन और उनके पूर्ववर्ती आचार्यो ने दस गुण बतलाये है, पर आलकारिको ने तीन ही गुण स्वीकार किये और शेष गुणो को इन्ही तीन गुणो-माधुर्य, ओज और प्रसाद मे अन्तर्भाव कर दिया है. गुणौचित्य का अर्थ है माधुर्य, ओज और प्रासाद गुणो का रसानुकूल उपयोग.

(1) माधुर्य गुण

माधुर्य गुण का सम्बन्ध कोमल रसो से है अतएव इसके दर्शन हमे शृगार, करुण और शात रस मे होते है. वेलि मे विप्रलम्भ शृगार और करुण तो अपवाद मात्र ही मिले, पर सभोग-शृगार और शात के उदाहरणो से सारा प्रबध काव्य भरा पडा है माधुर्य गुण का उदाहरण दृष्टव्य है—

वीणा डफ महुयरि वस वजाए,
रोरी करि मुख पंचम राग।
तरुणी तरुण विरही जण दुतरणि
फागुण घरि घरि खेलै फाग ।।२२७।।

उपर्युक्त पद मे फागुन मास मे युवक-युवतियो का हाथो मे गुलाल और मुख पर पचम राग तथा वीणा, डफ और बासुरी बजाते हुओ का आनदमयी चित्रण है.

(11) ओज गुण

चित्त का विस्तार रूप दीपत्व ओज है चित्त के सकोच के हट जाने से उसका विस्तार होता है ऐसे समय चित्त मे ओज की स्थिति आ जाती है ओज

गुण का सबध उग्र रसो यथा वीर, वीभत्स और रौद्र रसो से है वेलि का युद्ध-वर्षा रूपक-वर्णन ओज गुण के उदाहरणो से आपूरित है द्रष्टव्य है—

कळकळिया कुत किरण कळि ऊकळि,
वरजित विसिख विवरजित वाउ ।
धडि धडि धबकि धार धारूजळ,
सिहरि सिहरि समखै सिळाउ ।।११६।।

(iii) प्रसाद गुण

कर्णकटु शब्दो का त्याग कर, जहाँ रचना सरल व सुबोध शब्दो से निर्मित होती है, उसमे प्रसाद गुण होता है अर्थात् जिस रचना को पढते ही अर्थ समझ मे आ जाय, वह प्रसादगुण युक्त रचना होती है. इसकी स्थिति सभी रसो मे हो सकती है वेलि मे मगलाचरण और माहात्म्य आदि ही ऐसे प्रसग हैं जहाँ प्रसाद गुण के दर्शन होते है यथा—

सरसती न सूझै ताइ तू सोझै,
वाउवो हुओ के वाउळौ ।
मन सरिसौ धावतौ मूढ मन,
पहि किम पूजै पागुळौ ।।४।।

(४) अलंकारौचित्य

काव्य मे अलकारो का उचित प्रयोग अलकारौचित्य है. उचित प्रयोग का अर्थ है कि (१) काव्य मे उनका प्रयोग सायास न होकर स्वाभाविक होना चाहिये; (२) अलकार्य के अभाव मे अलकार का प्रयोग अर्थहीन तथा (३) अनुचित अलकार्य के अभाव मे भी अलकार अपनी महत्ता व सत्ता गुमा बैठते है वास्तव मे अलकार्य और अलंकारो के बीच एकान्विति को ही अलकारौचित्य कहते हैं.

'भूषण बिन न बिराजही, कविता, बनिता, मित्त' वाले युग मे उत्पन्न पृथ्वीराज भी अलकारिकता के मोह से ग्रसित थे वेलि का प्रत्येक पद अलकारयुक्त हैं. कही कही तो एक छद मे तीन चार अलकारो का एक साथ प्रयोग हुआ है. इतना होते हुये भी वे सारे अयत्नज है और इसीलिये वेलि का काव्य अलकारो से बोझिल न होकर, अपने नैसर्गिक रूप मे चमत्कारिता लिये हुये है वास्तव मे पृथ्वीराज के अलकार काव्य की आत्मा रस—के साधक हैं न कि बाधक. वेलि मे अन्य अलकारो के साथ साथ उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा तो बहुतायत से प्रयुक्त हुये हैं.—

उत्प्रेक्षा :

पति पवन प्रारथित श्री तत्र निपतित,
सुरत अन्त केहवी श्री ।
गजेन्द्र क्रीडता सु विगलित गति,
नीरासइ पर्रि कमलिनी ।।१७४।।

उपमा :

वितए आसोज मिळै नभि वादळ,
पृथी पक जळि गुडळपण ।
जिम सतगरु कळि कळुष तणा जण,
दीपति ग्यान प्रगटे दहण ।।२०८।।

रूपक :

आजाति जाति पट घूघट अन्तरि,
मेळण एक करण अमिळी ।
मन दम्पती कटाछि दूति मै,
निय मन सूत्र कटाछि नळी ।।१६६।।

शब्दालकारो मे अनुप्रास अपने प्रभेदो के साथ बहुतायत से प्रयुक्त हुआ है. राजस्थानी भाषा के विशिष्ट अलकार वयणसगाई (वर्ण सबध) अलकार का तो आद्योपान्त निर्वाह हुआ है. वास्तव में वेलि अलकारो का नैसर्गिक रत्नाकर है.

(५) छंदौचित्य

ऐसा प्रतीत होता है कि छद-शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान होते हुये भी पृथ्वीराज ने अपने वेलि काव्य मे अथ से इति एक ही राजस्थानी छद **छोटा साणोर** के दो प्रमुख प्रभेदो **खुड़द साणोर** और **वेलियो** का प्रयोग किया है. कवि ने अपनी अन्य रचनाओ मे दोहा और सोरठा का सर्वाधिक प्रयोग किया. प्रशस्तिमूलक तथा स्तुति परक पदो मे कवि ने गीत छंद के अनेक भेदो का प्रयोग किया है.

(६) भाषौचित्य

पृथ्वीराज की भाषा का स्वरूप साहित्यिक डिंगल है जो इस प्रदेश के तथा काल के अनुरूप है इस भाषा और इसमे निर्मित उत्कृष्ट ग्रथो के ज्ञानाभाव के कारण विद्वानो ने भ्रमवश इसकी अनौचित्य टीकाये की हैं, पर मात्र वेलि की रसाभिव्यक्ति की क्षमता को देख कर ये ही विद्वान आश्चर्यचकित रह गये. वेलि मे एक स्थान पर भगवान कृष्ण के मुख से देववाणी सस्कृत का प्रयोग अनौचित्य न होकर

सर्वथा उचित ही है क्योकि वे उस समय विद्वान सदेश वाहक ब्राह्मण से वार्तालाप कर रहे थे यह छद सवर्था पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग है—

कस्मात कस्मिन किल मित्र किमर्थ,
केन कार्यं परियासि कुत्र ।
ब्रूहि जनेन येन भो ब्राह्मण,
पुरतो मे प्रेषितम् पत्र ।।

इससे कवि के सस्कृत-ज्ञान का परिचय तो मिलता ही है, पर जब हम कवि की अन्य रचनाओ का अध्ययन करते है तो उनके ब्रजभाषा पर के अधिकार का भी पता चलता है

(७) रसौचित्य

रस काव्य की आत्मा है. जिस प्रकार आत्मा के अस्तित्व मे शरीर स्थित रहता है, उसी प्रकार रस रूप आत्मा के रहने पर काव्य शरीर रह सकता है इतना होते हुये भी रस को काव्यानुरूप होना चाहिये. श्रेष्ठ से श्रेष्ठ स्तर की रस-योजना का कोई महत्व न होगा, यदि वह प्रसगानुसार, भावानुसार और मूलकथा-प्रवाहानुसार न होकर उससे असबधित हो.

भक्ति और वात्सल्य को भी रसो के रूप मे स्वीकार कर लेने पर रसो की सख्या ग्यारह हो जाती है. वेलि मे वात्सल्य और करुण रस का सर्वथा अभाव है भक्तिमय रचना होने के कारण हास्य रस के उदाहरण भी अपवाद रूप मे ही उपलब्ध हैं

श्री सूर्यकरण पारीक ने अपने द्वारा सपादित वेलि की भूमिका[1] मे रस-विरोध (युद्ध वर्षा रूपक छद सख्या ११३ से १२५) का प्रश्न खडा किया है. **रसगंगाधर** के कर्ता **जगन्नाथ** ने कहा है कि—

तत्र वीर-शृगारयोः, शृगार-हास्योर, वीराद्भुतयो,
वीर-रौद्रयो, शृगाराद्भुतयोश् च अविरोधः ।

इन मित्र रसो के वर्णन के पश्चात् कविराज जगन्नाथ ने यह भी कहा है कि—

सुराङ्गनाभिराश्लिष्टा व्योम्नि वीर वीमान-गाः,
विलोकन्ते निजान देहान् फेरु-नारीभिरावृतम् ।

इस प्रकार जगन्नाथ ने विरोध का परिहार भी कर दिया है. मम्मट और हेमचन्द्र ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि शृगार और वीभत्स के बीच मे

---

१ श्री सूर्यकरण पारीक, भूमिका पृ ७६,७७,७८,८८.

यदि वीर रस को दे दिया जाय तो उससे विरोध का परिहार हो जाता है नीचे लिखी अवस्थाओ मे भी विरोधी रसो का साथ साथ वर्णन हो सकता है .—(१) जब कोई रस अपने विरोधी रस का अग बन कर आवे तथा (२) जब दो परस्पर विरोधी रस किसी तीसरे रस के अग हो [१] ऐसी दशा मे श्री पारीकजी द्वारा उत्पन्न रस-विरोध की समस्या के खडे होने का प्रश्न ही नही उठता.

वीर रस

कलम और तलवार दोनो के धनी पृथ्वीराज ने वीर रस का सशक्त वर्णन किया है कवि ने युद्ध-वर्षा रूपक प्रस्तुत कर सजीव चित्र उपस्थित कर दिया है : बलराम की ललकार और उनका अपने सैनिको को प्रोत्साहन दर्शनीय है—

बेली तदि बळिभद्र बापूकारइ,
सत्र साबतउ अजे लगि साथ ।
वूठइ वाहुवियइ आ वेळा,
हिव जीपिस्यइ जु वाहिस्यइ हाथ ।।१२३।।

रौद्र रस

क्रोध, रौद्र का स्थायी भाव है. किसी के ललकारने पर युद्धभूमि मे क्रोध आना स्वाभाविक है रुक्मि के ललकारने पर श्रीकृष्ण के रौद्र रूप धारण करने का कवि ने सुदर शब्द-चित्र अकित किया है—

विळकुळियउ वदन जेम वाकारियउ,
सग्रहि धनुष पुणच सर सधि ।
क्रिसन रुकम-आउध छेदण कजि,
वेळखि अणी मूठि द्रिठ बंधि ।।१३१।।

वीभत्स

वेलि मे छद संख्या १२० से १२८ तक वीभत्स रस का वर्णन हुआ है इस रस का स्थायीभाव जुगुप्सा है. दुर्गंध-युक्त मास, रक्तादि इसके आलम्बन हैं—

रिण आगण तेणि रुहिर रळतळिया,
घणा हाथ-हूँ पडई घणा ।
ऊधा पत्र बुदबुद जळ आक्रिति,
तरि चालइ जोगिणी तणा ।।१२२।।

---

१. श्री नरोत्तमदास स्वामी, क्रिसन रुकमणी री वेलि की प्रस्तावना, पृ० ५३ से ५७,

भयानक रस

इस रस का स्थायी भाव भय है. हिसक जतु और श्मशानादि से भय का सचार होता है. भय के कारण ही शरीर मे कँपकँपी छूट जाती है तो कभी कभी मूर्छा भी आ जाती है. भालो, तलवारो और बाणो के चलने से शत्रुओ के हृदय काँप उठे—

कँपिया उर काइरा असुभ-कारियउ
गाजति नीसाणे गडगइ ।।१२०।।

अद्भुत रस

विस्मय, इस रस का स्थायीभाव है. वेलि मे इसके दो उदाहरण है प्रथम तो सदेशवाहक ब्राह्मण के जागने पर अपने आपको द्वारिका मे पाना और द्वितीय रुक्मि के काटे हुये बालो को पुन. उगा देना—

सप्रति अे किना, किना अे सुहिणउ,
आयउ हू अमरावती ।
जाई पूछियउ, तिणि इम जपियउ,
देव ! सु आ द्वारामती ।।५१।।

शात रस

शात रस का स्थायीभाव शम या निर्वेद है. वेलि के प्रारम्भिक छद शात रस के हैं, जिसमे ईश्वर के प्रति प्रेम उसकी महानता और अपनी दीनता प्रकट की गई है.

शृगार

भक्तिमय-शृगार से परिपूर्ण यह ग्रथ सयोग शृगार के उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत करता है. वेलि मे विप्रलभ शृगार नहीवत् है सयोग शृगार के अन्तर्गत नायिका का बाल-सौदर्य, वयसधि, यौवनावस्था, विवाह से पूर्व तथा विवाहोपरात प्रथम मिलन और उसके पश्चात् आदि ऐसे स्थल है जहाँ कवि का मन खूब रमा है और उसने उसके विशद चित्र खीचे है. पर जैसा कि हम ऊपर निर्देश कर आये है यह सारा शृगार वासनामय न होकर भक्ति के तानो-बानो से निर्मित है. शृगार रस के औचित्य का सागोपाग वर्णन हम भाव पक्ष के अन्तर्गत कर आये है, अतएव यहाँ पुनरावर्तन के भय से इसका पुन वर्णन करना उचित नही लगता है.

हास्य

हास ही हास्य का स्थायीभाव है. विकृत आकृति, वेष, वाणी और चेष्टा आदि हास्य के आलबन है. रुक्मी के केश काट कर उसे विद्रूप बनाते समय थोडी

मुस्कराहट बरबस आ जाती है इसी प्रकार हास्य का चित्र कवि ने उस समय खीचा है जब सारी सखियाँ हँसती हुई एक एक कर शयनगृह मे रुक्मिणी को अकेली छोड़ कर बाहर चली जाती है—

हसि हसि भ्रूहे, हेक हेक हुइ,
ग्रिह बाहिरि सहचरी गई ।।१७२।।

(८) स्वाभावौचित्य

मानव प्रकृति का यथातथ्य वर्णन स्वाभावौचित्य कहलाता है. रुक्मिणी क वाग्दान पर रुक्मि के उद्धत स्वभाव का तादृश्य चित्र पृथ्वीराज ने अंकित किया हैं–

मावीत्र अजाद मेटि बोलै मुखि,
सुवर न को सिसुपाल सरि।
अति अँबु कोपि कुँवर ऊफणियौ,
वरसाळू वाहळा वरि ।।३४।।

(९) तत्वौचित्य

तत्व कथन का उचित प्रयोग ही तत्वौचित्य है. जीवन-मरण का अनिवार्य चक्कर, जीवन की क्षणभगुरता, सत्यमेव जयते आदि वे तत्व है, जो चिरकालीन सत्य हैं इसी प्रकार यह भी सत्य है कि परमात्मा के एक होते हुये भी 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्ति देखी तिन ऐसी' जैसी तत्वमयी उक्ति के अनुसार एक ही भगवान श्रीकृष्ण के अनत स्वरूपो का वेलिकार ने चित्र उपस्थित किया है—

कामिणी कहि काम काळ कहि केवी,
नारायण कहि अवर नर ।
वेदारथ इम कहै वेदवत
जोग तत्त जोगेसर ।।७६।।

देशौचित्य

जलवायु, भौगोलिक वातावरण, नगर वर्णन, प्रकृति वर्णन आदि का जहाँ देशानुसार वर्णन किया जाय, वहाँ देशौचित्य माना जायेगा. वेलि मे द्वारिका नगरी का वर्णन, और ऋतु वर्णन इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं. कवि का ऋतु वर्णन तो वास्तव मे वास्तविक बन पडा है मरुभूमि मे उठती लू के ताँडव को देखिये—

नैरति प्रसरि निरधण गिरि नीझर,
धणी भजै धण पयोधर।
झोळे वाइ किया तरु झखर,
लवळी दहन कि लू लहर ।।१९१।।

अथवा राजस्थान मे वर्षा मे उठती घनघोर घटा का दृश्य देखिये—

काळी करि काठळि ऊजळ कोरण
धारे श्रावण धरहरिया ।
गळि चालिया दिसो दिसि जळग्रभ,
थभि न विरहिण नयण थिया ।।१९५।।

कुलौचित्य

कुल गौरव के अनुरूप कार्यों का वर्णन, आभिजात्य का निर्वाह तथा वशानुगत चरित्र का निरूपण कुलौचित्य कहलाता है वेलि मे जब रुक्मि अपने पिता के प्रस्ताव की परवाह न कर अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो उसके मन मे कुलौचित्य का ही प्रश्न था—

प्रभणति पुत्र इम मात पिता प्रति
अम्हाँ वासना वसी इसी ।
ग्याति किसी राजवियाँ ग्वाळा ।
किसी जाति कुळ पाँति किसी ।।२१।।

सुजु करै अहीरा सरिस सगाई,
ओलाडे राजकुळ इता ।।३२।।

सदेशवाहक ब्राह्मण को आता देखकर भगवान ने जिस ढग से उसका सम्मान किया, वह उनके आभिजात्य कुल के वंशानुगत चरित्र की विशेषता प्रकट करता है—

ऊठिया जगतपति अन्तरजामी,
दूरन्तरी आवतौ देखि ।
करि वन्दण, आतिथ धम कीधो,
वेदे कहियो तेणि विसेखि ।।५४।।

काव्यौचित्य के सभी पहलुओ पर विचार करने पर लगता है कि पृथ्वीराज ने वेलि मे औचित्य का सपूर्ण ध्यान रखा है तथा कही भी अनौचित्य का प्रवेश नही होने दिया है.

वेलि की टीकायें

आचार्य रामचद्र शुक्ल ने लिखा है, 'शृगार रस के ग्रथो की जितनी ख्याति और मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नही इसकी पचासो टीकायें लिखी गई है इन टीकाओ मे ४५ तो बहुत प्रसिद्ध है''[1] यह सत्य भी है कि हिंदी साहित्य के अन्यतम ग्रथ रामचरित मानस को छोड कर इतनी ख्याति और सम्मान अन्य किसी ग्रथ को कभी नही मिला है, पर वेलि की बात कुछ निराली ही है सस्कृत, ब्रज, हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती मे इसकी जो टीकाये उपलब्ध है वे ही इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि वेलि उत्कृष्ट कोटि का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रथ है बिहारी सतसई की भाँति इसकी अनेक टीकायें (गद्य और पद्य मे) उपलब्ध है. अतर वैशिष्ट्य मे है जहाँ 'बिहारी सतसई' केवल काव्य रसिको तक ही सीमित रही, वेलि मूलत भक्ति ग्रथ तथा साहित्यिक दृष्टि से उत्तम ग्रथ होने के कारण विद्वदवर और सामान्य जनता दोनो के अतरतम तक पहुँच सकी.

महाकवि पृथ्वीराज राठौड द्वारा परिष्कृत डिगल भाषा मे लिखी हुई यह वेलि इस भ्रम का निवारण करने का भी पर्याप्त व श्रेष्ठ प्रमाण है 'कि डिगल केवल वीररसोपयुक्त भाषा न होकर अन्य रसो को वहन करने की भी उतनी ही क्षमता रखती है, जितनी कि कोई दूसरी समृद्ध भाषा डॉ एल. पी तैस्सितौरी ने इसी बात को लक्ष्य कर लिखा है कि "Indeed, the musicality of the verses is such that nothing could more conspicuously prove the error of them, who hold that Dingla is too harsh for erotical or idyllic subjects and is only fit for heroic themes"[2] (जो लोग यह मानते हैं कि प्रेमसबधी और लोक धर्मी काव्य के लिये डिंगल बहुत ही कर्णकटु है, वास्तव मे, वेलि की सगीतात्मकता और उत्कृष्टता उनका भ्रम भग करने के लिये पर्याप्त है) वेलि की इस भाषा विषयक विशेषता ने भी वेलि के प्रसार मे योगदान दिया.

जैसे जैसे इसका प्रचार बढता गया, प्रतिलिपिकारो (लहियो) ने इसकी अनेक प्रतिलिपियाँ की. प्रतिलिपि करते समय अजान मे ही उनसे अनेक भूले हो जाती रही हैं

---

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, नवम सस्करण, पृ० २४६.

२. डा० तैस्सितौरी द्वारा सपादित वेलि, Introduction पृ० XII.

परिणामत: कालान्तर मे छद सख्या और भिन्न भिन्न पाठान्तरो के कारण अर्थ सम्बन्धी आदि कई प्रश्न उठ खडे हुये भिन्न-भिन्न टीकाओ के निर्मित होने का एक प्रधान कारण यह भी है.

आधुनिक काल मे अद्यावधि वेलि की सात टीकायें विस्तृत भूमिकाओ के साथ प्रकाशित हो चुकी हैं हिन्दी मे प्रथम टीका महाराज जगमालसिंहजी द्वारा लिखित और ठाकुर रामसिंह तथा प्रो० सूर्यकरण पारीक द्वारा सपादित है जो हिन्दुस्तानी अकेडेमी द्वारा सन् १९३१ मे प्रकाशित हुई थी प्राक्कथन[1] मे जगमालसिह ने लिखा है कि 'जब मै 'वेलि' के दोहलो का अन्वयार्थ, भावार्थ, शब्दार्थ आदि अपनी बुद्धि के अनुसार लिख चुका तो मैंने श्रीमान् ठा० रामसिंहजी एम ए. और पडित सूर्यकरणजी पारीक एम.ए. को इसका पूर्ण अधिकार दे दिया कि वे अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार इसको घटा बढा कर, जैसा उचित समझे वैसा रूप देकर और इसका सशोधन और संपादन करके जहाँ और जैसा चाहे प्रकाशित करादे इन सज्जनो ने अपना अमूल्य समय लगा कर, बडा परिश्रम और खोज करके मेरी टीका की काया ही पलट दी' इससे स्पष्ट पता चलता है कि प्रस्तुत टीका का मूलाधार जगमालसिंहजी की वह टीका है जो वास्तव मे अप्रकाशित ही रही. इस प्रकार इस टीका के अन्तर्गत एक और टीका के अवस्थित होने के कारण हमे इसे दो टीकाओ के रूप मे ही स्वीकार करना चाहिये. इसके सम्पादकद्वय ने जो अध्यवसाय किया है, वह प्रशसनीय है वेलि से सम्बन्धित सभी विषयो का समावेश करती हुई विस्तृत भूमिका, नोट्स, पाठान्तर, शब्दकोष, प्राचीन टीकाये, प्रथम पंक्ति सूची आदि से इस ग्रथ की उपादेयता निश्चय ही बहुत बढ गई है राजस्थानी की पूर्वी बोली ढूंढाड़ी और सस्कृत की सुबोध मजरी टीकाये देकर सपादको ने पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाया है. भारतीय भाषाओ के प्रथम कोटि के अध्येता डॉ० ग्रियर्सन ने इस पुस्तक के सबध मे लिखा है कि 'आधुनिक भारतीय भाषाओ मे मैंने कोई भी ऐसी कृति नही देखी है, जिसका सम्पादन और प्रकाशन प्रत्येक दृष्टि से इतना पूर्ण हुआ हो'

इसके पूर्व, अपनी मातृभाषा इटेलियन से भी अधिक जिसको राजस्थानी भाषा से प्रेम था, ऐसे विदेशी विद्वान डॉ० तैस्सितोरी ने अनेक प्रतियो का आधार लेकर तथा कठोर परिश्रम के द्वारा वेलि का एक सुदर सस्करण ख्यातनामा एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते से सन् १९१९ मे प्रकाशित करवाया था. आगल भाषा मे लिखी हुई इसकी पन्द्रह पृष्ठीय भूमिका, पाठान्तर, विस्तृत नोट्स (आगल भाषा मे) और शब्दकोष देकर इस विद्वान ने हमारी मातृभाषा राजस्थानी की जो अन्यतम सेवा की है, ऐसी सेवा स्वय राजस्थानी भाषा के धुरधर कहे जाने वाले

---

१. वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्राक्कथन, पृ० ६, प्रकाशक. हिन्दुस्तानी अकेडेमी, प्रयाग

विद्वान भी नही कर सके है 'वेलि क्रिसन रुकमणी री पृथ्वीराज री कही, वचनिका राठौड रतनसिहजी री महेशदासोत री खिडिया जगा री कही,' तथा जोधपुर और बीकानेर आदि राज्यो के चारणी और ऐतिहासिक हस्तलिखित प्रतियो का सर्वेक्षण (Bardic and Historical manuscripts—Descriptive catalogue.) आदि कई अमूल्य ग्रथो को प्रकाशित करवा कर, उसने हममे हेय दृष्टि से देखी जाने वाली हमारी भाषा के प्रति आदर की भावना उत्पन्न की उनके ग्रथ हमारे प्रेरणा स्रोत है, जिनसे प्रेरित होकर हम आज राजस्थानी भाषा की सर्वागीण उन्नति तथा उसकी सवैधानिक मान्यता के लिये आदोलन रत है

तीसरी टीका डॉ० आनदप्रकाश दीक्षित कृत है जो १९५३ मे विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर से प्रकाशित हुई जबसे वेलि के साहित्यिक महत्व को केन्द्र मे रख, अनेक विश्वविद्यालयो ने अपने अपने स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो मे इसको रखना प्रारम्भ किया, वेलि अधिकाधिक आकर्षण का केन्द्र बनती गई और उसके विविध पक्षो को लेकर द्रुतगति से कार्य होने लगा डॉ० आनन्दप्रकाश दीक्षित द्वारा सपादित वेलि इसका ही परिणाम है. उन्होने अपनी विद्वत्तापूर्ण विस्तृत भूमिका लिख कर उसके भाव जगत के अप्रतिम सौदर्य के विविध पक्षो को एक एक कर उद्घाटित कर, इसकी सर्वोत्तमता को प्रदर्शित किया है इनके इस कार्य से अनेक साहित्य-कर्मियो को प्ररोचना मिली है

सन् १९५३ मे ही प्रसिद्ध विद्वान प्रो० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सपादित वेलि का प्रकाशन श्रीराम मेहरा एण्ड कपनी, आगरा से हुआ सयोग की बात तो यह है कि डॉ० दीक्षित और प्रो० स्वामी द्वारा प्रस्तुत दोनो टीकाओ का प्रकाशन एक ही वर्ष सन् १९५३ मे हुआ, दोनो का प्रकाशन भी उत्तर प्रदेश से हुआ तथा दोनो के लेखक मूलत अध्ययन अध्यापन करने वाले प्राध्यापक है वयोवृद्ध प्रो० स्वामी राजस्थानी भाषा के अतिरिक्त हिंदी के भी जाने माने विद्वान है स्वामीजी की इस टीका की अनेक विशेषताएँ है अपनी प्रस्तावना मे राजस्थानी भाषा और उसका साहित्य, वेलि साहित्य तथा वेलि की भाषा का व्याकरण आदि अनेक उपयोगी विषयो पर गहराई से चितन किया है मूल पाठ के नीचे दोहलो का ब्रजभाषानुवाद, शब्दार्थ और पाठान्तर दे दिये गये है तत्पश्चात् हिंदी-गद्य-भाषान्तर दिया गया है और अत मे परिशिष्ट के अन्तर्गत स्वय स्वामीजी द्वारा रचित हिंदी पद्यानुवाद का एक अश युद्ध-वर्षा-रूपक प्रकरण दिया गया है तुलनात्मक अध्ययन के लिये एक छद प्रस्तुत है—

मूल

घटि घटि घण घाउ, घाइ घाइ रत घण,
ऊच छिछ उछळइ अति ।

पिडि नीपनउ कि खेत्र प्रवाळी,
सिरा हस नीसरइ सनि ।।१२५।।

प्रो० स्वामी द्वारा पद्यानुवाद

घट घट मे है घाव घने औ, घाव घाव मे रक्त घना,
उछल रहा वह उनसे मानो फव्वारो का झुड बना ।
लाल लाल पौधे उग आये, मूगो क क्या खेत फले,
प्राण निकलते उनसे ऐसे पौधो से सिरटे निकले ।।

उत्तर प्रदेश से ही एक और टीका का प्रकाशन वि स० २०१० अर्थात् सन् १९५४ मे मकर सक्राति को हुआ इसके सपादक श्री कृष्णशकर शुक्ल है तथा प्रकाशन सस्था है साहित्य निकेतन कानपुर. अर्थ सबधी कुछ व्याख्याओ के अतर के अतिरिक्त इसकी अन्य कोई विशेषता नही है गुणवत्ता की दृष्टि से प्रो० स्वामीजी की ही नही डॉ० दीक्षित की टीका से भी यह सामान्य स्तर की ही मानी जायेगी.

इसके एक वर्ष ही बाद वि स २०११ मे वेलि की एक और टीका का प्रकाशन हुआ इस बार यह कार्य किसी हिन्दी प्रदेश की ओर से न होकर एक ऐसे प्रदेश से हुआ, जिसका राजस्थानी भाषा और साहित्य के साथ साथ उसकी सस्कृति और सभ्यता से भी घनिष्ट नाता है इस बार यह कार्य फार्बस गुजराती सभा ने उठाया और इसके सपादक है श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई इस टीका की सामान्य भूमिका मे श्री देसाई ने सवत् १६३८ को वेलि का निर्माणकाल माना है पर साथ ही साथ यह भी माना है कि विद्वानो से वेलि की साहित्यिक श्रेष्ठता आदि को प्रमाणित करवाने मे उन्हे छः सात वर्ष और लग गये. इसलिये वास्तव मे जनता के सामने वेलि प्रथम बार सवत १६४४ मे ही आई. जो विद्वान सवत १६४४ को इसका निर्माण काल मानने है इससे उनको थोडी द्विधा अवश्य उत्पन्न हो जाती है इस टीका का सर्वोत्तम महत्व इसका एक गुजराती विद्वान द्वारा सपादित होना, गुजराती भाषा के एक शोधसस्थान द्वारा इसको प्रकाशित करवाना तथा जिस प्रति को आधार मान कर इसकी टीका लिखी गई, उसका गुजरात मे ही उपलब्ध होना है इसकी टीका पश्चिमी राजस्थानी (मारवाडी अर्थात् जूनी गुजराती और समभूती (अर्थ) गुजराती) मे है यह प्रति उन्हे सन् १९२० मे सूरत मे प्राप्त हुई थी तथा जिसे स० १७७४ मे तारापुर (गुजरात) मे किसी अनाम लिपिकार ने लिपिबद्ध किया है. इसमे कुल ३०७ छद है और अतिम दोनो छद रचना सूचक है

सातवी टीका डॉ० नेमीचन्द जैन द्वारा सपादित है जो पद्म बुक कपनी, जयपुर द्वारा प्रकाशित है इसमे प्रकाशन काल का उल्लेख ही नही है व्याखाकार ने इस सटीक मे मात्र २२७ छदो की व्याख्या ही प्रस्तुत की है. बसत-जन्म रूपक से लगा

कर महात्म्य और प्रशस्ति तक के छदो का उल्लेख न देख कर यही अनुमान होता है कि इस सस्करण का उद्देश्य केवल पाठ्यपुस्तक भर का है इसके उपरात डॉ० जैन ने १३७ पृष्ठो की श्रमसाध्य सुन्दर भूमिका लिखी है. पृ० १३७ पर ही डॉ० जैन ने जिन मुहावरो का निर्देश किया है उनमे से केवल दो तीन ही मुहावरे हैं शेष तो अभिधा-शक्ति वाचक केवल शब्द भर है.

प्राचीन टीकायें

जिस प्रकार वेलि की प्राप्त प्रतिलिपियो मे वि स १६६६ मे फूलखेडा मे **'रामा'** द्वारा लिखित प्रति सर्वाधिक पुरानी है. ठीक उमी प्रकार वेलि की सर्वाधिक प्राचीन टीका **लाखा** द्वारा वि स १६७३ मे ढूढाडी (पूर्वी राजस्थानी) मे लिखी गई थी शोध की दृष्टि से दोनो बहुमूल्य है और ये दोनो, अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर मे उपलब्ध है लाखा की एक टीका मूल के साथ हमारे निजी सग्रहालय मे भी है.

ढूंढाड़ी टीका

इसका सर्वप्रथम प्रकाशन वेलि के सम्पादक द्वय ठा० रामसिह और पडित सूर्यकरण पारीक ने स्वसपादित वेलि के परिशिष्ट 'क' मे करवाया था आवश्यक शोध सामग्री के अभाव मे तब वे यह निश्चय नही कर पाये थे कि इसका टीकाकार लाखा है उन्होने लिखा है कि 'सवत १६७३ की ढूढाडी (पूर्वीय राजस्थानी) टीका मे प्रथम दोहले की टीका नही मिलती इसलिये यह टीका सवत १८२६ मे खुवास श्री आसाजी द्वारा लिखाई हुई असली ढूँढाडी टीका की नकल से ली गई है ' श्री अगरचद नाहटा[1] ने अपने एक लेख मे प्रमाणित कर दिया है कि इस ढूढाडी टीका के लेखक लाखा ही है टीका के प्रारम्भ मे मगलाचरण के जो छ छद दिये गये हैं उनमे से वे दो जिनमे लाखा के नाम का उल्लेख है, यहाँ उद्धृत है—

> ध्यात्वा श्री गुरु पाद पद्म युगल, श्री मन्मुरारैः पदा ।
> वल्या प्रारंभतै जन प्रियकरी टीका **लखाख्य** कविः ।।
> नत्वा कवीन्द्रास् सर्वज्ञाम्, प्रार्थना सिद्धि दायकान ।
> **लखाख्ये** नापि सुधिया वेल्लि टीका प्रतन्यते ।।

सत्रहवी शताब्दी की राजस्थानी भाषा की इस पूर्वी बोली ढूढाडी के गद्य का उद्धरण दृष्टव्य है—'कवि कहे छै । श्रीपति इसी कुण की मति छै जु तहारो गुण कथै । और इसो कुण तारू छै जु समुद्र तरै । अर इसो कुछ पखी छै जु गगन कहता आकास लग पूहचे अर इसो कुण गरीब सामर्थ छै जु सुमेर ने उठावै । जो

---

१. वेलि की टीकाये—लेखक श्री अगरचद नाहटा, राजस्थान भारती, परिशिष्टाक मई सन् १९६१, अक ३, पृ० ३०.

असौ असामर्थ छै तो बमि रहै जस न कहै। ताकौ जबाब आगला दुवाला माहि कहे।' ॥६॥

सुबोध मजरी टीका

इसे पद्मसुन्दर के शिष्य वाचक सारग ने वि स. १६७८ मे पालणपुर (गुजरात) मे लिखा था सारग की यह टीका सस्कृत मे है और इसका आधार लाखा की ढू ढाडी टीका है—

लाक्षाभिधेन भाषाया चतुरेण विपश्चिता।
चारुणेन कृतो बालावबोधोऽर्थं सुलब्धये ॥
पर न तादृगर्थोक्ति-पद्रुत्व वितनोत्ययम् ।
तेन सस्कृत-वाग्-युक्ता टीकाम्येना करोम्यहम् ॥

सपादक द्वय ने स्वसपादित वेलि मे इसे परिशिष्ट 'ख' मे प्रकाशित करवाया है ढू ढाडी टीका मे से दिये गये उपर्युक्त उद्धरण (छद स ६) की ही सारंग द्वारा लिखित सस्कृत टीका का उद्धरण दृष्टव्य है—'पुर्नविज्ञप्तिद्वारेण वदति—हे श्रीपते हे प्रभो, स क कवि तव गुणान् य स्तौति इति। स कस्तार को नदी तडागादिजल-तरणज्ञो य समुद्र तरति। कश्च पक्षी बहूवुच्चैर्गतिकार. पर गगनात ज्योतिष्कादि-मडल यावद याति। को रक. लघुपर्वतमुत्पाटयितुमशक्त, कथान्तरे गोवर्धन कैलाश कृष्णेन रावणेन उत्पाद्य दोर्भ्यां धृत इति श्रूयते, मेरुमुत्पाटयितु को रक कर प्रसारयति न कोऽपि इति तत्वार्थ।'

जयकीर्ति कृत वनमाली बालावबोध

काल सूचक छद के साथ ३०५ छदो वाली यह टीका स० १८८६ मे जयकीर्ति ने लिखी थी जयकीर्ति ने टीका लिखने के पश्चात् प्रशस्ति मे अपने गुरु, स्थान तथा गच्छादि के विषय मे लिखा है—

युगप्रधान जिणचद इद परि दीप्यउ दीवउ ।
सीस प्रथम तसु सकलचद इण नामइ चावउ ॥
वडभागी उमकाय सीस मुनिवरे शिरोमणि ।
समयसुदर सिरदार मही प्रतपइ ज्यु दिनमणि ॥

वादीया राय वाचक प्रवर हरषनद मथणौ कायचइ।
सुविनीत वेलि त्रिवरण सुगम वाणारिस जयकीरति वदइ ॥१॥

सह सोलह छासीयइ वरस मगसिर वर मासइ।
बीकनयरि महाराय राजि सूरिजसिध हरसइ ॥

खरतरगछि गेहगहइ सूरि जिनराज सूरीसर।
आचारिज अधिकार सूरि कहियइ जिनसागर ।।

प्रशस्ति से मालूम पडता है कि जयकीर्ति खरतर गच्छीय समयसुन्दर के शिष्य हर्षनद के शिष्य थे उस समय बीकानेर मे महाराज सूरजसिंघ का शासन था

प्रारम्भ मे ही नौ छंदो मे विद्या प्रदायिनी सरस्वती और गुरु को नमस्कार कर जयकीर्ति ने अपने पूर्व के टीकाकारो का सक्षिप्त वर्णन किया है—

सरसति माता समरि नइ, प्रणमी सद्‌गुरु पाय ।
वनमाळी वल्ली तणी, वात कहु विगताय ।।१।।
चावउ जगि भाषा चतुर, चारण लाषउ चग ।
कीधउ पहिली वारतिक, अरथि न उपजइ रग ।।२।।
ग्वालेरी भाषा गुपिल, मद अरथ मित भाव ।
वात बध किय भाषविउ, समझण तिण समभाव ।।३।।
चतुर विचक्षण चतुर मति रवि तळि पडित राय ।
सकळ विमळ भाषा सुधी, कवि सारग कहाय ।।४।।
जिण कवि भाषा जोर करि, सस्कृत भाषि सुजाण ।
अरथ कह्यउ लागइ विषम, वदइ न मद वषाण ।।५।।
गीरवाण भाषा भागवत, वल्ली जनक सु बीज ।
कारिज हुं कारण कहु, उपजइ जउ इम कीज ।।६।।

जयकीर्ति ने लिखा है कि उसकी स्वय की टीका के पूर्व की टीकाये कठिन थी. सारग की संस्कृत टीका तो मूल से भी कठिन है.

लाखा चारण के पश्चात् ग्वालियरी भाषा मे गोपाल ने जो टीका लिखी है वह अर्थ और भाव की दृष्टि से शिथिल है. तत्पश्चात् सारग कवि ने सस्कृत मे सुदर टीका लिखी इस टीका मे छठे छद की व्याख्या इस प्रकार है—'हे श्री पति, हे कृष्ण ते कुण सुमति कवि जे ताहरा गुण स्तवइ. अनइ ते कुण नदी तळाव प्रमुख जळतरण जाण तारू जे समुद्र तरइ । अनइ ते कुण पखी जे आकासि ज्योतिषीया रइ माडला सामि जाइ । कुण रक मेरू उपाडिवा हाथ पसारइ । अइ बोल कोइ करि सकइ नहि । हिवइ कवि कीरति करिवा रइ विषइ पोतारउ श्रम सफळ करिवा भणी आगिलउ दुवालउ कहइ छइ ।।६।।'

कुशलधीर गणि कृत नारायण वल्ली बालावबोध

काल सूचक ३०४ छदो से युक्त इस टीका के लेखक खरतर गच्छीय कुशलधीर माणिक्यसूरिजी की परम्परा के कल्याणलाभ के शिष्य थे. यह टीका वि. स.

१६६६ मे कुशलधीर ने अपने शिष्य भावसिह के लिये लिखी थी. इसकी प्रशस्ति के पाँच छदो मे मे कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे है जिनमे कवि ने टीका समाप्ति का काल, शिष्य नाम आदि का उल्लेख किया है—

सोलहसो छिन्नवइ, मास आसू शुभ मासइ ।
विजयदसमी गुरुवार, एह विवरण उल्हासइ ।

× × ×

कहइ कुशलधीर पृथुदास कृत वनमाली वल्ली तणउ ।
बालावबोध जगि वाचता, घणी भूमि प्रसरउ घणउ ।।२।।

कनक विमळ शुभकम्म, सहु सयणा स लह्निज्जइ ।
शिष्य मुख्य सुविचार, भावसिह मुज्झ भणीज्जइ ।
आग्रह कीधउ अधिक, वेलि चउ विवरण कीज्जइ ।।३।।

× × ×

श्रीकृष्ण वेलि विवरण सकल, कुशलधीर वाचक कहइ ।
जे भणइ गुणइ मन सुधि सुणइ, लीला लखमी ते लहइ ।।५।।

कुशलधीर सस्कृत के अच्छे ज्ञाता और सुकवि थे वेलि के मूल छटे छद का भाष्य कवि ने इस प्रकार किया है—'हे श्रीपति ! हे नारायण कुण सुमति कवि जे ताहरा गुण स्तवइ । ते तारू कवण जे बि लाख जोजन नउ समुद्र तरइ । इसउ पखी कवण जे जोतिषीया रा मडळा सीम आकासइ जाइ । ते रक कहता मल्ल कवण जो मेरु उपाडि कर हाथ रइ विषइ करइ एतावता न करि सकइ । जिम ए च्यार दृष्टान्त पूर्ण भागइ न सभवइ तिम हु पिण थारउ जस कही न सकु । अठइ रक शबद नइ केइ कहइ छइ रक कहता भिखारी ते न सभवइ वासला दृष्टात काई एक समर्थ दिखाड्या अनइ दरिद्री सर्वथा असमर्थ अ जिणइ अनेकार्थी माह कह्यउ जे रक कृपण मल्लाया इत्येनकार्थी तिण अठइ रक मल्ल कहोजइ अनइ कदाचित् कृपण पिण सभवइ लोभरी उपेक्षायइ । हिवइ कवि कीरीति श्रम सफळ समर्थ तउ कहइ ।'

श्रीसार कृत संस्कृत टीका

खरतरगच्छीय श्रीसार जो रत्नहर्षजी के शिष्य थे, विद्वान व अच्छे कवि थे इन्होने वि. स. १७०३ मे द्राविड कृष्णानद के लिये लाहोर मे सस्कृत टीका सम्पूर्ण की इसकी एक अन्य विशेषता यह है कि इसमे कवि दुरसा आढ़ा रचित वेलि के प्रशसा के दोनो छदो का भी समावेश है. परिचयस्वरूप प्रारम्भिक छदो मे से सत्रहवे मे श्रीसार ने लिखा है—

अश्रोषी देकदाविज्ञा कृष्णानदो द्विजाग्रणी. ।
एव वल्या. समुत्पत्ति श्रीसार मुखादय ॥१७॥

पृथ्वीराज की प्रशसा करते हुये टीकाकार ने कहा है—

पृथ्वीराजः प्रसिद्धौ जगति गुणनिधा राजराजा कवीना ।
समा वल्लीतिनाम्नी हरि चरितय युता राज गीताचकार ॥१६॥

पृथ्वीराजावतारेण भक्तानुग्रह काम्यया ।
स्वय नारायण स्वस्य जगादचरित हित । २०॥

प्रशस्ति मे कवि ने लिखा है कि इस टीका को इसने शाहजहाँ के काल मे समाप्त किया था तथा उसके गुरु श्री रत्नहर्ष है—

प्रतापतपनाश्यात दिग्मडल महोदय
श्री साहिजहाँ साहि राज्य जयतु सर्वदा ॥२॥

× × ×

चद्र गछ क्षीर वृक्ष क्षेमशाखा विलासिन ।
वाचक श्री रत्नहर्ष यति हसजयतुते ॥४॥

लक्ष्मीवल्लभ कृत बालावबोध

श्री अगरचन्द नाहटा ने १८वी शताब्दी मे लक्ष्मीवल्लभ नामक सस्कृत, हिन्दी, और राजस्थानी मे अनेक ग्रथो के रचयिता, निर्मित एक टीका का उल्लेख किया है, जो विजयपुर के चतुरजनो के लिये लिखी गई थी. प्रारम्भ मे कवि ने मगलचारो के तीनो प्रकारो का वर्णन तत्कालीन भापा मे किया है ये मगलाचरण इस प्रकार है—

'आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम ।'

लक्ष्मीवल्लभ ने प्रशस्ति का अतिम भाग सस्कृत मे लिख कर इसे पूर्ण किया है—'इति श्री पृथ्वीराज प्रणीत वेलि बालावबोध समाप्त ॥ श्रीमत् क्षेमशाखाया वाचनाचार्य श्री लक्ष्मीकीर्तिगणि शिष्य श्री लक्ष्मीवल्लभेन श्री विजयपुरस्य चतुर जनाभ्यर्थनया कृतौयम बालावबोधः समाप्त ॥श्रीरस्तु॥

हमारे निजी ग्रथालय के एक अन्य गुटके मे सवतसूचक छद वाली टीका सहित एक ऐसी हस्तलिखित प्रति सग्रहित है, जिसमे न तो प्रारम्भिक परिचय ही और न अत मे किसी प्रकार की प्रशस्ति दी गई है. प्रतिलिपिकार अथवा टीकाकार का नाम न होते हुये भी जीर्ण पत्रो पर लिखी यह टीका बडी

सुवाच्य है—वेलि के मूल छद छ की टीका इसमे इस प्रकार दी गई है—'कवि कहे छा। श्री पति इसी कौण की मति छे, जु तुहारा गुण कथै। अर इसो कुण तारू छे जु समुद्र तरै। अर इसो कुण पखी छे गगन आकास लग पुहचै। ओर इसो कुण गरीब छे सुमेर नै उठावै। जो ग्रैसो असमर्थ छै तौ बेसि रहै। जै सेन कह ताकौ जबाब आगिला दुआला मैं कहै छे।'

टब्बा

इनके अतिरिक्त प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने कुछ टबाओ की सूचना दी है। राजस्थानी मे टबा टिप्पणी का पर्याय है टबा उस टीका को कहते है जो मूल पाठ के साथ ही मूल पक्ति के ऊपर या हाशिये मे लिखी जाती है स्वामीजी ने ऐसे दो टबाओ के नाम इस प्रकार बतलाये है—(१) शिवनिधान कृत टबा और (२) कमल-रत्न शिष्य दानचद्र कृत टबा।

प्रो० स्वामी ने जिस मारवाडी या पश्चिमी राजस्थानी मे लिखित टीका की सूचना दी है, वह वास्तव मे टीका न होकर मारवाडी मे लिखी हुई मूल प्रति है. जो वि स. १६७६ मे दक्षिण मे बुरहानपुर के समीप मेहकर मे लिखी गई थी [१]

ब्रजभाषा मे पद्यानुवाद

गोपाल लाहोरी, जिसने ब्रजभाषा मे वेलि का पद्यानुवाद किया है, अपनी प्रशस्ति मे कहा कि मैंने मिरजाखान की आज्ञा लेकर इसका अनुवाद किया है और उसका नाम रसविलास रखा है साथ मे यह भी लिख दिया है कि मैंने निरस मरु-भाषा को त्याग इसका पद्यानुवाद चमत्कारपूर्ण और सुदर ब्रजभाषा मे किया है—

आग्या मिरजाखान की लई करी गोपाल,
वेलि कहे को गुन यहै कृष्ण करौ प्रतिपाल।

मरुभाषा निरजल तजी करि ब्रजभाषा चोज,
अब गोपाल याते लहै सरस अनूपम मोज।

कवि गोपाल यह ग्रंथ रचि लायो मिरजा पास।
रसविलास दे नाउ उनि कवि की पूरी आस॥

इस प्रशस्ति से दो तथ्यो का उद्घाटन होता है. एक तो मिरजाखान नामक एक मुसलमान अधिकारी का वेलि के प्रति अत्याकर्षण और दूसरा डिगल जैसी समृद्ध और सरस भाषा को त्याग कर अनुवाद के लिये ब्रजभाषा को अपनाना.

---

१. Dr L. P. Tessitori. Introduction—Krisna Rukmain Ri Veli. Page. XIV.

सभव है कि अन्य कृष्णभक्त मुसलमानो की भाँति मिरजाखान भी भगवान श्रीकृष्ण के गुणो से अभिभूत हो गया हो, और डिंगल को नही जानने के कारण ही उसने गोपाल लाहोरी को इसका ब्रजभाषा मे अनुवाद करने के लिये आज्ञा दी। इस घटना से ग्रथ की उत्तमता और उसकी प्रसिद्धि तथा उसके व्यापक प्रसार का पता चलता है.

एक ओर गोपाल लाहोरी ने मरुभाषा के निरस होने के कारण उसके त्यागने की बात कही है तो दूसरी ओर कैसी विरोधी बात है कि स्वय गोपाल लाहोरी ने मरुभाषा के ग्रथ को अपने अनुवाद का आधार बनाया जयकीर्ति ने इस ब्रजभाषा के अनुवाद को सामान्य कोटि का माना है

मेवाडी टीका

राजस्थानी की मेवाडी बोली मे लिखी टीका उदयपुर के सरस्वती भडार मे सुरक्षित है.

इस प्रकार हम देखते है कि अनेक विद्वानो द्वारा अनेक भाषाओ और बोलियो मे इसकी जो टीकाएँ लिखी गई है, वे सब वेलि की गुणवत्ता की परिचायक है

महाराज पृथ्वीराज राठौड़

कृत

अन्य रचनाएं

यद्यपि वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज राठौड का अन्य कोई प्रबध काव्य उपलब्ध नही है, फिर भी प्रचुर मात्रा मे मुक्तक काव्य के रूप मे जो सामग्री हमें आज प्राप्त है, वह एक से अधिक प्रबध काव्य के लिये यथेष्ट है. दो दशक पूर्व, साहित्यिक शोध कार्य के अभाव मे इतनी विपुल सामग्री से हमारा परिचय नही था, पर हमारी साहित्यिक बुभुक्षा ने सारी अवगुठित सामग्री को अनावृत कर, वे रत्न शोध निकाले है, जो उस कर्मण्य महाव्यक्तित्व के कीर्ति-कलश को और शुभ्र बना सके हैं. ये सारे के सारे मुक्तक एक-एक से बढकर है, जो विषय वैविघ्य, रचनाशैली, रस तथा भाषा वैभिन्य की बहुरगी आभा से दमक रहे है इनमे यह क्षमता है कि ये पाठको को रसानुकूल भावविभोर कर काव्यानद की प्राप्ति करवा सकते है

विविध स्थानो से प्राप्त सामग्री मे लगभग ४१८ दोहो और ८० गीत, छप्पय, पद आदि का समावेश है, जिनको देखकर आश्चर्यचकित होना पडता है कि अनेक राजनैतिक व सामाजिक कार्यो तथा देश-विदेश मे अनेक युद्धो मे उलझे रहने के पश्चात् भी जितनी अधिक मात्रा मे और जो उत्कृष्ट साहित्य सृजन पृथ्वीराज ने किया है, वह अनूठा है. राजकीय परम्पराओ का निर्वाह और असीम ऐश्वर्य का उपभोग करते हुये यदि बहुधधीय वेलिकार ने अपने मात्र एक ग्रथ 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' से ही जब साहित्यकारो और भक्तो मे वैशेष्य प्राप्त कर लिया तो उनकी अन्य रचनाएँ जो अब तक अविवेचित ही रही है, जब अपने सही परिप्रेक्ष्य मे साहित्यिक-जगत के सम्मुख प्रस्तुत की जायेगी तो निश्चय ही उनका स्थान और ऊँचा उठ जायेगा

उपर्युक्त सारी सामग्री का अस्सी प्रतिशत भक्ति-साहित्य है, पद्रह प्रतिशत वीरो का प्रशस्ति-साहित्य तथा शेष पाँच प्रतिशत साहित्य ही ऐसा है, जो कई अन्य विषयो तथा प्रसगो से सबधित है केवल इसी से पुन. यह तथ्य पुष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज राठौड मूलतः एक भक्त कवि हैं.

इस बिखरी हुई सामग्री को प्राप्त करना कोई सहज कार्य न था. इसके पीछे पू० पिताश्री प० बदरीप्रसाद साकरिया के अनेक वर्षो का अनवरत प्रयत्न तथा लगन

छिपी हुई है पूज्यपाद पडितजी ने अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर; अभय जैन ग्रथालय, बीकानेर; सरस्वती पुस्तक भडार, उदयपुर; इन्द्रगढ पोथीखाना, राज० शोध सस्थान, चौपासनी, जोधपुर तथा निजी पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रथो के अवलोकन के पश्चात् सारी सामग्री को एकत्रित किया था सरस्वती पुस्तक भडार, उदयपुर की सामग्री इकट्ठी करने मे उदयपुर के तत्कालीन क्यूरेटर श्री परमेश्वरलाल सोलकी ने सहायता प्रदान की थी उन्होने कई ग्रथो की प्रतिलिपियाँ करवा कर भेजी, जिनसे सामग्री-चयन मे बडा सुभीता रहा कई प्रतियो का मिलान कर तथा उनके पाठान्तरो और पदच्छेद आदि पर समग्र रीति से मनन करने के पश्चात मुज्ञ पाठको के सम्मुख प्रथम बार एक सही रूप प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है. विश्वास है विद्वानो द्वारा यह सग्रह समादृत होगा

डॉ० तैस्सितोरी ने पृथ्वीराज की अन्य रचनाओ के सबध मे कोई निश्चित सख्या तो नही दी है, पर प्रसगवशात् उन्होने लिखा है कि 'Prithi Raja has left, besides the Veli, quite a number of other small poems, mostly 'sakha-ra-gita', that is to say commemorative songs Of the many anthologies of miscellaneous commemotative songs (phutakara gita), which are in the hands of the hards of Rajputana, there is probably none which does not contain at least one or two examples by Prithi Raja. To give particulars about these smaller compositions would serve no purpose here, and would on the other hand require a careful study of them, which I confess I have had no time to make. It will suffice to say that they mostly refer to contemporary chiefs, among whom Prithiraja's brother Rama Singha, who was assassinated about A D 1578 (Samwat 1634) and for whom our Author seems to have had a special predilection, and that they are not all of equal merit, nor of equal interest. Evidently, they were composed at different periods, hence the differences. To the last years of PrithiRaja's life may be safely ascribed three stotras in duhas: one in honour of the Thakurji (Krsna), one in honour of Shri Ramchandra and one in honour of the Ganga They are full of devotional spirit and must be senile productions "[1]

---

१. 'वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौड पृथ्वीराज री कही' सम्पादक—डॉ० एल. पी. तैस्सितोरी Introduction पृ ६. भावार्थ इस ग्रथ के लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है.

(भावार्थ—वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने कई छोटी छोटी रचनाएँ की है, जो अधिकाशत. 'साख रा गीत' है यानि की स्मरणार्थ-गीत है. इस प्रकार के पद्य-सग्रह मे से कई फुटकर गीत है, जो राजपूताना के चारणो के पास है और इसमे से कदाचित् ही कोई ऐसा सग्रह होगा, जिसमे पृथ्वीराज के कहे हुये एक दो उद्धरण न हो. यहाँ इन छोटे काव्यो का विस्तृत वर्णन देने से कोई लाभ न होगा समयाभाव के कारण मै इनका सपूर्ण अध्ययन नही कर सका हूँ. यहाँ इतना ही कहना उचित रहेगा कि ये अनेक राजाओ के सबध मे है जिनमे पृथ्वीराज का भाई रामसिह भी था, जिसकी हत्या सन् १५७८ (सवत् १६३४) मे कर दी गई थी, और जिसके लिये पृथ्वीराज को स्नेहपूर्ण पूर्वाग्रह था और फिर ये सभी काव्य एक सी रुचि व एक समान उच्चकोटि के नही है स्पष्ट ही, ये सारे काव्य एक स्थान पर निर्मित नही हुये थे और इसीलिये यह अन्तर है उनके जीवन के अतिम भाग के लिये सहजता से यह कहा जा सकता है कि उन्होने तीन स्तोत्र दूहो मे (तीन काव्यो का) निर्माण किया—ठाकुरजी (कृष्ण) रा दूहा, रामचन्द्रजी रा दूहा और गगाजी रा दूहा. ये आपाद भक्तिपूर्ण है और इन्हे वृद्धावस्था की उपज ही कहना चाहिये ।)

ठाकुर रामसिह व पडित सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि मे कवि की अन्य रचनाओ के अन्तर्गत भगवान राम से सबधित ५०, भगवान कृष्ण से सबधित १६५, गगालहरी (भागीरथी ४८, जाह्नवी और मदाकिनी ३०) के ७८ दोहो तथा अन्य फुटकर दोहो और गीतो का उल्लेख किया गया है इनमे से कुछ दोहो और गीतो को अर्थ सहित उद्धृत किया गया है, पर गीतो की सख्या नही दी गई है.[1]

इसके पश्चात प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने स्वयं सपादित वेलि मे अन्य रचनाओ का वर्गीकरण इस प्रकार किया है[2]—

(१) **ठाकुरजी रा दूहा**—कुल सख्या २१५ जिनमे से ५० भगवान राम से तथा १६५ भगवान कृष्ण से सबध रखते है. दोहे विनय प्रधान है

(२) **गंगाजी रा दूहा**—इनकी सख्या ७८ के लगभग है इनमे गगा की महिमा का वर्णन है.

(३) **महाराणा प्रताप रा दूहा**—ये महाराणा प्रताप की प्रशंसा मे लिखे गये हैं.

---

१. वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्रकाशक : हिन्दुस्तानी अेकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण सन् १६३१, पृ० ३० से ४६.

२. वेलि क्रिसन रुकमणी री, प्रकाशक . श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा, प्रथम सस्करण १६५३ पृ० २७-२८.

(४) **प्रकीर्णक दूहे**—ये विविध विषयो पर लिखे गये है, पर प्रधानतया भक्ति, वैराग्य और नीति सबधी है

(५) **प्रकीर्णक गीत**—ये विविध विषयो से सबधित हैं.

(६) **नख-शिख**—यह रचना पिंगल भाषा की है. राधाकृष्ण का नख-शिख शृगार वर्णित है

श्री अगरचद नाहटा ने सख्या इस प्रकार बतलाई है[१]—

(१) रामस्तुति ५० दूहा
(२) कृष्णस्तुति १६५ दूहा.
(३) गगास्तुति ८० दूहा
(४) दसमभागवत रा दूहा १८४.

श्री अगरचद नाहटा द्वारा उल्लिखित दसमभागवत के दूहे अद्यावधि अलग से देखने मे नही आये है सभव है कि 'वसदेवरावउत' के दोहे भागवत् के दसमस्कध की कथाओ की ओर सकेत करने वाले होने के कारण ये दोहे दसमभागवत् के दोहो के नाम से भी प्रसिद्धि पा गये हो श्री नाहटा से पत्र-व्यवहार करने पर भी वे इन दोहो के अलग अस्तित्व पर प्रकाश नही डाल सके है.

इसके एक वर्ष पश्चात् लेखक ने अपने एक लेख 'महाराज पृथ्वीराज राठौड की अन्य रचनाएँ' मे नई गवेषणाओ के आधार पर प्रथम बार साहित्यिक जगत के सम्मुख एक विस्तृत तथा नई सूचनाओ से सभर सूची प्रस्तुत की थी.[२]—

(१) विठ्ठल रा दूहा (गुरु प्रार्थना)	१२
(२) वसदेवरावउत रा दूहा (श्रीकृष्ण स्तुति)	१८५
(३) दसरथरावउत (दसरथदेवउत) रा दूहा (राम स्तुति)	५४
(४) भागीरथी रा दूहा (श्री गगा स्तुति)	८८
(५) भक्ति विषयक स्फुट गीत	१६
(६) पद (हरियश)	१०-१५ अनुमानतः

उपर्युक्त रचनाओ के अतिरिक्त महाकवि द्वारा रचित फुटकर काव्य इस प्रकार उपलब्ध है—

---

१ पृथ्वीराज-जयती (सन् १९६०) पर दिये गये भाषण मे से उद्धृत, जो राजस्थान भारती भाग ७, अक १-२ मे प्रकाशित हुआ है।

२ राजस्थान भारती का पृथ्वीराज राठौड़ जयती विशेषाक का परिशिष्टाँक, भाग सात, अक ३ पृ० ३९

(१)	प्रस्तावित फुटकर दूहा (नीति, ऐतिहासिकादि)	६०
(२)	प्रशसात्मक दोहे (माधोदास १, केसो १, मालो आढो १, गाडण रामसिंह १)	४
(३)	प्रताप रा दूहा	१४
(४)	अकबर से प्रताप सबधी वाद की चिता का चपावती के दोहे का उत्तर (मनहर छद (पिंगल)	१
(५)	वीर, जूझार और राजाओ के प्रशसात्मक गीत	५१
(६)	चपावती वियोग रा दूहा	१५
(७)	लालादे सबधित दोहे	
(८)	पृथ्वीराज और वैश्वानर सवाद रा दूहा	३

'राजस्थानी सबद कोस' के रचयिता श्री सीताराम लालस ने लिखा है कि पृथ्वीराज के लिखे पाँच ग्रथ मिलते है[1]—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री, (२) दसमभागवत रा दूहा, (३) गगा लहरी, (४) वसदेरावउत और (५) दसरथरावउत. श्री सीतारांम लालस ने भी श्री अगरचद नाहटा की भाँति 'दसमभागवत रा दूहा' की दोहा सख्या १८४ मानी है उन्होने लिखा है कि 'दसमभागवत रा दूहा' मे कृष्ण भक्ति सबधी दोहे है. तब स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि लालसजी ने 'वसदेरावउत' नामक जिस रचना का उल्लेख किया है उसका वर्ण्य विषय क्या है ?

डॉ० हीरालाल माहेश्बरी ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' मे पृथ्वीराज राठौड के अन्तर्गत लिखा है कि इनकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध है[2]—

(१) वेलि क्रिसन रुकमणी री
(२) ठाकुरजी रा दूहा.
(३) गगाजी रा दूहा
(४) फुटकर दोहे और गीत आदि

डॉ० माहेश्वरी ने आगे लिखा है कि "इनके अतिरिक्त मिश्रबधुओ ने इनके एक ग्रथ **प्रेमदीपिका**[3] का उल्लेख किया है, जो ब्रजभाषा की रचना है इसी प्रकार

---

१. 'राजस्थानी सबद कोस' के प्रथम खण्ड की प्रस्तावना के 'राजस्थानी साहित्य का परिचय पृ० १३८. प्र० राजस्थानी शोध सस्थान, चौपासनी, जोधपुर।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, प्र० आधुनिक पुस्तक भवन, कलकत्ता. पृ० १५५.

३. मिश्र बधु विनोद प्रथम भाग

डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने **श्यामलता**[1] का उल्लेख किया है. किंतु इसका कोई विशेष परिचय उन्होने नही दिया है दोनो ही रचनाएँ सदेहास्पद है' ... क्योकि किसी राजस्थानी विद्वान ने इसका अद्यावधि उल्लेख नही किया है हाँ, ब्रजभाषा मे लिखित इनके फुटकर दोहे अवश्य मिलते हैं."

डॉ० गोरधन शर्मा ने अपने ग्रथ 'राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुज' मे लिखा है कि 'पीथळ के निम्न डिंगळ ग्रथ प्रसिद्ध हैं—१ वेलि क्रिसन रुकमणी री, २. दसमभागवत रा दूहा, ३. गगा लहरी, ४ वसदेरावउत, ५. दसरथरावउत, ६ फुटकर पद गीतादि.......... ....'दसमभागवत रा दूहा' शात रस की कृष्णभक्ति को आधार बना, लिखी हुई रचना है गगालहरी मे भागीरथी की स्तुति के ८० के लगभग दोहे रचे गये है 'दसरथरावउत' और 'वसदेरावउत' मे क्रमश राम व कृष्ण भक्ति के दोहे है[2]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि डॉ० तैस्सितोरी से लगाकर आज तक के विद्वानो मे उनकी अन्य रचनाओ की निश्चित सख्या तथा रचनाओ मे प्रयुक्त विभिन्न छदो की सख्या के बारे मे मतैक्य नही है डॉ० तैस्सितोरी ने कवि की अन्य रचनाओ का विवेचन न कर इगित भर कर दिया है ठा० रामसिंह और स्व० पारीकजी ने तीन ग्रथो की एक निश्चित सख्या दी है, पर स्फुट गीतो और दोहो आदि की सख्या नही दे पाये हैं. प्रो० नरोत्तमदास स्वामी ने अपेक्षाकृत वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है. जहाँ तक राम, कृष्ण और गगा से सबधित काव्यो की छद सख्या का वर्णन हैं, दोनो की सख्या समान है, पर स्वामीजी ने **नख-शिख** नामक एक नई रचना का उल्लेख किया है, जो पिंगल भाषा मे है, जिसका वर्ण्य विषय राधाकृष्ण का शृगार है तथा जो छप्पय छद मे लिखी गई है वस्तुत राधाकृष्ण के शृगार से सबधित कई फुटकर छद हमे प्राप्त है, पर इस नाम की रचना का पता नही चला है. श्री अगरचद नाहटा ने अपने भाषण मे राम, कृष्ण और गगा स्तुति के अतिरिक्त दसमभागवत के जिन १८४ दोहो का उल्लेख किया है, काफी चर्चा का विषय बन गया है स्वतंत्ररूप मे दसमभागवत के दोहे आज तक प्राप्त नही हुये हैं. मेरी अपनी मान्यता है कि **दसमभागवत रा दूहा** और **वसदेवरावउत रा दूहा** दोनो एक ही है ऐसा स्वीकार कर लेने के पश्चात् भी दोनो की संख्या के अतर का प्रश्न तो खडा ही हैं श्री सीताराम लालस ने भी दसमभावगत के दोहो का उल्लेख किया है और उन्होने भी इसकी छद सख्या १८४ ही दी है पर दोनो ने कोई उद्धरण नही दिये है श्री हीरालाल माहेश्वरी ने जिन ठाकुरजी के दोहों का उल्लेख किया है, उसका उल्लेख डॉ० तैस्सितोरी के अतिरिक्त अन्य किसी भी विद्वान ने नही किया हैं.

---

१ अकबरी दरबार के हिंदी कवि, पृ० ४२, प्रकाशनकाल स० २००७.

२ राजस्थानी साहित्य के ज्योतिष्पुज, पृ० ३४, प्रकाशक · चिन्मय प्रकाशन, जयपुर।

डॉ० तैस्सितोरी ने तो कोष्टक मे कृष्ण लिखकर सारी शकाओ को निर्मूल कर दिया है वे यह मानते है कि ठाकुरजी के दोहो से उनका तात्पर्य वसुदेवरावउत के दोहो से ही है, पर डॉ० माहेश्वरी के उल्लेख मे किसी स्पष्टता के अभाव मे ठाकुरजी के दोहो को क्या समझा जाये ? क्या इनको **वसुदेवरावउत रा दूहा** ही माना जाय या दसरथदेवउत तथा वसुदेवरावउत के दोहो के सम्मिलित रूप को **ठाकुरजी रा दूहा** नाम से अभिहित किया जाय ? इसके अतिरिक्त किस ग्र थ के कितने छद प्राप्त हुये हैं, उसकी सख्या भी डॉ० माहेश्वरी नही दे सके है

डॉ० गोवर्द्धन शर्मा ने अन्य ग्र थो की छद सख्या न देकर केवल गगालहरी के ८० छदो का जिक्र किया है उनके मत से 'दसमभागवत रा दूहा' और वसदेरावउतरा दूहा दोनो अलग अलग ग्रथ है पर दोनो का वर्ण्य विषय कृष्णभक्ति ही है

हमारे पास जो हस्तलिखित सामग्री है उसमे इन्ही वसदेवरावउत के दोहो का वर्गीकरण **श्री परमेसरजी रा दूहा** तथा **दसमभागवत रा दूहा** की भाँति किया गया है अतएव अब यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि **वसदेवरावउत रा दूहा परमेसरजी रा दूहा, ठाकुरजी रा दूहा** तथा **दसमभागवत रा दूहा,** सब एक ही है सभी दोहो की अन्तिम अर्द्धाली मे **वसदेवरावउत** से भगवान श्री कृष्ण को सबोधित किया गया है इसीलिये इसका **'वसदेवरावउत रा दूहा'** ही अधिक सार्थक नाम है

अथ श्री परमेश्वरजी रा दूहा

पूठी रख परमेस, आगल रख तु ईसवर ।
सुज दाहिणै सुरेस, वामै वसदेरावउत ।।

अथ दसमभागवता रा दूहा

तु लिषमी उर लागि, पनग गोद नद पालणै ।
काइ पौढीयौ पिरागि, वड सिर वसदेरावउत ।।

अपने भाषण मे श्री अगरचद नाहटा ने **दौ सौ बावन वैष्णवन की वार्ता** मे से एक प्रसग को उद्धृत करते हुये कहा कि वेलि के अतिरिक्त पृथ्वीराज ने **स्यामलता** ग्र थ का निर्माण भी किया था—

'सो वे पृथ्वीसिहजी कविता बहोत करते सो उनने कवित्त, सवैया, दोहा, चौपाई ऐसे अनेक प्रकार की कविताएँ रची है और रुकमणी वेल और स्यामलता इत्यादि ग्र थ हु बनाये ।' इसी प्रकार **मिश्र बंधु विनोद** मे कवि द्वारा रचित **प्रेम-दीपिका** का उल्लेख है, पर उसका आधार अज्ञात है. दोनो ही कृतियो के स्वतत्र रूप मे अस्तित्व मे होने की शका है. प्रो० स्वामी ने जिस **नख-शिख** नामक ग्र थ

का उल्लेख पृथ्वीराज की ग्रन्य रचनाग्रो के ग्रन्तर्गत किया है, वह भी एक स्वतत्र रचना न होकर कुछ पदो का सग्रह भर है **रुकमण रमणाविषयक** पद जो पृथ्वीराज द्वारा रचित है इसी ग्रोर सूचित करता है सभव है कि **स्यामलता** भी इसी कृति का ग्रवर नाम हो

साहित्य-जगत के सम्मुख प्रथम बार राजस्थान-भारती के माध्यम से मैने इनकी रचनाग्रो पर विस्तृत प्रकाश डाला था ग्रौर कई नई रचनाग्रे प्रकाश मे ग्राई थी **विट्ठल रा दूहा** सर्वथा नई रचना है, जिसका उल्लेख ग्रद्यावधि किसी विद्वान ने नही किया है इसी प्रकार ग्रनेक गीत, दोहे ग्रौर पद, जो पहिले ग्रज्ञात थे ग्रब ग्रनेक ग्र थो के ग्रवलोकन के पश्चात् हमे प्राप्त हैं इससे इन दोहो, गीतो ग्रौर पदो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है स्व. पारीकजी ने **वसदेवरावउत रा दूहा** की सख्या १६५ बतलाई थी, पर ग्रब वह बढ कर १८३ हो गई है **गगाजी रा दूहा** की सख्या जहाँ पहले ७८ मानी गई थी, ग्रब वही सख्या ८८ हो गई हे इसी प्रकार पदो ग्रौर गीतो की सख्या मे भी वृद्धि हुई है ग्रौर ग्रब हमारे पास इतनी सामग्री एकत्रित हो गई है कि उसका पुनर्वैज्ञानिक विभाजन ग्रावश्यक हो गया हे.

वेलि के ग्रतिरिक्त पृथ्वीराज राठौड की समस्त मुक्तक रचनाग्रो को मोटे तौर से दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(१) भक्ति परक ग्रौर (२) स्फुट भक्तिपरक रचनाग्रो के ग्रन्तर्गत कवि की निम्न रचनाएँ ग्राती है—

(१) भक्ति परक रचनाएँ

(क) गुरुभक्ति बल्लभदेवउत (विट्ठल) रा दूहा	१२ दोहे
(ख) रामभक्ति दसरथरावउतरा रा दूहा	५५ ,,
(ग) कृष्णभक्ति वसदेवरावउत रा दूहा	१८३ ,,
(घ) ईश्वर स्तुति विषयक पद	१५ पद
(च) **उद्‌बोधन**	
(i) उद्‌बोधन के छप्पय	२१ छप्पय
(ii) उद्‌बोधन के पद	४ पद
(iii) उद्‌बोधन के दोहे	४२ दोहे
(छ) **गंगाजी रा दूहा** (भागीरथी ५८, जाह्नवी २६, मदाकिनी १)	८८ दोहे

(२) स्फुट रचनाएँ

(ट) प्रशस्ति काव्य (वीर, जूझार ग्रौर राजाग्रो ग्रादि के प्रशसात्मक गीत)	३८ गीत
(ठ) प्रताप रा दूहा	१४ दोहे

(ड) प्रशसात्मक दूहा (माधोदास १, केसो १, मालो व आढो १, गाडण रामसिह, १ — ४ ,,

(ढ) चपा से सबधित दोहे — १६ ,,

(त) लालादे सबधित दोहे — ३ ,,

(थ) गुरु सबधी दोहे — २ ,,

(द) अकबर से प्रताप सबधी वाद पर चपावती को दिया गया उत्तर — १ पद.

पृथ्वीराज राठौड की भक्ति, शौर्य, विद्वत्ता और काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर अनेक उच्च कोटि के कवि व भक्तजनो ने कविवर की प्रशसा मे उपयुक्त समय पर विशिष्ट गीत व छद लिखे हैं, जो उनकी प्रभविष्णुता के साक्षी है भक्तमाल के रचयिता नाभादास, भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास, राष्ट्रकवि दुरसा आढा, कविवर मोहनरामजी तथा भोजक यादव आदि कुछ ऐसे ख्यातनाम कवि है, जिन्होने पृथ्वीराज की भूरि-भूरि प्रशसा की है. कई आधुनिक कवियो ने भी उनकी प्रशसा मे उन्हे भावभीनी काव्याजली अर्पित कर कवि-ऋण से उऋण होने का प्रयत्न किया है. इस संबध मे शादूल राजस्थानी रिसर्च इस्टीट्यूट, बीकानेर, उसके द्वारा प्रकाशित शोध-पत्रिका 'राजस्थान भारती' और उसके विद्वान सम्पादक आचार्य प० बदरीप्रसाद साकरिया का आभारी होना पडेगा, जिन्होने देश के विविध प्रतिष्ठित विद्वानो से कवि के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डलवाकर पृथ्वीराज विशेषाक व परिशिष्टाक के माध्यम से हमे नई दिशा दी.

उपर्युक्त वर्गीकृत सामग्री को निम्नाकित दो विभागो मे विभाजित कर प्रकाशित किया जा रहा है—

(क) पृथ्वीराज कृत ग्र थ (वेलि के अतिरिक्त)

(ख) प्रकीर्णक

पृथ्वीराज कृत ग्र थो मे—(१) विट्ठल रा दूहा, (२) वसदेरावउत रा दूहा, (३) दसरथदेवउत रा दूहा तथा (४) भागीरथी रा दूहा का समावेश है जबकि प्रकीर्णक मे शेष सामग्री को निम्न उपविभागो मे विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है—(च) ईश्वरभक्ति विषयक पद, (छ) उद्बोधन के पद और दोहे आदि, (ज) महाराणा प्रताप रा दूहा, (झ) प्रशस्ति गीत, (ट) स्फुट, (ठ) पृथ्वीराज राठौड सबंधी प्रशसात्मक सामग्री.

वल्लभदेवउत (विठ्ठल)

रा

दूहा

विठ्ठल रा दूहा

भारतीय संस्कृति मे गुरु की महिमा अनत है. गुरु के बिना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती और बिना ज्ञान के मुक्ति प्राप्त करना असभव है कही गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि मानकर उसको साक्षात् परब्रह्म की कोटि मे रखा गया है—

गुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वर· ।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नम ।।

तो दूसरे स्थान पर गुरु को परमात्मा से भी शीर्षस्थान दिया गया है—

गुरु गोविंद दोनो खडे, किसके लागू पाय ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दियो बताय ।।

इसी प्रकार 'आचार्य देवो भव.' आदि कई ऐसे उद्धरण हैं, जिनसे गुरु के अपरिहार्य महत्व को समझा जा सकता है पृथ्वीराज राठौड ने भी गुरु किया, पर उन्होने जिन गुरुगणो के नामो का सकेत किया है, उससे भगवान दत्तात्रेय का स्मरण हो आता है उन्होने कुत्ते से लेकर अन्य अनेक पशुपक्षियो तक को अपना गुरु बनाया वेलिकार इस सीमा तक तो नही गये है, पर उन्होने दो छदो मे सात गुरुओ के नामो का साभार उल्लेख किया है एक दोहा हमे दयालदास कृत आर्याख्यान के कल्पद्रुम से प्राप्त हुआ है वह इस भाँति है—

दीक्षा गुरु विठलेश है, गुरु गदाधर व्यास ।
चतुराई गुरु रामसिंह, तीन गुरु पृथिदास ।।

आचार्य वल्लभाचार्य के पुत्र और वल्लभ सम्प्रदाय के द्वितीय आचार्य श्री विठ्ठलनाथजी महाराज इनके धर्मगुरु थे, गदाधर व्यास इनके विद्या गुरु तथा लौकिक व्यवहार के गुरु इनके अग्रज रामसिह कल्याणसीओत रहे. अपने भाई रामसिह की प्रशसा करते हुये पृथ्वीराज ने उन्हे तीन युगो मे तीन भिन्न भिन्न रामावतारो के समान और कलियुग मे राम का ही चौथा अवतार रामसिह को बताते हुये कहा है कि इस पृथ्वीतल पर केवल चार राम हुये हैं. इनके अतिरिक्त पाँचवाँ राम होने वाला नही है—

ग्रेक फरसराम सुतन जमदगन नरेसर ।
ग्रेक दसरथ सुत सु तो सारग धनुषधर ।
इक वसुदै सुत सम सु तो हळधरण महाबळ ।
ग्रेक कलावत राम खडगधारी खाडण खळ ।
ग्रेक ग्रेक हुग्रा ग्रेक ग्रेक जुग, क्रत त्रेता द्वापर कळि ।
हुवौ न हुइये पाचमो, चार राम रविचक्क तळि ।।

(क्रमश चार युगो मे चार राम हुये है एक महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम, द्वितीय सारग नामक धनुष को धारण करने वाले दशरथी भगवान् श्रीराम, तृतीय वसुदेव की पत्नी रोहिणी से उत्पन्न, हल को शस्त्ररूप मे धारण करने वाले श्रीबलराम ग्रौर चौथे शत्रुविनाशक तलवारधारी, बीकानेर के राजा कल्याणमल के पुत्र रामसिह.)

ग्रन्यत्र रामसिह की प्रशसा करते हुये कवि ने उन्हे मन पर विजय प्राप्त करने वाले परमज्ञानी शुकदेव, रूप मे कामदेव, युद्ध मे ग्रर्जुन, दान मे कर्ण, सत्य भाषण करने मे युधिष्ठिर ग्रौर तेज मे सूर्य के समान ग्रकित करते हुये कहा है कि जिस प्रकार दूहो मे श्रेष्ठ दूहा 'चोटीग्राळो दूहो' होता है, ठीक इसी प्रकार इन सब मे शीर्षस्थ रामसिह है 'चोटीग्राळो दूहो' राजस्थानी भाषा मे प्रकार ग्रौर प्रसार की दृष्टि से चोटी (मुख्य व सर्वोपरि) के समान है. यह दूहा दूहो के विभिन्न रूपो मे शरीर मे शिखा की भाँति सर्वोपरि है दूहे के रचयिता पृथ्वीराज राठौड कहते है कि मेरे बडे भ्राता भी ऐसे ही चोटी के गुणो से युक्त है—

मन सुकदेव तन कामदेव कळि ग्ररजुण दति क्रन, वळी वखाणिस केहा ।
वाच जुजिट्ठल तेज रवि सम राम कल्याण सुतन ग्रै दूहइ जेहा ।।

जिम ग्रन्य दोहे मे दूसरे चार गुरुग्रो का वर्णन किया गया है, वह वस्तुतः गाडण रामसिघ द्वारा पृथ्वीराज की प्रशसा मे कहे गये गीत का उत्तर है. पृथ्वीराज ने यहाँ ग्रपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुये कहा है कि मै जो कुछ भी हूँ, उसका श्रेय मेरे सर्वगुण सम्पन्न गुरुग्रो को ही है—

गुण पूरा गुरु सुगुरा, सायर सूर सुभट्ट ।
रामो रतनो खेतसी, गाडण गांधी हट्ट ।।

उपर्युक्त दोहा हमे ग्रनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर के राजस्थानी विभाग के गुटका न० १२६ मे से प्राप्त हुग्रा है. इन चार गुरुग्रो से संबधित ग्रधिक जानकारी के लिये विस्तृत शोध की ग्रपेक्षा है.

गुरु की सहज कृपा को देखते हुये उनसे उऋण होने के लिये उनके प्रति जितना भी पूज्यभाव रख कर उनके गुणो का वर्णन ग्रौर प्रशसा की जाय, वह

थोड़ी ही समझी जाती है. अपने आध्यात्मिक और दीक्षा गुरु श्री विट्ठलनाथजी के प्रति जिस पूज्य भावना और उनकी अवर्णनीय सहज कृपा का दिग्दर्शन पृथ्वीराज ने अपने बारह दोहों में किया है, वह बहुत ही महत्वपूर्ण और उपर्युक्त दोनों प्रकारों के गुरुओं से सर्वोपरि है. आध्यात्मिक गुरु ही एक ऐसा महान पुरुष होता है, जो मनुष्य रूप धारी जीव में अनूठी चित्शक्ति भरकर उसे अपने स्वरूप को समझने वाला वास्तविक मानव बना देता है, परमानंदमय भगवद्-स्वरूप बना देता है। अतः गुरु का अमर उपदेश होता है कि—

किन्नाम रोदिषि सखे त्वयि सर्वशक्ति,
आमन्त्रयस्य भगवन् भगदंस्वरूपम् ॥

पृथ्वीराज द्वारा कहे गये बारह के बारह दोहे गुरुमहिमा और गुरुभक्ति के साकार रूप हैं. गुरु की कृपा बिना अज्ञानांधकार दूर नहीं होता. अंधकारमय जगत में अंधे को प्रकाश देने की सामर्थ्य गुरु के बिना है ही किसमें ? उसके नाम और रूप का प्रभाव, उसका सुमिरन एवं उसकी कृपा-सातत्य ही से मनुष्य का त्राण है, इसीलिये कवि ने बड़े चमत्कारिक ढंग से कहा है कि उसे तीन लोकों में प्रयत्न करने पर भी जब कुछ दिखलाई नहीं पड़ रहा था, तब गुरु ने उसे ज्ञान-दर्पण और ज्ञान-दीपक प्रदान कर उसके हृदयाकाश में प्रशस्त प्रकाश फैलाकर, अज्ञानांधकार को दूर कर दिया—

आनि त्रिलोकि त्रिवाह, सोझंतां सूझै नहीं ।
आरीसौ आपाह, दीठो वल्लभदेवसुत ॥
जिण वीठळ जूथेह, पूछै प्रभु ज्यां पेखियौ ।
दीपक दीह करेह, जाणै जग-चख जोईयौ ॥

इस आशय के एक संस्कृत श्लोक को देखिये—

अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मिलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

गुरु तो एक ऐसी पारसमणि के समान हैं, जो लोहे को स्पर्श कर कंचन ही नहीं बना देती, पर उसे अपने समान पारस ही बना देती है. ऐसे ही ये गुरु हैं, जिन्होंने मुझे आत्मज्ञान का उपदेश देकर यह प्रतीति करवा दी कि त्रिलोक में यदि कोई सत्य है तो वह परमानंद स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ही हैं, शेष सब असत्य है—

लोहे पारस नीव श्री षिण आधारै धाम ।
कूडै मो, साचो क्रसन, मेळणहार प्रणाम ॥

गुरुवर्य श्री विट्ठलनाथजी ने मेरा मार्ग-दर्शन करते हुये यह भी निर्देश किया कि जिस प्रकार चतुर्थी का चंद्रमा और विशेषकर भाद्र शुक्ल चौथ का चंद्रमा देखना

अमगलकारी है ठीक उसी प्रकार असतजनो का साथ तो क्या उनका मुख देखना भी अमगलकारी है—

चंदा चौथि तणाह, सुकला भाद्रव सगमे ।
अभगत मुख अेहाह, श्रीवल्लभ सुत बाल ससि ।।

पृथ्वीराज के जीवन में परिवर्तन लाने वाली एक उल्लेखनीय घटना वल्लभ सप्रदाय मे सादर कही जाती है. कहा जाता है कि अपने गुरु विट्ठलनाथजी के शरण मे जाने के पश्चात्, कवि ने मानव-गुण-गाथा गाना बद कर दिया था. कवि को यह अनुभव हुआ कि उसने अब तक अपना जीवन व्यर्थ गँवा दिया था अब वह घोर पश्चाताप करता है—

मैं हरि तजि गुण मानव्याँ, जोडै किया जतन्न ।
जाणि चित्तभ्रम बाधिया, गळि गाधाह रतन्न ।।

और—

प्रिथ जु मै अवरापणै, गुण छडै गोपाळ ।
मणि गूथै मोताहळा, मड गळ घाती माळ ।।

'गदहे के गले मे रत्नो को बाँधना,' और 'मुर्दे के गले मे मोतियो की माला पहिनाना' आदि उक्तियाँ कवि के पश्चाताप की सूचक हैं.

हमारे निजी सग्रह मे अज्ञात कवि चद का लिखा 'श्री हरिगुण कष्टहरण स्तोत्र'[1] ग्रथ उपलब्ध है, जिसके प्रारम्भ के छदो से मालूम पडता है कि स्वय कवि चद को भी मानव यशोगान से घोर विरक्ति हो गई थी और वह प्रारम्भ के छदो मे अपना पश्चाताप प्रकट करता है. कवि कहता है कि मैने अपने जीवन मे निम्न श्रेणी के मनुष्यो की असत्य और अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशसा की है अपढ और मूर्खो को कविराय, कायरो को सेन-थभ, कृपणो को दाता-सूर, कुलक्षणी और कुलहीनो को कुलीन, साधारण पढे लिखो को पडित ब्राह्मण आदि कहा है. आगे कवि कहता है कि आजतक एक मूर्ख की भाँति हे भगवान ! आपको भूल कर तथा आपके गुणानुवाद को तज कर अक्षम्य अपराध किया है. आप मुझे क्षमा कर दीजियेगा—

अेह गुनो मोमे अधिक पडियो लिखमी-पीव ।
बगस बगस मा बाप हिव, दयानिधान दईव ।।

१ वरदा, वर्ष. १५ अक १. 'श्री हरिगुण कष्टहरण स्तोत्र' लेखक . आचार्य प० बदरीप्रसाद साकरिया।

लोभ घणै घण लालचै, जोया नर बहु जाच ।
कूड कथा सहु को कहण, (पिण) साई हदो साच ।।

मानव-प्रशसक काव्य से स्वय सत तुलसीदास को भी विरक्ति थी अतएव उन्होने लिखा है कि जब जब कोई कवि किसी मनुष्य का यशोगान गाने लगता है तो वाणी की अधिष्ठात्री वागेश्वरी बडी अप्रसन्न होती है—

'सिर धुनि गिरा बहुत पछितानी'

ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक है कि भक्त कवि पृथ्वीराज ने ज्ञान प्राप्नि के पश्चात् मानव-प्रशसायुक्त काव्यो को सर्वथा तिलाजली दे दी हो स्वय कवि ने अन्यत्र लिखा है कि—

हू ऊजड हालियो, बार आसनी हूती ।
म्है कोहर सीचियो, तीर सुरसरी वहती ।।
मेल्है चदण कठ, आवि बावळियो घासियो ।
छाडै सज्जण सयण, वीडरा भीतर वसियो ।।

कीरतन न कीधो श्रीक्रिसन, कर जोडै त्रयभुवण कर ।
वासियो जु मै वाखाणियो, नारायण विणि अवर नर ।।

विट्ठल रा दूहा

(१)

लोहै पारस नीब श्री, षिण अधारै धाम।
कूडै मो साचो कुसन, मेळणहार प्रणाम ॥

(२)

जिण अम सु आलोज, दामोदर दरसावीयौ।
सगळा पायो सोज, वाल्हौ वलभदेवऊत ॥

(३)

पाए पाणेजाह, ग्रहि वाल्हा गोकळ तणा।
वीठळ वादेवाह, आतम ऊमाहौ कियौ ॥

(४)

वाउवौ वीठळ केह, चलणे चालेवा करै।
काही क्रम्म तणेह, बधणे बाधाणू रहै ॥

(५)

प्रिथु प्रिथमी पिड पार, माथौ ताइ मथुरा मडळि।
सु यो निलाट ससार, वीठळ तिलक वहा रै ॥

---

१ षिण = क्षण। कूडै = झूठा, अज्ञानी। साचो = सत्य स्वरूप, सच्चिदानद। मेळणहार = भेट कराने वाला, गुरु।

२ आलोज = मन के भाव, सकल्प। सगळा = सभी, सब। सोज = १ शोध, २ वही, ३ सामग्री। वाल्हौ = प्रिय। वलभदेवऊत = विठ्ठलनाथजी।

३ पाणे = हाथो से। पाए = पैरों से। वादेवाह = वदना करने के लिये। ऊमाहौ = उत्साह, उमग, उल्लास।

४. वाउवौ = वातग्रस्त। चलणै = पाँवो से। काही क्रम्म तणेह = अशुभ कर्मो के कारण। बधणै = बधन से, रस्सी से। बाधाणू = बँधा हुआ।

५ निलाट = भाल। वहारै = रक्षा करने को, सुधि लेने को।

पाठान्तर—

१. नीव। खण।

४. बधाणो।

५. प्रिथमी पड।

(६)

नर अन नीचै ठाम, वसतौ वेसासै नही ।
वाइस मन विसराम, वीठळ धजा वहा रै ।।

(७)

आनि त्रिलोक त वाह, सोझता सूझै नही ।
आरीसौ आपाह, दीठौ वल्लभदेवऊत ।।

(८)

जिण वीठळ जूथेह, पूछै प्रभु ज्या पेखियौ ।
दीपक दीह करेह, जाणै जग चख जोइयौ ।।

(९)

काही कपट करेह, का हु जु तूं होडै किये ।
लोहे लाकड केह, वीठळ वेदन वेख्खियै ।।

(१०)

चदा चौथि तणाह, सुकला भाद्रव सगमे ।
अभगत मुख अेहाह, श्री वल्लभसुत बाल-ससि ।।

(११)

अवरा मत्र अपार, कूवा ना कूरम जिही ।
बैठा करि बाधार, विठलेसर दीधा वयण ।।

(१२)

जग बैसे जगतोइ रहै, प्रिथ करि छाई परक्ख ।
तू घर वल्लभदेव सुत, वीठळ[1] बिया विरख्ख ।।

---

६ अन = अन्य । ठाम = स्थान । वेसासै नही = विश्वास नही करता है । तसल्ली नही होती है । वाइस = कौआ ।

७. सोझता = ढूढने पर भी । आरीसौ = दर्पण, ज्ञान । आपाह = आप मे । आरीसौ आपाह = स्वात्म रूप दर्पण ।

८. जूथेह = समूह में । ज्या = जिन्होने । जगचख – सूर्य । जाणै = मानो ।

९ होडै = स्पर्धा । करेह = करता है । वेखिये = देखिये । वेदन = वेदना । लोहे लाकड़ = एक न्याय दृष्टात ।

१० अभगत = भक्ति नही करने वाला, अभक्त । अेहाह = ऐसा ।

११. अवरां = दूसरो को । कूरम = कूर्म । कछुआ । बाधार = बधिर ।

१२ जगतोइ रहै = जाग्रत रहे । परक्ख = पारख । बिया = दूसरा । विरख्ख = वृक्ष ।

पाठान्तर—

९ वेदन लीख्खिये ।

वसदेरावउत रा दूहा

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मन सृजाम्यहम् ।
परित्राणायाम् साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म सस्थापनार्थाय सभावामि युगे युगे ।
(अ. ४, श्लोक ७-८, गीता)

गीता के उपर्युक्त श्लोकानुसार यह सर्व विदित है कि जब जब ससार मे धर्म की हानि होती है और पाप का भार बढ जाता है, भगवान इस पृथ्वी पर अवतरित हो दुष्टो का सहार कर भक्तो का उद्धार करते है जिस प्रकार राम का अवतार लेकर रावण सहित अनेक राक्षसो का सहार किया इसी प्रकार यमुना के किनारे मथुरा मे कृष्णावतार लेकर कस सहित अनेक दुष्टो का दमन किया—

मथरा नगर मझार, तट जायो जमना तणैं ।
बाळा तिणि बळिहार, वेळा वसदेरावउत ।
अवतरियौ अवतार, तू मेटण भगता तणा ।
भगवत टालण भार, वसुधा वसदेरावउत ।।

भगवान श्रीकृष्ण ने अवतार तो अवश्य लिया पर अन्तत वे सर्वव्यापी सर्व-शक्तिमान एव सर्वान्तरयामी है. इसीलिये वेलिकार ने कहा—

पूठी रुख परमेस, आगे रुख तू ईसवर,
सुजि दाहिणै सुरेस, वामै वसदेरावउत ।

ऐसे परमेश्वर का भजन नही करने पर ही तो मनुष्य को चौरासी लाख योनियो मे से पसार होना पडता है आवागमन के इस चक्कर से बच निकलने का आधार कोई मानव अथवा कोई मानवी शक्ति न होकर मात्र हरिनाम है—

जपिया मानव जाप, जीहाँ हरि जपियौ नही,
मू पाडियउ मा-बाप, वासौ वसदेरावउत ।

वैसे मनुष्य गुणहीन है. पर प्रभुभक्ति से ही वह गुणो से युक्त हो जाता है. पृथ्वीराज ने तिल के पुष्प की एक मौलिक उपमा के सहारे इस भाव को अत्यन्त सुदरता से अभिव्यक्त किया है और प्रार्थना की है कि हे प्रभु ! मै आपका कृपाकाक्षी हूँ, मुझे भी गुणयुक्त कर दीजिये—

ग्रेह ग्रम्हा ग्ररदास, प्रिथु जपै तिल-पुहुप पार।
वाया तो जस वास, वासै वसदेरावउत।

अगर किसी प्रकार सच्ची भक्ति के बिना यह अमूल्य मणि के समान जीवन, काच की भाँति फूट कर नष्ट हो गया तो हे लक्ष्मीपति! इसकी उपादेयता क्या होगी? इसी तथ्य पर गभीरता पूर्वक विचार कर कवि कहता है कि मुझे अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा न होकर केवल आपकी सच्ची भक्ति ही चाहिये—

श्रीवर सू विण साच, जेहै मिण मानव जनम।
केसव थियो ज काच, विणसै वसदेरावउत।

घडियाल और हथोडे की एक अभिनव उपमा से कवि ने हरि विमुख जनो के कपाल को कूटने की बात कह कर यह अभिव्यक्त करना चाहा है कि ऐसे लोगो से किसी प्रकार की आत्मीयता की आवश्यकता नही है, वे तो ताड़न के अधिकारी है—

किरि कूटियै कपाळ, त्रीकम! तो विमुखा तणा।
घडी घडी घडियाल, वाजै वसदेरावउत।

कृष्ण-भक्ति के अप्रतिम कवि और भक्त सूरदास की भाँति कवि ने कृष्ण की बाल लीलाओ को अनेक दोहो मे चित्रित किया है उनके ये चित्ताकर्षक शब्द-चित्र, घटना के उल्लेख के साथ साथ एक मानव सहज आश्चर्य को प्रकट करता है कि इतना नन्हा बालक यह सब कैसे कर सका होगा? भगवान ने तो खेल खेल ही मे यमलार्जुन वृक्षो को उखाड दिया और इसी प्रकार बक रूप बने बकासुर राक्षस को उसकी चोच पकड कर चीर कर दो टुकडे कर दिये—

झाड उखेडै जाड, जिम रमतै जगदीसवर।
बग कीधौ बे फाड, वार न वसदेरावउत।

प्रत्येक नन्हा बच्चा, माता-पिता के डाँटने-पीटने पर भी मिट्टी खा लेता है भगवान कृष्ण भी लीला के अन्तर्गत मिट्टी खा लेते है. माँ, यशोदा के डाँटने पर बालक अपना मुँह फाड देता है और मिट्टी के बदले कृष्ण के मुँह मे समस्त ब्रह्माड के दर्शन कर माँ तो आश्चर्य चकित रह जाती है—

माहव! तै मुख माहि, जणणी दाखवियो जगत।
कीन्ह भखण ग्रदकाह, व्याजै वसदेरावउत।

कृष्ण के माखन चुराने, स्वय खाने व गोपो को खिलाने और गोरस से भरे शकटो आदि के उलटने की घटनाओ के कारण जब उपालभ आने लगे तो नद-यशोदा

उनके पाँवो के चिह्न देखते हुये ढू ढने जाते है. उनके आश्चर्य की सीमा नही रहती जब वे यह देखते है कि किस प्रकार यह अलग अलग घरो मे चले जाते है—

सीका सगठि थयाह, मिणि मिणि पग जोवै महर ।
ग्रहि जूजुवा गयाह, विध किण वसदेरावउत ।

कालीय दमन के अवसर पर जिम प्रकार आप उसके प्रत्येक फन फन पर पाँव रख नृत्य करने लगे तो माता-पिता सहित अनेक ग्वाल बाल व्याकुल हो गये, पर आपने तो उसे निर्द्वन्द्व भाव से नाथ ही दिया—

प्रभु ! दे फणि फणि पाग, थइ-थइ तत करतो थियो ।
नाथवियौ तै नाग, विह्वल वसदेरावउत ।

चीर-हरण लीला की कवि ने एक नई व्याख्या ही दी है स्त्रियो का नगे होकर जल-क्रीडा करना मर्यादा भग करना है और इसीलिये भगवान श्रीकृष्ण उनके वस्त्रो का हरण कर, वृक्ष पर जा बैठे. उनका सदाशय यह था कि ऐसी घटनाओ की पुनरावृत्ति नही होनी चाहिये—

नारी अतगि नीर, निरखै अवगुण ओ नगन ।
चढियो तरु ले चीर, वसि करि वसदेरावउत ।

श्रीकृष्ण की रासलीला तो अति प्रसिद्ध है जब वे एक के अनेक बन कर गोपियो के बीच रास खेलने लगे तो गोपियो के आश्चर्य की सीमा नही रही—

रमतै तै निसि रासि, कान्हड एता रूप किय ।
पदमणि सो वणि पासि, विचि विचि वसदेरावउत ।

भगवान की मुरली तो गोपियो और ग्वाल-बालो की प्राण थी उसकी मधुर ध्वनि मे देवताओ, देवागनाओ, ऋषियो, नागो, मृगो और पक्षियो को तो क्या, समग्र चराचर विश्व को मोहित करने की शक्ति थी—

वसी रव व्रज-नारि, देव पनग देवागना ।
म्रग मोहिया मुरारि, विहगे वसदेरावउत ।

इस प्रकार अगणित व अद्भुत पराक्रमपूर्ण बाल लीलाओ के पश्चात्, जब श्रीकृष्ण द्वारिकाधीश बने तब भी उनकी भक्तवत्सलता मे किसी प्रकार की कमी नही आई जब जब घोर सकटो मे फँसे भक्तों ने आर्तभाव से पुकारा तो वे अविलंब सहायतार्थ दौडे आये—

तू आयौ तू आव, सब ही दिन भगता सगठ ।
सिमरीजता सहाय, विलब न वसदेरावउत ।

गरुडारूढ होकर गज का उद्धार भी आपने तत्क्षण किया—

धायौ धावन्ताह, गुरडै ही माठौ गिणै ।
ग्राह उग्राहण ग्राह, वारण वसदेरावउत ।

अतर्यामी परमात्मा तो घट घट की जानते है. अपने अन्यतम मित्र सुदामा के सकोचवश कुछ न मॉगने पर भी उन्हे अपार सम्पत्ति का स्वामी बना दिया—

घर मोकळियौ घेर, श्रीपति श्रीदामा सखा ।
कण ले तणौ कुमेर, वित दे वसदेरावउत ।

ससार को सार समझ कर मैं उसमे भटकता रहा और अत मे हार कर आपकी शरण मे बडी देर से आया हूँ. आप मेरा जल्दी उद्धार कर ले—

हू आयौ भव हारि, श्रीवरजु तू सभारि लै ।
मोडो चरण मुरारि, वेगौ वसदेरावउत ।

भगवान ही सार है. यह ससार तो असार है. वे हमारे सर्वस्व है. माता, पिता, मित्र, देव सब कुछ वे ही तो है इसीलिये कवि ने सस्कृत के इस भाव के एक बहु प्रचलित श्लोक का सुदर अनुवाद अपने दोहे मे किया है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बधुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव ।

तूं दाता तू देव, प्रभु मौरै माता पिता ।
तीकम मीत तमेव, वीत त वसदेरावउत ।

ऐसे सर्वस्व प्रभु के चरणो मे सब कुछ न्योछावर है. पृथ्वीराजजी कहते हैं कि मै मन, वचन, और कर्म से हे प्रभु ! आपका ही हू, मैं आपका गुलाम हूँ और हृदय से आपका नाम स्मरण करना चाहता हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये—

आतम काया आथि, मनसा वाचा करमणा ।
हरि मै तोरै हाथ, वेच्या वसदेरावउत ।
गोविंद हू गोलाम, केसवराय ताहरो करै ।
नित समरिस हरि नाम, रिदय त वसदेरावउत ।।

और अत मे भक्त पृथ्वीराज कहते है कि हे प्रभु ! आपके चरणो का पूजन करने से, आपके गुणो का कीर्तन करने से, उसे सुनने से मेरे जीवन का सदुपयोग हो गया है और मेरी वाणी सार्थक हो गई है—

पूजि तुम्हीणा पाग, करता सुणतो कीरतन ।
लागी लेखै लागि, वेळा वसदेरावउत ।
म्हारी थयी मुरारि, गोविद तो लागी गुणै ।
सुक्यारथी ससार, वाणी वसदेरावउत ।

वसदेरावउत रा दूहा

(१)

मथरा नगर मझार, तट जायौ जमुना तणै
बाळा तिणि बळिहार, वेळा वसदेरावउत

(२)

रथ वणियौ पख-राव, वामै अग राधा वणी
विच ताहरौ वणाव, वणियौ वसदेरावउत

(३)

जपिया मानव जाप, जीहा हरि जपियौ नही
मू मडियउ मा-बाप, वाँसै वसदेरावउत

(४)

पूठी रख परमेस, आगैरख तू ईसवर
सुजि दाहिणै सुरेस, वामै वसदेरावउत

---

१ जायौ = जन्म लिया । जमुना तणै = यमुना के । तिणि वेळा = उस समय ।

२ वणियौ = शोभित हुआ । पखराव = गरुड । वणी = सुशोभित हुई । ताहरो = तेरा । वणाव = शोभा ।

३ जपिया = उच्चारण किया । मानव जाप = मनुष्य की प्रशसा । जीहा = जिह्वा से । मू = मै । वाँसै = पीछे ।

४ पूठी = पृष्ठ भाग मे, पीछे । ईसवर = ईश्वर । सुजि = पुन , फिर, और । रख = १. रक्षा करिये, २. रक्षा करने वाला । दाहिणै = दाहिनी ओर । सुरेश = सुरेश्वर, ईश्वर । वामै = बाँई ओर ।

पाठान्तर—

३. विवसौ वसुदेरावउत ।

४. पूठी रुख । आगल रुख ।

(५)

करतळ सह करियाह, चत्रभुज तो चीतारियै
वीसरियै वरियाह, वरजित वसदेरावउत

(६)

कुदण छाडै काच, काइ ग्रहै आतम तिकल
मळमै मँडळ म राच, विमळ त वसदेरावउत

(७)

तो आगै तरुआरि, नाखै नर नमिया नही
हार्‌या आगळि हार, व्हैसी वसदेरावउत

(८)

हरि सू हेक-मनाह, आगळि जइ ऊभा नही
बैससि तिकै बियाह, वासै वसदेरावउत

---

५. करतळ = हाथ मे, वश मे। सह = सब। करियाह = कर लिये। चत्रभुज = हे चतुर्भुज। चीतारिये = स्मरण करके। यू = इस प्रकार। वीसरियै = बिसारने से। वरियाह = श्रेष्ठजनो को भी। वरजित = निषिद्ध हो गये, त्यागने योग्य हो गये।

६. कुदण = सोना, सुवर्ण। छाडै = छोडकर। काइ = क्या। मळमै = मलमय। म राच = आसक्त मत हो। त = १ उस, २ वह।

७ नाखै = डाल करके, छोड करके। हार्‌या आगळि हार व्हैसी = पराजितो के आगे भी वे पराजित होगे।

८ सू = से। हेक-मनाह = एक मन होकर, दत्तचित्त से। आगळि = आगे, सम्मुख। जइ = जाकर। ऊभा नही = खडे नही हुए। बैससि = बैठेगे। तिकै = १. जिनके २ वे। बियाह = १ दूसरे २ दूसरी पँक्ति मे। वासै = पीछे।

---

५ कह तल हस करियाह।
कह तल से कहियाह।
कह तल सहि करियाह।

६ आतम तिलक। आतम विकल। मल में मडल म माच।

७. नाखे नर खमीया नही। नाखे नर समिया नही। वह्न सी, हुइसी, वहइ।

८. हरि हेक मुनि हीयाह, आगलि तो ऊभा नही।

(९)

आणद घण उरि आण, आणद आणदिया नही
दीसै ताइ दिवाण, विलखा वसदेरावउत

(१०)

राधा-वर पद-रेण, अगुट धरै नह भेटिया
तू लख लीजै तेणि, वाए वसदेरावउत

(११)

जपियौ जा जगदीस, जगदीसर जपियौ नही
वधिया घटिया बीस, विसवा वसदेरावउत

(१२)

श्रीवर सू विण साच, जेहै निण मानव जनम
केसव थियो ज काच, विणसै वसदेरावउत

(१३)

अेह अम्हा अरदास, प्रिथु जपै तिल-पुहप परि
वाया तो जस वास, वासै वसदेरावउत

---

९. आणदघण = आनदघन श्रीकृष्ण। उरि आण = हृदय मे स्थित कर, सुमिरण कर। आणद" नही = परमानन्द को प्राप्त नही किया। दीसै = दिखाई देते है। विलखा = उदास, दुखी।

१० पद-रेण = चरण रज। अगुट = १ सिर २ भृकुटि।

११. जा = जिन्होने। विसवा = विश्वा, एक परिमाण। बीस-विसवा = बीस विस्वे निश्चय ही।

१२ विण = बिना, रहित। जेहै = जाता है, खोता है। थियो = हो गया। काच = १ शीशा २ कच्चा ३ झूठा। विणसै = विनाश होकर।

१३ अेह = यह। अम्हा = हमारी। अरदास = विनती। जपै = कहना है। तिल-पुहप = तुच्छ, छोटा। परि = समान, मानो। तिल-पुहप परि = तिल पुष्प के समान, अति तुच्छ। जस = १ यश २ जैसा। वाया तो जस वास वासै = जैसा बोया है वैसी ही वास आयेगी।

पाठान्तर—

९ ताइ दीससी दिवाण। देखै ताइ देवाण।

१० अगुट धरै नह भारिया।
तू इस लीजै, तूलस लीजै,
मूल स लीजै।

१२. श्रीवर सवणा साच। विणसइ।

(१४)

नरहर तेह नरेह, लाघौ फळ लाघै तणौ
जस वरणवियौ जेह, वाया वसदेरावउत

(१५)

विणजै वाणीकाह, मधसूदन माटै मुगति
वाउवौ विणजै वाह, वाछै वसदेरावउत

(१६)

माहरी थयी मुरारि, गोविंद तो लागी गुणै
सुक्यारथी ससार, वाणी वसदेरावउत

(१७)

नायक जग तो नाम, लखमीवर थ्यो लागना
सुजि फळदायक साम, वायक वसदेरावउत

---

१४. लाधो = प्राप्त हुआ । तणौ = का । वरणवियौ = वर्णन किया । जेह = जिन्होने ।

१५ विणजै वाणीकाह = यही बनिज किया जाय । माटै = लिये । वाउवौ = वातुल । वाह = यश । वाछै = इच्छा करता हो ।

१६ माहरी = मेरी । थयी = हुई । तो = तेरे । सुक्यारथी = सुकृति, सुकृतात्मा, सुकृतार्थी ।

१७ नायक जग = जग नायक । लखमीवर = लक्ष्मीपति । सुजि = वही । वायक = वचन ।

पाठान्तर—

१४ नाहर तेह नरेह, लाधो फल लाखी तणो ।
जो सवरण वियोजह, वाया'तु वसदेरावउत ।।

१५. वणेज वणिकाह,
वाण ज वाणीकह,
वाणि ज वाणीकाह,
वाया वणजै वाह,
वाया विणजै वाह,

१६. नायक जग तू नामि, नायक जग तुव नाम ।

(१८)

पूजि तुम्हीणा पाग, करता सुणता कीरतन
लागी लेखै लागि, वेळा वसदेरावउत

(१९)

गाया नह गोपाळ, श्रीवर तो नाया सरणि
केसव गयौ ज काळ, व्रिथा स वसदेरावउत

(२०)

गोविंद विण तो गाथ, जाइ जिके जगदीसवर
निस सारीखा नाथ ! वासर वसदेरावउत

(२१)

किरि कूटियै कपाळ, त्रीकम ! तो विमुखा तणा
घडी-घडी घडियाळ, वाजै वसदेरावउत

(२२)

मास वरस दिन मे न, पाख पहर खिण घडी पलक
कान्हवा मना कदे न, वीसरि वसदेरावउत

---

१८ तुम्हीणा = तुम्हारे, आपके । पाग = चरण । लागी लेखै लागि = सदुपयोग हो गया । वेळा = समय ।

१९ श्रीवर = लक्ष्मीपति । तो = तेरे । नाया = नही आया । व्रिथा गयौ = वृथा बीत गया ।

२० विण = बिना । गाथ = कथा, गाथा । जाइ = बीत जाते है । जिके = जिनके । निस = रात । वासर = दिन ।

२१. घडियाळ = घडी, घटा, झालर । किरि = १ उसी प्रकार, २ मानो ।

२२. मना = १. मन से २ मुझे । पाख = पक्ष । खिण = क्षण ।

पाठान्तर—

१९ १ केसव गयो सुकाल,
२. केसव गयो जु काल, ३. कै सव गयो त्रिकाल ।

२१ किरि कूटिये कृपाल,

२२. परख पहर खिण घडी पल, कान्हवा मुना कदेन ।

(२३)

जाप तुम्हीणा जाज, परमेसर करता पडी
तो भाजै तो भाजि, वेथी वसदेरावउत

(२४)

अवतरियौ अवतार, तू मेटण भगता तणा
भगवत टाळण भार, वसुधा वसदेरावउत

(२५)

सगळा थयौ सतोख, आयौ तू नद आगणै
घर-घर मगळ घोख, व्रज मे वसदेरावउत

(२६)

तू लिखमी उर लागि, पनग गोद नद पालणै
पै पोढियौ पिराग, वड सिर वसदेरावउत

(२७)

पै-निध पौढणहार, त्रीकम नद-घरणी तणै
किम धाप्यौ करतार, बोबै वसदेरावउत

---

२३. जाज = कमी, किंचित् । वेथी = अन्तर, दूरी । तो भाजै तो भाजि = तू टाले तो टल सकती है ।

२४. अवतरियौ = अवतार लिया । टाळण = दूर करने वाला । भार = कष्ट ।

२५ सगळा = सबको । घोख = घोष ।

२६. पनग = शेष नाग । पै = प्रलय वारि । पिराग = प्रयाग । वड़ = अक्षय वट । सिर = ऊपर ।

२७. पै-निध = क्षीरसागर । बोबै = स्तन पान से । धाप्यौ = पेट भर गया, अघाया ।

पाठान्तर—

२३ जाप तम्हीणा जोज,
तै भाजै, तू भाज,

२७ पै-निध पीवणहार ।
किम वधियौ करतार, बूढ़े वसदेरावउत । किम धायो किरतार, बूबै वसदेरावउत ।

(२८)

दैं तैं मुख दीधाह, प्रभू पयोधर पूतना
पीधैं तै पीधाह, विख तैं वसदेरावउत

(२९)

सीका सगठि थयाह, मिणि-मिणि पग जोवै महर
ग्रह्नि जूजुवा गयाह, विघ किण वसदेरावउत

(३०)

करि उर ऊपर काम, त्रणा वरै क्रिसणा तणा
रमियौ आतमराम, विगतौ वसदेरावउत

(३१)

फूले फळिया ताइ, मोती माता आगणै
रमतै जादव राइ, वाया वसदेरावउत

(३२)

[1]निलवि-निलवि नवनीत, तै सिगळा गोकळ तणा
पोख्या पूरब प्रीत, वानर वसदेरावउत

---

२८ विख = विष ।

२९ सीका = छीका । सगठि = सगठित । मिण-मिण = बहुत ध्यान पूर्वक देखना । खोज = खोजकर । जूजुवा = अलग-अलग । ग्रहि जूजवा = घर घर, एक-एक घर । महर = १. व्रज जन २. वसुदेव ।

३० करि = हाथी । त्रणावरै = तृणावंत ने । रमियो = रमण किया, खेला । विगतौ = १ प्रकट किया, २ समाप्त किया ।

३१ मोती = मुक्ताफल । वाया = उगाया ।

३२. निलवि-निलवि = घर-घर मे । पोख्या = पोषित किया । वानर = बन्दर । पूरब प्रीत = पूर्व जन्म की प्रीति ।

पाठान्तर—

२९. मिणि मिणि पग जैवै महल । नमि-नमि डग जोवै महर । मिणमिण मग जोवै महलि ।

३०. तिणा व्रतरत का प्राण तणु । त्रणा चरै क्रिसणा तणा ।
२. त्रिण्ह वारत का प्राण तण,

३२. नील वरण नवीनीत, तैंज सकल गोकल तणौ ।
निल व्रन ताइ नवनीत, तैं जु सकल गोकल तणौ ।

(३३)

माहव ! तै मुख माहि, जणणी दाखवियो जगत
कीन्ह भखण अदकाह, व्याजै वसदरावउत

(३४)

गळ सूंती गयतूळ, बाळक ऊखळ बाधियौ
ऊपाडै आमूळ, व्रिख बे वसदेरावउत

(३५)

मोर मुगट वनमाळ, वित्र वित्र धरि धात वन
वेण वखाणि विसाळ, विहरत वसदेरावउत

(३६)

क्रिसन वछासुर काह, पूछ ग्रही पाछाड़तै
गात्र जूजुवा गयाह, विछुड़ै वसदेरावउत

---

३३. माहव = माधव । दाखवियो = दर्शन करवाया, दिखाया । अदकाह = मिट्टी । व्याजै = बहाने । जणणी = माता को ।

३४. गळ = गला । गयतूळ = रेशमी डोरी । ऊखळ = ओखली । आमूळ = जड़-सहित । व्रिख = वृक्ष । बे = दो ।

३५. वित्र = बेत, छड़ी । वित्र = गो-समूह । धात = धावत । वेण = वेणु । वखाणि विसाळ = बहु प्रशंसित । विहरत = विचरण करते हुए ।

३६ वछासुर = वत्सासुर । जूजुवा = अलग-अलग । गात्र = शरीर । गयाह = हो गये ।

पाठान्तर—

३४. किरि गल सगि गैंतूल,
करि गुल सठ गैंतूल,
किरि गुल सठ गै वूल,
व्रिष । वृखभ ।

३५ वित वित धर धातवन
वेण वखाण विलास, विहरत वसदेरावउत ।

३६ जन्न जूजुबा थयाह

(३७)

झाड उखेडै जाड, जिम रमतै जगदीसवर
बग कीधौ बे फाड, वारज वसदेराव उत

(३८)

अतर नद अवासि, हीडत किम लहुओ हुओ।
अथ अंत लग आकासि, वधियौ वसदेराव उत

(३९)

रचना तो अवरेखि, हू केतिक केता कहु हरि
पड्यौ विधाता पेखि, विसमै वसदेराव उत

(४०)

भुवग असुर सिस भाण, तो माया मानव त्रिया
आळ्धा ईसाण, ब्रह्मा वसदेराव उत

(४१)

तो सरिसो तिरलोय, बळि-बधण नह बापडा
क्रिसन न हालै कोय, वाद ज वसदेराव उत

---

३७ झाड = वृक्ष। जाड = मोटे। बग = बकासुर, बगुला। फाड = टुकडे। बे फाड = दो टुकडो मे। वार = समय।

३८ अवासि = निवास स्थान। हीडत = झुलते हुए। लहुओ = छोटा। वधियौ = विराट रूप मे बढा।

३९ अवरेखि = देख कर। पेखि = देखकर। विसमै = आश्चर्य।

४० भुवग = सर्प। आळूधा = उलझा हुआ। ईसाण = शिव।

४१ सरिसौ = समान। तिरलोय = त्रिलोक। अनि = दूसरा। बापडा = बिचारा, विवश, २ पिता।

पाठातर—

३८. अतर नद आवासि, हीडत किर लहुवो हुवो,
अघ अत लेग अकासि, वधियो वसदेराव उत ।।

४१ तू सरिसौ तीलोइ, वलि-बधन अनि बापडा
केसव निहालै कोइ, वकता वसदेराव उत ।
. . वादन वसदेराव उत ।

(४२)

प्रभु! दे फणि-फणि पाग,थइ-थइ तत करतो थियो
नाचवियौ तैं नाग, विहवळ वसदेरावउत

(४३)

दमि कीधौ निरदोस, काळी काळिंद्री किसन
रमणिक गो तजि रोस, विसहर वसदेरावउत

(४४)

अनत सखा अवनाइ, जु तैं ज वन-वन जाळिवा
पीधैं थयौ प्रभाइ, विसनर वसदेरावउत

(४५)

महा असुर खर मारि माहव बीजा मारिया
राते कीधी रारि, विरतैं वसदेरावउत

(४६)

हाथळ हणियउ जाइ, रूप जु तैं बळराम कै
सत्र सिर मानी साइ, वजर कि वसदेरावउत

---

४२. थिया = हुए । नाचवियौ = नचवाया । विहवळ = विह्वल, व्याकुल ।

४३ काळी = कालिय नाग । विसहर = विषधर । काळिंद्री = यमुना नदी ।

४४ अनत = अनत, अनेक । अवनाइ = साथ लेकर । जुतैं = इकट्ठे हो गये । जाळिवा = जलाने के लिए । थयौ = हुआ । विसनर = वैश्वानर, अग्नि । प्रभाइ = चमत्कार ।

४५. रारि = युद्ध । कीधी = किया । विरतैं = निर्लिप्त रहा ।

४६ हाथळ = हथेली । हणियउ = विनाश किया । सत्र = शत्रु (गर्दभासुर) वजर = वज्र ।

पाठान्तर—

४३. गुर मन करता रोस
गौरि मणक तजि रोस
गौ-ग्मि खतु घरि रोस,

४४ जु तैं जाद नव न जालिवा, जु तैं जवन नव जालिया ।
विसहर वसदेराव उत

४५ मारिवा राती ।

(४७)

वदन विहाणि विहाणि, सूभरता कीन्हा सफळ
एह नयण आपाणि, विकसै वसदेरावउत

(४८)

नारी अतरि नीर, निरखै, अवगुण औ नगन
चढियौ तरु ले चीर, वसि करि वसदेरावउत

(४६)

सरवै मत्रा साच, देता बळि तन ग्रहि दिजा
आरोगी तै आच, वामै वसदेरावउत

(५०)

वनिता करै विनोद, आवता सिस अेकठा
कामणि वदन कमोद, विकसै वसदेरावउत

(५१)

दिन आथुणि ग्रहि-द्वारि, आवै वनि हु आवतै
निरखण तो व्रज नारि, वणि-वणि वसदेरावउत

---

४७ विहाणी विहाणि = देख देख कर। सूभरता = सुदरता। आपाणि = अपने। विकसै = विकसित हुए।

४८ नारी अतरि नीर = सभी गोपियाँ पानी मे थी। चढियौ = चढा। वसि करि = (१) वास करके, बैठ करके, (२) सम्मोहित करके।

४६ आच = हाथो से। दिजा = द्विजो के, ब्राह्मणो के। आरोगी = भोजन किया। वामै = स्त्रियाँ।

५० सिस = सखा लोग। अकेठा = साथ।

५१. आथुणि = अस्त। वनि हु = वन से। वणि वणि = बन बन कर, शृगार कर।

पाठान्तर—

४७ वदन विहाब-विहान, सुभरता कधा सकल
इण नयणै आपाण, विखइ वसदेरावउत
सूभर ताइ कीधा सकल।
विणि नयणि आपाणि॥

४६ देवता बली नन ग्रही।

५० कामणि नयन कमोद

५१. आथमि।

(५२)

आकरखण अबळाह, थभण नै वाई थयी
आसा वण दै ताह, वसी वसदेरावउत

(५३)

तु मिळि षट रितु त्यागि,सरद हेम श्यामा सिसिर
निज सुष वसंत निदाघ, वरिषा वसदेरावउत

(५४)

वसी रव वृज-नारि, देव पनग देवागना
स्रग मोहिया मुरारि, विहगे वसदेरावउत

(५५)

मन मारुत सिसि मागि, वेळा नै वसी तणै
रहिया थारै रागि, वहता वसदेरावउत

(५६)

तै मुरली सुर मागि, गूडी ज्यु गोपागना
ग्रह हूती गैणागि, वळीक वसदेरावउत

---

५२. आकरखण = (१) आकर्षण, कामदेव के पाँच बाणो मे से एक। अबळाह = अबलाएँ। थंभण = रुकने को, कामदेव का एक बाण स्तभन। वाई = व्याकुल। थयी = हुई। आसा = पीड़ा। वण = वन।

५३. षट = षड्, छ। निदाघ = गर्मी, ग्रीष्म ऋतु। वरिखा = वर्षा।

५४. बसी-रव = बासुरी की ध्वनि। पनग = पन्नग, सर्प। स्रग = मृग, पशु। मोहिया = मोह लिए।

५५ मागि = मार्ग मे। वेळा = लहरे। रागि = आकर्षण से। रहिया वहता = बहते हुये रुक गये।

५६ गूडी = पतग। गैणागि = आकाश। वळीक = पुन।

पाठान्तर—

५३. निज सुख।

(५७)

पँ मुरली मुख रोपि, सुर देतै साकेळतै
गोडियौ तै गोपी, विहरौ वसदेरावउत

(५८)

रमतै तै निसि रासि, कान्हड एता रूप किय
पदमणि सो व णि पासि, विचि विचि वसदेरावउत

(५९)

सगि गोपिया सहेण, प्रभु रमियौ जमुना-पुलिण
त्रिभुवन विथका तेण, विभ्रम वसदेरावउत

(६०)

भूलि सग भाळति, गोविंद तो गोपागना
किरि कुरगणि कत, वनि-वनि वसदेरावउत

(६१)

गोप-वधू गोपाळ, लागी गळि अहवी लसति
तणियौ कनक तमाळ, विलसत वमदेगवउत

(६२)

सरणै साम सभाळ, रीसाणै इद राखिया
गोपी गाइ गुवाळ, वाछा वसदेरावउत

---

५७. रोपि = रखकर, लगा कर। सकेळतै = (१) इकट्ठा करते हुये (२) सकित करते हुये। गोडीयौ = नाश किया। विहरौ = विहार किया।

५८ एता = इतने। पदमणि = गोपियाँ। विचि विचि = बीच बीच मे।

५९ पुलिण = पुलिन, किनारा। विथका = शिथिल हो गये। विभ्रम = भ्रमित।

६० भाळति = ढूढते हुए। किरि = मानो। कुरगणि = मृगी। कत = पति (मृग)

६१ अहवी = ऐसी। लसति = शोभायमान लगती है। तमाळ = तमाल वृक्ष, श्यामवर्णी वृक्ष (कृष्ण)। कनक = कनक वेलि, गौर वर्ण गोपियाँ।

६२ सरणै = शरण मे। रीसाणै = गुस्सा होने पर। इद = इन्द्र। राखिया = रक्षा की। वाछा = बछडे।

पाठान्तर—

५७ गूडी हुता गोपि।

५८ पदमणि विन्हा-विन्हा पासि। पदमिण बिहि बिहि पासि।

६१. वले क वसदेरावउत।

६२. १. सरणै सामत माल, रीसाणौ इद राखियौ।
गोपी सहित गुवाल, वच्छा वसदेरावउत॥
२. सरणै सम ताबाल,
३. सरणै सामित साल,

(६३)

ऊतारण मद इद, ऊगारण गोकळ अखिल
गिरि धरियौ गोविंद, वणिया वसदेरावउत

(६४)

प्रभु गोपिया पगेह, सुलभौ उरि जोगेसरा
मधुसूदन माथेह, वेदा वसदेरावउत

(६५)

कूरा काटै कद, जीतौ जळ पैसै करे
नाथ छुडावै नद, वरणै वसदेरावउत

(६६)

नरदेही नर लोय, व्रज-नायक व्रजवासिया
तै देखाळिय तोय, वैकुठ वसदेरावउत

(६७)

कुड ूबै जात कराविं, देव देव देवी तणा
मोख्या नद मोखावि, व्याळै वसदेरावउत

(६८)

सखासुर सघारि, व्रज तणी अवनी विहरत
मोख्या तै मोरारि, विनता वसदेरावउत

---

६३ ऊतारण = उतारने के लिए। ऊगारण = उद्धार करने के लिए। वणिया = बने, शोभायमान हुए।

६४ पगेह = पग पग पर। सुलभौ = सुलभ। जोगेसरा = योगीश्वरो को।

६५. कूरा = क्रूर, झूठे। कद = जड, मूल। पैसे = प्रवेश करके।

६६. नरलोय = नरलोक, मृत्युलोक। देखाळिय = दिखा दिया।

६७. कड ूबै = कुटुम्ब मे, कुटुम्ब को। जात = यात्रा। तणा = का, की। मोख्या = छुडाया। मोखावि व्याळै = नागराज को मुक्त करके।

६८ तणी = की। विहरत = विचरण करते हुए। मोखिया = छुडाया। विनता = वनिता।

पाठान्तर—

६३. १. ग्रहि-ग्रहि गिरि गोविंद, वणियूं वसदेरावउत
२ वणियौ

६५ फोरा काटै फद।

६८ पैं सखचूड सघारि, व्रज तणियु वन वैहरता। मोखावियो मुरारि, वनिता वसुदेरावउत ॥
तै सखचूड सघारि, तणियउ वन विहरतै।
मोखाविउ मरारि, विनता वसदेरावउत ॥

(६९)

धरि नू सनमुख धाइ, किरि गिळियौ परि काकडी
केसी पडियौ काइ, विकसै वसदेरावउत

(७०)

गोकळ आवि गिंवार, महा असुर तै मारियौ
वैरी रूप वणार, वागै वसदेरावउत

(७१)

काढण दइता कद, गोविंद कजि गोकळ तणै
तै मारिया मुकुद, वामै वसदेरावउत

(७२)

मजण करिया मूढ, पग देखै दाणवपती
रिप सिर थायै रूढ, विरतै वसदेरावउत

---

६९. किरि = मानो । गिळियौ = निगल गया । परि = तरह । केसी = एक असुर जिसका सहार श्रीकृष्ण ने किया था ।

७० गिंवार = मूर्ख । वैरी = शत्रु । वणार = बना करके ।

७१ काढण कद = निकंदन करने के लिये, नाश करने के लिये । दइता = दत्यो का । कजि = लिये, वास्ते । तणै = का । गोकळ तणै = गोकुल वासियो के ।

७२ मजण करिया = सफाया किया, नाश किया । मूढ = मूढ लोगो का, आततायियो का । मूढ दाणवपती = मूर्ख दानवपतियो का । पग देखे = खोज-खोज करके, खोज कर कर के । रिप = रिपु, शत्रु । थायै रूढ = सवार होकर के, आक्रमण करके ।

पाठान्तर—

६९ धरतो । विहसै वसदेरावउत ।

७० गमार । विणार, वणाइ ।

७१ काटण । पै मारियौ । वोमे । विमहा ।

७२ पंठो पेखै दान पत्ति ।
१ रुपि जु राखियो रुढ । रूप स रथ आरूढ ।
२. रूप जु रथिया रूढ ।
१. वारित वसदेरावउत । वारिज ।
२ धारत वसदेरावउत ।

(७३)

जाचिय नटिया जाइ, मारि रजक पुर माल्हियौ
पाणै जा पहिराइ, वेससि वसदेरावउत

(७४)

कुसम चदण ले काम, ऊधरियौ पोहतै ग्रहृति
ग्रहिनिस इद सुदाम, वाइक वसदेरावउत

(७५)

हरि कीधौ जस हस, किसन कंस का कस कौ
धनख जगन विधवस, विरतै वसदेरावउत

(७६)

दीधा पाडै दत, खविया गै चाढइ खवै।
कस दिसा श्रीकत, व्रीखा वसदेरावउत

(७७)

कसासुर काएह, चूरण जे चाणूर के
वरजाए वाएह, वाजित वसदेरावउत

---

७३ जाचिय = याचना की। नटिया = मना किया। रजक = धोबी। माल्हियो = ग्रानद किया। पाणै = हाथो से। वेससि = वेश, वस्त्राभूषण।

७४ ऊधरियो = उद्धार किया, बच गया। पौहतै = पहुँच गया। ग्रहृति = बिना प्रहारो के। वाइक = बचन।

७५. धनख जगन = धनुष यज्ञ।

७६. पाडै = गिरा दिया। गै = हाथी। खवै = कधे पर। व्रीखा = चाल। खविया = प्रकाशित हुए।

७७ चाणूर = कस का एक योद्धा जिसे कृष्ण ने मारा था। वरजाए = वर्जित किया। वाजित = तार वाद्य।

पाठान्तर—

७३. पुर मेलियौ। पणेजा। १ वेस तसु २. वसत सु।

७४ ऊधरिया पहि अहिनी। ऊधरिया ले सहलि ता। १. अहिनिस सो इद्रियौ २, इद्रियौ सुदामा वारित।

७५ हरि कीधा जस हौंस, क्रिसन किसन कै कस का। किसन कसका केस कौ। धानख जिगनि विधू सि। धनक जगन विधौंस, वारिस वसदेरावउत।। विग्रह।

७६ षिविआ गै चाहै षवै।

७७ कस सुरी कामाह, चोरण अध चाणूर की।
वर जाया वाह, वाजित्र वसदेरावउत।।

(७८)

अगिलूणी असहति, गिरधर कस स केस गहि
वही अणी विसरति, विकरख वसदेरावउत

(७९)

निगम पढ़ै गुर नेस, दखिणा सुत जीवाडि दे।
सतोखिया सदेस, विरहणि वसदेरावउत

(८०)

आण्या वरण अढार, मागध बावै मूकियौ
सेन कियौ सघार, विढतै वसदेरावउत

(८१)

जाळेवा जवनेस, माहव दिठ मुचकद री
पै जाणी परमेस, वहवा वसदेरावउत

(८२)

समरि-समरि सत्र-साथ, हणि केता केताइ हरि
हालावै बळि हाथ, विमहा वसदेरावउत

---

७८. अगिलूणी – पहिले की । असहति = शत्रुता । विसरति = भूल करके । विकरख = खींच करके ।

७९ नेस = घर । दखिणा = दक्षिणा । सतोखिया = सतुष्ट किया ।

८०. आण्या = लाये । वरण अढार = समस्त जातियाँ । विढतै = युद्ध करके ।

८१ जाळेवा = जलाने के लिये । जवनेस = कालयवन । माहव = माधव । दिठ = दृष्टि । मुचकद = इक्षवाकु कुलोत्पन्न मान्धाता राजा का पुत्र । पै = १ प्रतिज्ञा, २ वरदान ।

८२. समरि समरि = स्मरण कर कर के । सत्र-साथ = शत्रु समूह । विमहा = विमुख ।

पाठान्तर—

७८. कत स केस ग्रहि। वहै आणी।

७९. निविगम पटै गुरव नेस, दि ऋणासुत जीवाडिदे। सतोखियौ से देस।

८० आयो वार अढार, मगध बधियै मूकियौ।

८१ हवि मुचकद की। पै आणै। विसरत।

८२ बलि।

(८३)

महि महमहण मझारि, इमि न हुवै अधखण अतरि
मडीजतै मुरारि, वसती वसदेरावउत

(८४)

प्रभु त्रिण कीट पतग, पाळया ब्रह्मादिक प्रळै
साचौ तू श्रीरग, ग्रवियौ वसदेरावउत

(८५)

सिर सिसपाळ समारि, सिखरे नव-नव सेहरा
वरवा नारि कुमारि, वेरक वसदेरावउत

(८६)

दामोदर दातार, तूं सुदर दातार तू
सत्र सघरि करि सार, वीरति वसदेरावउत

(८७)

भ्रम चौ की भणियाह, होडा होडा हालिया
विदरभ वीदणियाह, वीद त वसदेरावउत

---

८३. महमहण = समुद्र । मझारि = बीच मे । अधखण = आधे क्षण का समय । मडीजतै = रचना करते हुए को ।

८४ प्रळै = प्रलय काल मे । ग्रवियो = कहा ।

८५ समारि = काट कर । सिखरे = सिर पर । वेरक = एक बार ।

८६. सत्र = शत्रु । सघरि = नाश किया । सार = तलवार । वीरति = विरता ।

८७ विदरभ = विदर्भ । वीदणिवाह = दुल्हिनें । वीद = दूल्हा । होडा-होडा = शर्त करके ।

पाठान्तर—

८३. अनिन हुइ अधखिणि । माझी जतै ।

८४ पलै । वाइयै ।

८५ शिखिरि । सेहुरा । मरै क नारि । वरैक ।

८६. तू सुन्दर करता सु । विरतै ।

८७. भरम चौकि भिलियाह, डाहो हुइ डाहलिया ।
विद्रभि वीदणियाह, वीदित वसदेरावउत ॥

(८८)

विढि सिसपाळ विडारि, आणी रुकमणि आवतै
बळि-बधण बळिहारि, वाटा वसदेरावउत

(८६)

लसति हसति करि लाज, इम रमति रामा उरसि
किरि बीजळी विराज, वादळ विसदेरावउत

(६०)

जामवती जीपेह, जादम मणि कजि जादमा
पै आणी पैसेह, विमर त वसदेरावउत

(६१)

आणी सत्र जिति आचि, दीधी मणि जगि देखता
सतभामा तिणि साचि, व्याही वसदेरावउत

(६२)

अरक-सुता अनुरागि, तो कजि तप तपती तरुणि
लोयण इणपरि लागि, विभ्रम वसदेरावउत

---

८८ विढि = युद्ध करके। विडारि = मार दिया। आणी = लाए। वाटा = मार्ग।

८६ लसति = शोभा पाती हुई। इम = इस प्रकार। रमति = क्रीडा करती है। रामा = लक्ष्मी। उरसि = हृदय मे।

६० जामवती = श्रीकृष्ण की एक पत्नी, जाम्बवान की कन्या। जीपेह = जीत करके। जादम = जादव, यादव, कृष्ण। विमर = गुफा। जादमा = यादवो को। कजि = कारण, लिये। मणि = स्यमतक मणि।

६१ सत्रजिति = सत्राजिति राजा, सत्यभामा के पिता। आचि = हाथ। सतभामा = सत्यभामा।

६२ अरक-सुता = यमुना। लोयण = नेत्र। इण परि = इस प्रकार। विभ्रम = शोभा।

पाठान्तर—

८६. इमि रमति रासा उरसि।

६१. सत्रजित। तिणि साथि।

६२. अर सुता अबनागि। तरणि। लोयण अनि नर।

(६३)

आणी परणी आइ, काळिंद्री काठै क्रिसन
माही जगत्र मडाइ, व्याही वसदेरावउत

(६४)

आणी छेतरि ईस, वरि मति व्रिदा सुअवर
पै पदमणि पैंत्रीस, वरी तु वसदेरावउत

(६५)

हो भांमी हरि हाथ, सातै कारणि सुदरी
नाथी अेकणि नाथ, विभ्रम वसदेरावउत

(६६)

तै परणता तोइ, मगळ रूपी मगळा
वाधाअे विस लोइ, वाडी वसदेरावउत

(६७)

कान्हवा बाधै काछ, राई दुलभ ज राइकै
मद सरि आणी माछ, वेधी वसदेरावउत

---

६३. आणी = लाये। परणी = विवाह कर लिया। काठै = किनारे। जगत्र = (१) यज्ञ, (२) मडप।

६४. छेतरि = धोखा देकर। व्रिदा = तुलसी, शखचूड की पत्नी। सुअवर = दूसरा।

६५ भामी = न्योछावर। सातै कारणि = सभी प्रकार।

६६. परणता = विवाह होने पर।

६७ काछ = घुटनो तक पहनी हुई धोती। दुलभ = दुर्लभ। माछ = मच्छी।

पाठान्तर—

६३ माहे। वेहां।
६४ चेतरि। वेरी मृत व्रिदा समर। वरीक।
६५ हू। नाथीया। विष लै।
६६. परणीतां। वाधाई। वाटी।
६७. कान्हडि बधै। राइ दुलभी राइ कुअरि। मदरि। बेधै।

(९८)

असुर वहे आणीह, सोळह सहस सु आगळी
पै अठ पटराणीह, वरी त वसदेरावउत

(९९)

अेकणि-अेकणि अेक, दुहिता दस-दस दीकरा
वनिता कियौ विमेक, वाइ त वसदेरावउत

(१००)

आणै रोप्यौ ईस, पदमणि आगणि कलपतर
जीपै पै जगदीस, वासिव वसदेरावउत

(१०१)

चंवर ढुळै लख च्यारि, आगळि कीजै आरती
तै पालखी पधारि, वणियौ वसदेरावउत

(१०२)

जो अंतरिख जगदीस, सुदरि ग्रहि-ग्रहि समसमू
पै आपणपौ ईस, विहचै वसदेरावउत

(१०३)

परमेसुर करि प्यार, इम त्री गरब उतारि बी
तू तुलियौ सु तिवार, व्र दा वसदेरावउत

---

९८ पटराणीह = पटरानी । पै = किन्तु । अठ = आठ ।वरी = वरण की ।

९९ विमेक = विवेक । दुहिता = बेटी ।

१०० रोप्यौ = लगाया । कलपतर = कल्पतरु । जीपै = जीते । वासिव = इन्द्र ।

१०१. वणियो = शोभित हुआ ।

१०२ अंतरिख = अंतरिक्ष । आपणपौ = अपनाया । विहचै = वितरित किया, बाट दिया ।

१०३. इम = इस प्रकार । त्री = स्त्री । व्र दा = तुलसी । तिवार = उस समय ।

पाठान्तर—

९८ सोल सहस सौ अगली ।

९९ विसेक, बसेख । वे अत ।

१०० रोपीयौ । वासव ।

१०२ समसमौ ।

१०३. अनि त्री गरव उतारिवा । तिणिवार । विद्रा ।

(१०४)

घर मोकळियौ घेर, श्रीपति श्रीदामा सखा
कण ले तणौ कुमेर, वित दे वसदेरावउत

(१०५)

तू कासव का सेस, विलगो कूडै वासदे
परळै तणी प्रमेस, विहूनिक वसदेरावउत

(१०६)

देख जरासध दोख, समळा व्रन राजा सहस
मारि कियौ मद मोख, विहसै वसदेरावउत

(१०७)

पूजा-फळ पो पागि, जुग सगळौ जीपै करै
जुजिठळ केरो जागि, विहद त वसदेरावउत

(१०८)

देव वळती दाट, सिरि देखै सिसपाळ कै
वैरी ग्या दहवाट, विडरि त वसदेरावउत

---

१०४ मोकलियौ = भेजा। श्रीपति = विष्णु, कृष्ण। कुमेर = कुबेर। श्रीदामा = सुदामा। वित दे = सम्पत्ति देकर। कण = अन्नकण।

१०५ कासव = कश्यप। का = अथवा। विलगौ = विलग्न हुआ। वासदे = वासुदेव। प्रमेस = परमेश्वर। विहूनिक = अग्नि।

१०६ दोख = त्रुटि, अपराध, दोष। समळा व्रन = कुटिल वृत्ति वाला। मोख = मोक्ष, मुक्त। विहसै = प्रसन्न होकर के।

१०७. पो = (१) प्रभु, (२) प्राप्त करके, (३) प्रभात। पागि = पाँव, चरण। जीपै करै = जीत करके। जुजिठळ = युधिष्ठिर। जागि = यज्ञ। विहद = असीम, वृहद्।

१०८ वळती = आती हुई। दहवाट = नाश, ध्वस्त। विडरि = (१) अत्यन्त क्रोध किया, (२) विर्दीण किया। दाट = (१) प्रहार, (२) विनाश।

पाठान्तर—

१०५ तु केसव काकेस। विहनक।

१०६ सामला जन। मारि किया बिन। वीसै।

१०७ पूज्या फूलो पाग। जग सघलौ। जिजविल कीधौ ज्याग। वैह हत वसदेरावउत।

१०८ देवा बलती दाढ। गा दहबाट। वीडरि।

(१०९)

ते एकणि अणपाल, आरण हणि पाडै इता
सत दँतवक तसु साल, विदरथ वसदेरावउत

(११०)

आकरखता असत, पचाळी पोकारता
अनत । न आयो अत, वसतरि वसदेरावउत

(१११)

भीरी हुइ भाराथ, अणखडित रथ आरुहे
जै दीनी जगनाथ, विजै त वसदेरावउत

(११२)

राखै तै जदुराण, अगनी ही पैसै अजण
सतोखै सुत आण, विरहै वसदेरावउत

(११३)

भगत हेत मनि भाय, मेटण अनि त्री कुळ मडण
उत्तिम कीधौ आय, विदरौ वसदेरावउत

---

१०९ अणपाल = जो रोका नही जा सके। आरण = युद्ध। हणि = हनन करके। एकणि = (१) एक वार, (२) अकेले। दँतवक = दतवक्र, वक्रदत।

११० आकरखता = खीचने पर। असत = दुष्ट। पचाळी = द्रौपदी। पोकारता = पुकारने पर। वसतरि = वस्त्र। अनत = १ परमेश्वर, श्रीकृष्ण, २ अनन्त।

१११. भीरी = सहायक। भाराथ = युद्ध। जै = विजय। दीनी = दी। आरुहे = चढकर।

११२ जदुराण = जदुराय, कृष्ण। अजण = (१) अर्जुन, (२) निर्जन, (३) अजन्मा।

११३. मनिभाय = प्रिय। विदरौ = विदुर।

पाठान्तर—

१०९ पै एकणि अणपालि। अरियण हणि। सत दतवक्र। विदुर त

११०. वसत्रा।

१११ दीधो।

११२. दाखै। अगिनि कि पैसतो अजन। सतोखियो। विग्रहै।

११३ भाइ। मेटण अनि कुलमद मदिरि। विदुरो।

(११४)

आपणि मानी ईस, हुतासु तै रमता सु हरि
छत्र धरि वस छत्रीस, विनडी वसदेरावउत

(११५)

नाभि स्रवण मुखि नैण, चोथै आवध कर चरणि
श्री सघासण सैण, वारज वसदेरावउत

(११६)

मधि तनि ससिर मऊख, समद न नव कूडै सरगि
प्रभु आखिया पिऊख, वरसित वसदेरावउत

(११७)

पुरिख स पुनवताह, त्रिय पसु पखी तेणि तर
हरि तौरै हूताह, वारै वसदेरावउत

(११८)

पेखै नह निम्र पाप, कान्हव राधा सग किय
अतरि व्रज अदियापि, विलसत वसदेरावउत

---

११४ विनडी = विनाश किया ।

११५. स्रवण = कान । आवध = आयुध । सघासण = सिहासन । वारज = (१) कमल (२) शख ।

११६ मऊख = (१) शोभा, (२) प्रकाश । ससिर = शिशिर ऋतु ।
आखिया = आखो मे । पिऊख = पियूष, अमृत ।

११७ पुरिख = पुरुष । पुनवताह = पुण्यशाली । तौरै हूताह = तेरे ऊपर से, तेरे होने से । वारै = निछावर करते है ।

११८. पेखै = देखता है । निम्र = निज । अदियापि = अद्यापि ।

पाठान्तर—

११४ हुता ज तै रमते स हरि । विनडै ।
११५. श्रमण मुख । चोथौ आवध करि चलण । सेण । वारिज ।
११६. मढि तन सिसर मसूष, समद्रि न नव कुडेसरमि । आषीया पयूष । वरसै ।
११७ पुरख ज पुन्यवताह, त्रीय पसुपषी त्रिणि चै तरव ।
११८. कान्हुओ राधा सगि किया । अतरि जज आमाप । जुजआ माण । विलसै ।

(११९)

परळै जळ पैसेह, विढियै सखासुर वहै
ब्रहमड विड आणेह, वळिया वसदेरावउत

(१२०)

दाढा अग्रि धरि दाखि, तूं वाराहा मोव वरि
हौफरियौ हिरणाखि, वाढै वसदेरावउत

(१२१)

रहचै राकस-राज, रूप थियौ अगराज रै
गाज्यौ तिण आग्राज, ब्रहमड वसदेरावउत

(१२२)

हरि पूठा हरि हाथ, मदिर रइ गोळी महण
नेत्र गू थियौ नाथ, वासिग वसदेरावउत

(१२३)

माखण रतन मथेह, काढै पै लीधा किसन
छाड्यो छाछ करेह, वारिध वसदेरावउत

---

११९ परळै = प्रलय । विढियै = लडाई की । सखासुर = एक राक्षम । ब्रहमड = ब्रह्माड । विड = शत्रु । वळिया = लौट आये ।

१२० दाढा = डाढो के । अग्रिधरि = आगे रख कर । दाखि = प्रकट किया । हौफरियौ = (१) क्रोध करके । हिरणाखि = हिरण्याक्ष । वाढै = नाश किया । मोघ = असभव ।

१२१ रहचै = चीर डाला । आग्राज = घोर गरजन । अगराज = सिह । थियौ = हुआ ।

१२२ पूठा = पुष्ट । मदिर = मद्राचल । रइ = मथानी । महण = समुद्र । नेत्र = मथानी की रस्सी । वासिग = नाग, सर्प । गोळी = दही मथने का बडा पात्र, बडा मटका ।

१२३ माखण रतन = मक्खन रूपी रत्न । मथेह = मथकर, मथन कर । वारिध = समुद्र ।

पाठान्तर—

११९ विटपै । ब्रहम गमाड्या वेद । वीलाया ।
१२० दाढ अग्रधर । तै वाराहा मोथ वरि होकरियौ ।
१२१ रूप थयौ मृघराज रो । गाजीया तिणि ।
१२२ पूठी रई गोली । नेत्रै गू थै ।
१२३. छाडियो छासि ।

(१२४)

कजि इँद्र मध कर पोइ, धेन अछर है गै धनख
जेवड कीधी जोइ, वासग वसदेरावउत

(१२५)

पग पाताळि पइठ्ठ माथौ ब्रहमड ले मिळै
दाणव अहवौ दिठ्ठ, वामण वसदेरावउत

(१२६)

बळि गमि तालात्रोलि, लौपै ब्रह्म ड मुगति लगि
वधियौ असुर विरोळि, वप तू वसदेरावउत

(१२७)

गजण असुरा गाउ, भूधर तू भुवणा-भुवण
रमियौ कर पखराउ, वाहण वसदेरावउत

(१२८)

धायौ धावताह, गुरडै ही माठौ गिणै
ग्राह उग्राहण ग्राह, वारण वसदेरावउत

---

१२४ धेन = धेनु। अछर = अप्सरा। है = घोडा, उच्चैश्रवा। गै = हाथी, ऐरावत। जेवड = रस्सी। वासग = सर्प।

१२५. पइठ्ठ = घुस कर। दाणव = दानव, बलि राजा। अहवौ = ऐसा। दिठ्ठ = दिखाई दिया। वामण = वामन अवतार।

१२६ तालात्रोलि = उतावल से, आतुरता से। विरोळि = नाश किया। वप = शरीर।

१२७. गजण = नाश करने। भुवणा भुवन = प्रत्येक भुवन मे, भुवन प्रति भुवन। पखराउ = गरुड। गाउ = स्थान, गाँव।

१२८ धायौ = भागा। धावन्ताह = स्मरण करते ही। माठौ = मद। उग्राहण = उद्धार करने के लिए। वारण = हाथी। गुरडै = गुरुड को।

पाठान्तर—

१२४ किजि इद्र मध कलपोइ। जौवड।

१२५ ब्रमडल। दईतै एहो दीठ।

१२६. लोपै व्रहमड लडि। वप तो।

१२७ भुवणा भुयणि।

(१२६)

तू आयौ तू आइ, सत्र ही दिन भगता सँगठ
सिमरीजता सहाइ, विलव न वसदेरावउत

(१३०)

आगै हैं आराधि, कारणि तिणि भगता किया
साधा काजि असाध, वूहा वसदेरावउत

(१३१)

रमता कोइ न रोक, लिखमीवर करता लहै
तू भजियौ त्रीलोक, वेगा वसदेरावउत

(१३२)

ता भजियौ त्रियलोय, जा नान्हा ई नारियण
जग पुड हुवा सु जोय, वडा त वसदेरावउत

(१३३)

कीधा क्रिपा करेह, जग सिर देवळ डड जिम
धू साखियौ धरेह, विसनव वसदेरावउत

---

१२६ सगठ = सकट । सिमरीजता = स्मरण करते ही । आइ = आयेगा ।

१३० आराधि = आराधना की । कारणि = कारण, निमित्त, हेतु । साधा = सत्पुरुषो के, भक्तो के । असाध = दुष्ट । वूहा = (१) मारा (२) चला । आगै = विगत काल, पहिले ।

१३१. रमता = (१) रमण करने से, (२) खेलने से, क्रीडा करने से । लिखमी-वर = लक्ष्मीपति ।

१३२ ता = तेरे को । त्रियलोय = त्रिलोक । नान्हा = छोटा, साधारण । ई = भी । जग पुड = पृथ्वीलोक । सु = वह । वडा = महान, (बडा) । नारियण = नारायण ।

१३३ देवळ डड = मदिर का दड (सर्वोच्च) । जिम = जैसे । धू = ध्रुव । साखियौ = साक्षी । विसनव = वैष्णव ।

पाठान्तर—

१२६. सगठि । विलम ।

१३१ त्रौ लग त्रौ त्रलोक ।

१३२ तू भजियो त्रैलोइ, जिये नान्हे ही नारीयण । जगपुडि हुआ साजोइ ।

१३३ जुग सिरि देउल-डड जिम ।

(१३४)

श्री भागवत सु भेद, भारथ रामायण भळै
व्रजपति तू जस वेद, वाचै वसदेरावउत

(१३५)

गोविंद एह ज गुज्झ, व्रज-भूखण वेदा तणो
तू जा लगता, तुज्झ, वाता वसदेरावउत

(१३६)

कविता पूज कराइ, वैसपायन वालमिक
सुक मुनि नारद साइ, व्यासै वसदेरावउत

(१३७)

माया असुर महेस, महि महि तु वपता मही
श्री सुरपती नर सेस, वेदे वसदेरावउत

(१३८)

जळि मजता जकाइ, प्रभु ज करै लोका प्रवित
प्रवित थइ तो पाइ, वेणी वसदेरावउत

(१३९)

रस-लोभिया रसाळ, तु पै मन भगती तणा
किरि महुवर महवाळि, विलगा वसदेरावउत

---

१३४ भारथ = महाभारत । भळै = और । वाचै = कहता है, पढता है

१३५ गुज्झ = गुप्त भेद । एहज = यही । वेदा तणो = वेदो का ।

१३६ कविता = काव्य ग्रथ (वे काव्य ग्रथ जिनमे भगवान की यशोगाथा हो)

१३७ महि महि = पृथ्वी मे । वप = शरीर ।

१३८. जळि = जल मे । मजता = स्नान करते हुए । जकाइ = जो । प्रवित = पवित्र । तो पाइ = तेरे चरणो से । वेणी = त्रिवेणी ।

१३९ महुवर = महुवा (शराब) । विलगा = अलग । पै = पॉव, चरण । महवाळि = तरफ, ओर । रसलोभिया = रस के लोभी । रसाळ = रसीला ।

पाठान्तर—

१३४ स भेद । तो जस ।

१३५ गोविंद एहो गुड । तणै । तूं ज लागै ता तूझ ।

१३६ कवि तो । विसपाइन वालमी ।

१३७ महिर तो वपता मही । वादै, वादै ।

१३९ तो पै मन मगता तणा । करि महू अर मोहाल ।

(१४०)

मो मन मधुप मुरारि, परिमळ घूटै तो पियै
गोपीचदण गारि, वीधौ वसदेरावउत

(१४१)

पायौ रस तू पाय, आणदघण जे क्यू अम्रित
स्याम थयै इ पसाय, विस होइ वसदेरावउत

(१४२)

ताहरौ समरण जिम तुज्झ, श्रीवछ लछण उरि सदा
माहव तिम तू मुज्झ, वसियौ वसदेरावउत

(१४३)

आठो पहर अनत, गोविंद तू गावण तणो
लागो लखमी-कत, वसन त वसदेरावउत

(१४४)

लागी प्रीति ज लोइ, जिम पचाळी पगरणि
तनि ताणिती तोइ, वाधी वसदेरावउत

(१४५)

चढियौ तू चढियाह, चीत ज मद चेतन तणौ
अजु ऊतरियौ नाह, विलसत वसदेरावउत

---

१४० मधुप = भौरा। परिमल = सुगध। गारि = गार के लेपन से । वीधौ = बिध गया, उलझ गया।

१४१. पाय = चरणो से। पसाय = कृपा, प्रसाद।

१४२ श्रीवच्छ = श्रीवत्स, विष्णु। लछण = चिन्ह (भृगुलता)। माहव = माधव।

१४३. वसन = व्यसन।

१४४ पगरणि = वस्त्र। वाधी = बढ गई।

१४५ चीत = हृदय। चेतन = परब्रह्म परमात्मा। अजु = अभी तक। नाह = नही।

पाठान्तर—

१४० प्रेमल घूटे ता पयो।

१४१ तो पाइ समष थियौ विषसाहि। विक्ष्या वसुदेरावउत।

१४२ ताहरो साम ज तूझ। माहव तू मनि मूज।

१४३ तों गावण। विसनत।

१४४. पागुरिण। तन ताणीता तोइ।

१४५. चढीयै तै। चीतिज मद चेतन तणा। अजे न ऊतरियाह। वेल स।

(१४६)

पूत कलित परिवार, मात भ्रात पति मीत मन
आतम हूंत अपार, वाल्हो वसदेरावउत

(१४७)

तूं दाता तूं देव, प्रभु मोरै माता-पिता
तीकम मीत तमेव, वीत त वसदेरावउत

(१४८)

आतम काया आथि, मनछा वाचा करमणा
हरि मैं तोरैं हाथ, वेच्या वसदेरावउत

(१४९)

वाइ स वारिधि काह, प्रिथमी मन प्रिथिदास का
नाव चलण विण नाह, वासौ वसदेरावउत

(१५०)

समदर माहि संसार. भमर जाळ पडियो भमण
ईस ! न को आधार, विण तो वसदेरावउत

---

१४६. कलित = कलत्र, पत्नी । हूंत = से । वाल्हो = प्रिय ।

१४७. तीकम = त्रीकम । तमेव = त्वमेव, तुम्ही । वीत = वित्त ।

१४८. आथि = (१) धन (२) भी (३) सर्वथा । मनछा = मनसा, मनसे । वेच्या = बेच दिया ।

१४९. वाइ = वायु । प्रिथमी = पृथ्वी । वासौ = विश्राम । विण = बिना । नाह = नाथ ।

१५०. विण तो = तेरे बिना ।

पाठांतर—

१४६, पुत्र कलत्र । मात भ्रात पित ।
१४७. प्रभु तोरे । त्रीकम ।
१४८. मनछा वाछा क्रमणा । वेचीया ।
१४९. वाइ हंस । नाम चलण विण नाइ ।
१५०. समुंद्र । भंवर । भुवणि । इसौ न को आधार ।

(१५१)

वूडता दै बाथ, भवसागर भैवातिया
वहै न को व्रजनाथ, वाइ स वसदेरावउत

(१५२)

ओलाडै उर वारि, पार ज तो पायो नही
काला काळीधार, वहसी वसदेरावउत

(१५३)

एह वडो आधार, सिरी हरि-समरण तणौ
सहि बीजो ससार, वावरि वसदेरावउत

(१५४)

काटा भाती कोडि, मन लागा माया तणा
व्रज नायक वीछोडि, विनती वसदेरावउत

(१५५)

रस जाळता रोग, सकि लागौ ससार कै
पालण नाम प्रयोग, वैद तु वसदेरावउत

---

१५१ बूडता = डूबते हुए को । दै बाथ = (१) सहारा देकर, (२) बाहुपाश मे लेकर । भैवातिया = भयान्वित । वाइ = वायु ।

१५२ ओलाडै = अवज्ञा करते है । काला = पागल । काळीधार = कालीद्रह, भयकर आफत ।

१५२ वावरि = (१) व्यर्थ, (२) वाड के काटो के समान । सहि = समस्त, सब ।

१५४ कोडि = करोड । वीछोड़ि = छोड करके ।

१५५ जाळता = नाश होने से । पालण = पथ्य, नाम-प्रयोग = नाम सुमिरण रूपी चिकित्सा ।

पाठान्तर—

१५१ वहै न क्यु व्रजनाथ । व्राहस ।

१५२. ऊलडै । पार हतो ।

१५३. यक जक्यु आधार । सेरी हरि समरणतणा । सह । बाडरि ।

१५४ बनसी वसदेरावउत ।

१५५ जालीता । सक लागो ससार की । पालण नांम प्रीयोग ।

(१५६)

निरखि भुयगमनाथ, रसिया विखिया रोगिया
हरि ग्रहि छडे न हाथ, वैदे वसदेरावउत

(१५७)

तो पायै त्रीलोई, माहव मुन मोरा तणी
किसन न जाणै कोइ, वेदन वसदेरावउत

(१५८)

धरै चक्र कर धाइ, आप उवेळण आपणा
किसन न बीजी काइ, वाहर वसदेरावउत

(१५९)

क्रिपा करै करतार, दामोदर दासा तणी
सामि सबाहणहार, वासौ वसदेरावउत

(१६०)

हू आयौ भव हारि, श्रीवरजु तु सभारि लै
मोडौ चरण मुरारि, वेगौ वसदेरावउत

---

१५६ भुयगम-नाथ = विष्णु । विखिया = विषयी । रोगिया = रोगी । हरि ग्रहि छडे न हाथ = जिसका हाथ एक बार हरि ग्रहण कर लेते है, फिर उसे नही छोडते है ।

१५७ तो पायै = तेरे चरणो मे । त्रीलोइ = त्रिलोक । मुन मोरा तणी = मेरे मन की ।

१५८ उवेलण = सहायता करने । वाहर = कष्ट मे सहायतार्थ चढना ।

१५९ सामि = स्वामी । सबाहणहार = सभालने वाला ।

१६० मोडौ = देर से । वेगो = शीघ्र ।

पाठातर—

१५६ हरि ग्राह छडै हाथ ।

१५७ जो पावै त्रीलोइ । मन मोरा तणी ।

१५८ आप जण काज आपरा ।

१५९. दामोदरवासा तणी । सामी सिरजणहार । ओहिम वसदेराद उत ।

१६०. श्रीवर म्हनै सभारियै । मोडो सरणि मुरारि ।

(१६१)

काटा कळिजुग काह, वाटा लूटाणौ विसम
नाता नाम तणाह, ब्रविया वसदेरावउत

(१६२)

सिरि तुळछी गळि सूत, तोरो ध्रम राजा तणो
देखै टळिया दूत, वानो वसदेरावउत

(१६३)

पति ज तू परमेस, सब दीहे ही सपजै
लागै तिह लवलेस, विपत न वसदेरावउत

(१६४)

सरणै नद-किसोर, आया सतन सुर-असुर
चीतै तीह न चोर, वाघ न वसदेरावउत

(१६५)

दीह देव पति दास, पनग असुर पै पाधरै
विसन न इते वणास, वाके वसदेरावउत

---

१६१. काह = के। वाटा = रास्तै में। विसम = विषम। नाता = रिश्ता, सबध। ब्रविया = कहा गया।

१६२. गळि = गले मे। सूत = जनेऊ, माला। ध्रम = धर्म। टळिया = टल गये। दूत = यमदूत। वानो = वेश।

१६३. लवलेस = अत्यन्त अल्पमात्रा। संपजै = प्राप्त करते हैं। सब दीहे ही = सर्वकाल मे।

१६४ चीतै = याद करते है। तीह = तुझे। चोर = दुष्टगण।

१६५. पनग = पन्नग, सर्प। पाधरै = सीधे। वणास = विनाश। वाके = टेढे प्रतिकूल। दीह = दिन (भाग्य)।

पाठातर—

१६१ कटक, कटका बिसव। विसन। तणोह। व कियो।

१६२ तुलसी तोरो अश। देहा टलिया। वानै।

१६३. सबदीहे सपजै सपति, सब ही दिन सँपजै सपति। लागै तेहन लेस। विपती।

१६४ तेह, ताह।

१६५. देह देवापतिदास। पतग। विस नही व विणास। वाक्त।

(१६६)

आयै इणि अवतारि, वाया नह जपिया विसन
सु जु रूना ससारि, विडियै वसदेरावउत

(१६७)

जे हरि-मदिर जाइ, केसव ची न सुणी कथा
नगरे काठी न्याय, वेचै वसदेरावउत

(१६८)

दडवत करे दुवार, नरे जु उर घसिया नही
ते सिरजिया ससार, विसहरि वसदेरावउत

(१६९)

पाये घणे पिआह, लहवी लोकाइ तणौ
अेक न ओळगियाह, वाकिम वसदेरावउत

(१७०)

मोर-मुगट वन-माळ, वेत चीत धरि धात वन
वेण वखाण विसाळ, वाहरत वसदेरावउत

(१७१)

कुच विचि मातो कीच, जळ काजळ भेळा हुआ
वसीयो हियडा वीच, रसियो वसदेरावउत

---

१६६ वाया = उत्पन्न किये (अच्छे कर्म किये)। वाचा। रूना = रोये । विडियै = नष्ट होते है। सु जु = वे ।

१६७ ची = की। नगरे काठी न्याय = नगर-काष्ठ न्याय, एक दृष्टान्त वाक्य ।

१६८. सिरजिया = सृजन किया। विसहरि = सर्प ।

१६९. पिआह = प्रयास, पान किया। लहवी = आनद । लोकाइ = ससार से सबधित । ओळगियाह = स्तुति की । वाकिम = प्रतिकूल, बाँका ।

१७० वेत = वेत्र । धात = जाते हैं । वाहरत = रक्षा करने को । वेण = मुरली ।

१७१ मातो = अधिक । कीच = कीचड ।

पाठान्तर—

१६६ वाचा । सुन्नि । विढिये ।

१६९ प्रिआह । लाहवो ।

१७० विहरत ।

(१७२)

अधिका गुळ अजवाणि, सोवीणा लाडू सखर
उमगि जसोदा आणि, वाटै वसदेरावउत

(१७३)

हरि डोली इक वार, लाजता लीधी नही
कसकै काइ कहार, वहतो वसदेरावउत

(१७४)

हरि डोली हिक वार, हर करि हल्लावी नही
सिरजिया से ससार, वणकर वसदेरावउत

(१७५)

लागै नही लिगार, तनु टाची पातिक तणी
आडो तूं ओदार, वडफर वसदेरावउत

(१७६)

रज्या राख तणेह, पागुरणे आठे पहर
पदमणि से परणेह, रमसी वसदेरावउत

---

१७२ अजवाणि = अजवायन । सोवीणा = पौष्टिक पाक । सखर = सुन्दर, स्वादिष्ट । वाटै = बाँटती है । आणि = ला करके ।

१७३ कसकै = दुख होता है । काइ = क्या । लाजता = शरमाते हुए । वहतो = चलता हुआ ।

१७४ हल्लावी नही = उठाई नही । उठाकर चलाया नही । हिक वार = अेक वार । हर करि = उमग के साथ । वणकर = बुनकर । से = उन्हे ।

१७५. लिगार = थोडा सा भी । टाची = चोट, प्रहार । ओदार = उदारमना । वडफर = ढाल ।

१७६. रज्या = रग गये, मिल गये । पागुरणे = वस्त्र आदि से । आठे = आठो । परणेह = विवाह किया । रमसी = क्रीडा करेंगे ।

पाठान्तर—

१७२ सधाणा । वांटत ।
१७३. हिकवार । लाजै तू ।
१७४ सह सरज्या ।
१७५. पातगि ।
१७६. पगुरणि आठू पहोर

(१७७)

मिळो नंद घरि मेळि, दसूठण आलम दुनी
कवळै रही ज केळि, विस्तर वसदेरावउत

(१७८)

दामी कंस दुवारि, कुछित रूपे कूबड़ी
कीधी राज कुवारि, रीझे वमदेरावउत

(१७९)

कर साथरा करेह, विण साथै वसिया वनै
घेरिया घणे जणेह, रहिसै वसदेरावउत

(१८०)

झालरि रो झणकार, श्रवणै साभळियो नही
अजगर रै अवतार, वहिसै वसदेरावउत

(१८१)

जिण घरि हेक जणोह, एकारै न कहै अनंत
ते जाणै तब तणोह, वाडो वसदेरावउत

---

१७७. दसूठण = दसोठन पर किया जाने वाला भोजन समारम्भ। आलम = (१) ईश्वर, (२) ससार। कवळै = द्वार पर। केळि = कदली। विस्तर रही = फैली हुई, फैल रही है।

१७८ कुछित = कुत्सित। कूबडी = कूबड वाली, कुब्जा। रीझे = प्रसन्न होकर।

१७९. साथरा = १ घास का बिछौना, शव समूह। रहिसै = नाश कर दिया।

१८० झालरि = घटा। झणकार = झनकार, ध्वनि। श्रवणै = कानो से। साभळियो = सुना।

१८१ हेक = अेक। जणोह = जन। एकारै = अेक बार। तब = बैल। वाडो = कांटो की वाड से घिरा हुआ स्थान, बाडा, पशु शाला। जाणै = मानो।

पाठान्तर—

१७८. जकें घेरीया घणा जणेह। रहचै।

१७९. बसहै, वसिसै।

१८१. जाणै तब तणोह।

(१८२)

गोविद जिण गोवाडि, कीजै नही तोरी कथा
रखियै ताहि उजाड, वसती वसदेरावउत

(१८३)

गोविद हू गोलाम, केसवराय ताहगे करै
नित समरिस हरि नाम, ग्दिय त वसदेरावउत

---

१८२ गोवाडि = वश, गली । उजाड = निर्जन ।

१८३ हू = मै । ताहरो = तेग । गोलाम = गुलाम, दास । समरिस = सुमिरण करूँगा । रिदय = हृदय ।

पाठांतर—

१८२. थारी कथा ।

१८३. थारो करै ।

दसरथदेवउत

रा

दूहा

दसरथदेवउत रा दूहा

अपने जीवन के अंतिम समय तक अक्बर के विश्वासपात्र सेनापति रहने हुये भी ऐसा प्रतीत होता है कि वे तन से युद्धो का सचालन अवश्य कर रहे थे, पर मन से उन्हे ससार से विरक्ति हो गई थी वे अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे निरतर प्रभु भक्ति मे लीन रहे, अतएव उनके दैनिक कार्य-कलापो पर भक्ति का व्यापक प्रभाव पडा. वे अधिकाधिक सरल-चित्त बनते गये और परिणाम स्वरूप इनकी उत्तर-कालीन रचनाओ मे अपेक्षाकृत सारल्य है और वे भक्ति रस से लबालब हैं. इनमे वेलि-सी क्लिष्टता रूपी दुर्गम चढाई न होकर सरलता का सपाट मैदान है, जिसे सामान्यजन अनायास ही समझ सकता है

'दसरथदेवउत रा दूहा' अर्थात राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी की स्तुति मे कहे गये चौवन दोहे हमे अद्यावधि उपलब्ध हैं कवि ने इन दोहो मे भगवान राम के जीवन की अनुपम घटनाओ मे से कुछ को दोहाबद्ध किया है. राम जन्म का मास, पक्ष और तिथि बतलाते हुये कवि कहता है कि सतो का उद्धार करने के लिये ही सर्व समर्थ भगवान राम ने अवतार लिया है—

नमि अवतरियउ नाथ, चैत्रमासि पखि चादणै ।
सत ऊधरण समाथ, दुपहरि दसरथदेवउत ।।

माता कौशल्या के आगन मे श्याम-कमल-सी आभा वाला बालक दिन प्रति-दिन लावण्य, गुण और वय मे बढता गया और एक समय ऐसा आया कि अयोध्या के सिंहासन पर आरूढ होने के बदले, लक्ष्मण और सीता सहित वन को चले गये तथा वही गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या का उद्धार किया—

शिला परसि पग श्याम, अज आणदघण ऊधरी ।
रिष गौतम ची वाम, देता दसरथदेव उत ।।

यह बात पवन वेग से सारे जगत मे प्रसारित हो गई और जैसे ही गगा पार करने के लिये घाट पर खडे होकर जब भगवान केवट से विनती करने लगे तो बिचारा केवट घबरा गया. उसने दीनता भरे शब्दो मे कहा कि यदि मेरी छोटी नैया, जिस पर मेरा सारा परिवार आधारित है, स्त्री बन गई तो मै अपने कुटुम्ब की भूखजन्य पीड़ा का आपके सामने क्या वर्णन करूं—

माहरी बेडी माँहि, हरि ज शिलावाळी हुई ।
कुटुम्ब क्षुधा दुख काहि, दाखा दसरथदेवउत ।।

भगवान राम के बार-बार कहने पर उसकी घबराहट और बढ गई बिचारा केवट असमजस मे पड गया और अपनी नाव लाने मे हिचकिचाने लगा पर सर्व समर्थ भगवान केवट की द्विधा को चुपचाप देख भर रहे थे—

सिल ऊधरती सारि, नाणै झीवर नाव लै ।
महिमा चलण मुरारि, देखै दसरथदेवउत ।।

इसी घटना का चित्र तुलसीदासजी ने भी **कवितावली** मे अकित किया है अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ तुलसी का केवट अपने विचारो पर अडिग रहता है वहाँ पृथ्वीराज का केवट अधिक आग्रही नही है

घनाक्षरी छद मे तुलसीदासजो ने ब्रज भाषा मे इस चित्र को इस प्रकार अकित किया है—

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछु वेद न पढाइहो ।
सब परिवार मेरो याहि लागि, राजा जू ! हो
दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढाइहौ ?
गौतम की घरनी ज्यो तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सो निषाद ह्वै कै वाद न बढाइहौं ।
तुलसी के ईस राम ! रावरे सो साँची कहौ,
बिना पग धोये नाथ नाव न चढाइहो ।।

तुलसी का उपर्युक्त छद जहाँ व्याख्यात्मक है वहाँ पृथ्वीराज ने दोहे जैसे छोटे छद मे गागर मे सागर भर दिया है

अजामिल, गज, गणिकादिक जैसे भक्तो का भी उद्धार करने वाले राम तो बडे कृपालु हैं. वे भक्तो के कष्टो को सहन नही कर सकते और इसीलिये उनकी आर्त पुकार सुन कर क्षणभर की भी देरी किये बिना सहायतार्थ दौडे आते है—

रहै नही रघुराइ, साहुळि सभळिये स्रवणि,
तू सेवगा सहाइ, दौडै दसरथदेवउत ।।

सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी परमात्मा के सिवाय इस असार ससार मे कोई भी तो ऐसा नही है, जिस पर आधार रखा जा सके ? ऐसे सुखानिधि राम अपने भक्तों के प्रेम के वश मे होकर और शत्रुओ का सहार कर, ससार के अपरिमित दुखो से उनका त्राण करते है—

पँ सेवगा प्रमेस, सदा सुधानिधि सारिखौ ।
राम दईता रेसि, दारण दसरथदेवउत ।।
सत्रहरा सधारि, त्रिभुवन तू वड श्रीकमा ।
इवडो को आधार, दासा दसरथदेवउत ।।

पृथ्वीराज ने राम नाम की महिमा का वर्णन करते हुये कहा है कि जो नाम की महिमा को जान गया है उसके समस्त सकट नाश हो जाते हैं—

राघव रघुपति राम, सीतावर मारगवर ।
नासै आया नाम, दोरिम दसरथदेवउत ।।

अहकार, भक्ति बाधक होने के साथ साथ मनुष्य के घोरतम पतन का कारण होता है, अतएव इसके निवारण की ओर ही हमे अभिमुख होना चाहिये. 'अहकार तो राजा रावण का भी न रहा' उक्ति को लक्ष्य कर ही कवि ने कहा कि अपार शक्तिशाली दुर्जेय रावण जब सीता का हरण कर अहकारवश हँसा तो उसे अपनी पराजय के फलस्वरूप दाँतो मे तिनका लेना पडा—

जुगपति रामण जेह, हमियौ करि सीता हरण ।
त्रिण लीधो ए तेह, दातै दसरथदेवउत ।।

इतना ही नही, न तो वह स्वय की रक्षा कर सका और न अपने परिवार तथा अनुचरो की महाबली रावण के दसकध कट गये और उसकी वैभवपूर्ण स्वर्णमयी लका का सर्वनाश हो गया. रावण रूपी आकाश मे आच्छादित पाप रूपी घटाओ मे भगवान राम की तलवार बिजली बन कर चमकी—

करि अबहर करागि, घर रामण भीतरि घटा ।
खिवी तुहारइ खागि, दामणि दसरथदेवउत ।।

और जब पाप रूपी अधकार की काली घटाएँ समाप्त हो गई और सूर्यवशी राम (दिनकर) प्रकाशित हुआ तो पाप और पापी के छिपने का कोई स्थान ही शेष न रहा—

लुकै जु किरणा लाखि, सरणै तो आगा असुर ।
रावण सकियौ राखि. दिणियर दसरथदेवउत ।।

अत मे कवि कहता है कि मेरा अपना क्या है जिसके लिये मै गर्व कर सकता हूँ सभी वस्तुएँ भगवान की ही है और उसी को समर्पित है, 'त्वदीय वस्तु गोविंदम् त्वदीय शरणम्' की भावना से अभिभूत होकर वह अत्यन्त विनम्रता से कहता है कि मेरे ये सारे छद (दूहा, गाथा, कवित्त, गीत) आदि हे प्रभु ! आपको ही समर्पित है और क्योकि वे आपको समर्पित हैं, इसलिये वे भी पवित्र हो गये—

प्रभु ताई थिया प्रवीत, जाइ समरपिया सखधर ।
गाह, कवित्त, छद, गीत, दूहा दसरथदेवउत ।।

और अत मे कवि आत्मश्रद्धा के साथ व्यक्त करता है कि सबका तारनहार भगवान मुझ जैसे डूबते हुओ का उद्धार कर मेरी जीवन-नैया अवश्य पार लगा देगे—

इवडा गिरिवर आप, हालै बेडा डड हुव ।
बोडै तारै बाप, दायै दसरथदेवउत ।।

चौवन दोहो मे श्री राम से सबधित घटनाओ और राम नाम के माहात्म्य का जो मनोहारी वर्णन किया है, वह राजस्थानी भक्ति साहित्य को कवि द्वारा प्रदत्त चिरस्थायी योगदान है

दसरथदेवउत रा दूहा

(१)

पिंड ब्रहमंड पळोइ, क्रम पासा जुग सारि करि
केसव भूलउ कोइ, दाव न दसरथदेवउत

(२)

जग गूडी जगनाथ, भूधर जे बाधी भमइ
हरि [1] मावसि तू हाथ, दोरी दसरथदेवउत

(३)

नमि अवतरियउ नाथ, चैत्र-मासि पाख चादण
सत-ऊधरण समाथ, दुपहरि दसरथदेवउत

(४)

सुदर स्याम सरीर, अब कउसिल्य'-आगणै
वाधण लागउ वीर, दिनि-दिनि दसरथदेवउत

---

१ पिंड = शरीर । पळोइ = फैलाकर, देखकर । क्रम = कर्म । पासा = चौसर की गोटी । क्रम-पासा = शुभाशुभ कर्म रूपी चौसर का खेल । सारि = जुआ खेलने का पासा । जुग-सारि = द्विपक्षी (शुभ-अशुभ) कर्म रूपी सारी ।

२ गूडी = पतग । बाधी = बधी हुई । भमइ = चक्र खाती है । सावसि = धारण की हुई । दोरी = डोरी, डोर ।

३ नमि = नौमि तिथि । सत-ऊधरण = सतो का उद्धार करने के लिए । समाथ = समर्थ । दुपहरि = दोपहर को ।

४. अब = माता । कउसिल्या = कौशल्या । आगणै = आगन मे । वाधण = बढ़ने । दिनि-दिनि = दिन-प्रतिदिन ।

पाठातर—

२ थावसि तो हाथ ।

३. उधरण स त समाथ ।

४. दिन-दिन ।

(५)

बळ तू बळ बळिवत, किय भजिवा पिनाक कजि
अँ तोलिया अनत, दिगजै दसरथदेवउत

(६)

परठै पाट प्रवीत, बैठा सिखरै बधियै
सोहे दुलहणि सीत, दूलह दसरथदेवउत

(७)

मोडै धनख महेम, पैं पाळै परणी परम
पैंज जनक परमेस, दुहिता दसरथदेवउत

(८)

सिला परसि पग स्याम, अज आणदघण ऊधरी
रिख गोतम ची राम, देताँ दसरथदेवउत

(९)

सिल ऊधरती सारि, नाठौ झीवर नाव ले
महिमा चलण मुरारि, देखै दसरथदेवउत

---

५ भजिवा = तोड़ने के लिए। कजि = लिये । तोलिया = तोल किया । दिगजै = दिग्गजो को ।

६. परठै = प्रतिष्ठित किया । पाट = सिहासन । प्रवीत = पवित्र । सिखरै = शीर्ष मे (मौर) । सीत = सीताजी ।

७. मोडै = मोड दिया, तोड दिया । धनख = धनुष । पैं = १. प्रतिष्ठा २. प्रतिज्ञा । पैंज = प्रतिज्ञा । परणी परम = परम शक्ति रूपा सीताजी को व्याहा ।

८. धण = पत्नी, स्त्री । ऊधरी = उद्धार किया । रिख = ऋषि । देताँ = देकर के, स्पर्श करके ।

९. सारि = सुन करके । नाठौ = भाग गया । झीवर = धीवर । चलण = चरण ।

पाठांतर—

६. सेहरो बधिये ।

८. आणदघण । गोतम ची वाम ।

९ नाणै झीव र, देखी दसरथदेवउत ।

(१०)

माहरी वेडी माहि, हरि । जे सिल वाळी हुवै
कुटब-खुध्या दुख काहि, दाखा दसरथदेवउत

(११)

नाम समौ हरि नीर, आगै ऊतरिया अनत
त्रीकम तौ हू तीर, दूरि न दसरथदेवउत

(१२)

राजि तिरता राम नीर कितीहिक मात्र नइ
नर ले तिरिया नाम, दूतर दसरथदेवउत

(१३)

रहै नही रघुराइ, साहुळि सभळियै स्रवणि
तूं सेवगा सहाइ, दोडै दसरथदेवउत

(१४)

बैठो तूं अणबीह, प्रसथानै परमेसवर
आसू अजवाळीह, दसमी दसरथदेवउत

(१५)

रामण होमण रीसि, ले चालै लका दिसै
जुधि जिक के जगदीस, दीठा दसरथदेवउत

---

१० माहरी = मेरी, अपनी । वेडी = नाव । सिल वाळी = शिला का स्त्री रूप बनने की अद्भुत बात । खुध्या-दुख = क्षुधाजन्य दुख । दाखा = कहूं, सुनाऊ ।

११. समौ = समान । तौ = तेरी । तीर = तट । हू = मैं ।

१२ तिरता = तैरते हुए । कितीहिक = कितनी सी । दूतर = दुस्तर । तिरिया = तिर गये ।

१३. साहुळि = पुकार । स्रवणि = कानो से । सेवगा = सेवको की, भक्तो की ।

१४ अणबीह = निडर । प्रसथानै = रावण का सहार करने के लिये प्रस्थान होने को । आसू = आश्विन मास । दसमी अजवाळीह = चन्द्र पक्ष की दशमी तिथि ।

१५ रामण = रावण । होमण = होमने के लिए । रीसि = क्रोध । जुधि = युद्ध को । दीठा = देखा ।

पाठान्तर—

१२ दुसतर ।

१५. रीछ । जुध जीतण जगदीस ।

(१६)

अति झळभळयइ अभ, दळ तोरौ देखै करै
प्रभु केहौ पारभ, दधि सिर दसरथदेवउत

(१७)

काइ न देखइ कत, काल्हा मदोवर कहै
ओ आवियौ अनत, दळ लइ दसरथदेवउत

(१८)

आयौ महिमा आणि, ताहरी रघु-कुळ-रा तिलक
पोत थयौ पाखाण, दीसै दसरथदेवउत

(१९)

ज्या बूडण चौ बग, तोई सिल तारै तरै
सुजि तोरै श्रीरग, दाखणि दसरथदेवउत

(२०)

इवडा गिरवर आप, हालै बेडा डड हुव
बोडै तारै बाप, दायै दसरथदेवउत

(२१)

हरि अे तोरी हीर, रीछे राखस माहि रिण
वानरि खाजइ वीर, दाणव दसरथदेवउत

---

१६ झळभळयइ = १ डरता है, २. क्रोधित होता है। अभ = पानी, समुद्र। पारभ = (१) प्रारभ (२) आक्रमण। दधि सिर = समुद्र पर।

१७ काल्हा = पागल। मदोवर = मदोदरी। ओ = यह। अनत = श्रीराम।

१८ ताहरी = तेरी। थयौ = हुआ। पाखाण = पाषाण, पत्थर। पोत = जहाज।

१९ ज्या = जहाँ। बूडण = डूबने का। चौ = का। बग = ढग। सुजि = वही। श्रीरग = लक्ष्मीपति, राम। दाखणि = देखने से ही।

२० इवडा = ऐसे। हालै = चलना, हिलना। बेडा-डड = नाव। बोडै तारै = डूबे हुए को तारना। बाप = पिता। दायै = इच्छा से।

२१ हीर = १ सहायता, २. शक्ति। खाजइ = मार देते हैं। दाणव = दानव।

पाठान्तर—

१८. पोत भयो।

१९ बूडण चौ ज्या बग।

(२२)

अणत करता आळि, वानर पइ विहडाविया
तैं रावत रिण ताळि, दूणा दसरथदेवउत

(२३)

सहिया ससमाथेह, चत्रभुज करि चाकी चकर
मारी अरि माथेह, दळिया दसरथदेवउत

(२४)

करि मगळ करिमाळि, पौरिस पडगरियइ पमण
तर राखस रणताळि, दहिया दसरथदेवउत

(२५)

करि एकणि कर काप, धरियौ बिय देखै धनख
बाका फाटा बाप, दइता दसरथदेवउत

(२६)

करि अवहर करागि घर रामण भीतरि घटा
खिवी तुहारइ खागि, दामणि दसरथदेवउत

---

२२ अणत = अनत श्रीराम । करता = करते हुए । आळि = खेल, युद्ध । पइ = चक्र । विहडाविया = डराये । रावत = राजा । रिण ताळि = १.युद्ध, २. युद्ध क्षेत्र ।

२३. सहिया = सहन किया । ससमाथेह = सुसमर्थ । चकर = चक्र । दळिया = दलन किया ।

२४ मगळ = अग्नि । करिमाळि = तलवार । पौरिस = साहस, शक्ति । पमण = १. पवन २. पकड कर । पडगरियइ = नाश करते है । राखस = राक्षस । रणताळि = युद्ध ।

२५. करि एकण = एक हाथ से । काप = तोड दिया । बिय = दूसरे से । बाका फाटा = भौचक्के रह गये । दइता = दैत्यो के ।

२६ अवहर = बादल । करागि = १ तलवार, २. हाथो से । खिवी = चमक गई । खागि = तलवार से । दामणि = दामिनी बिजली ।

पाठान्तर—

२४. किरमाल ।
२६ करालि ।

(२७)

रण कीधो श्रीरंग, करि वाटी खग झाळि करि
प्रजळइ प्रसण पतग, दीपक दसरथदेवउत

(२८)

लुकै जु किरणा लाखि, सरणै तो आगा असुर
रावण सकियौ राखि, दिणियर दसरथदेवउत

(२९)

केसव छेदै कध, सरि एकण वाहर श्रिया
बिहू त्रिहू बळि बध, दूणा दसरथदेवउत

(३०)

बळि-बधण बाणेह, पइ पाडै पूजी परम
दससिर दससिर केह, दस दिसि दसरथदेवउत

(३१)

जुगपति रामण जेह, हसियौ करि सीता हरण
तण ए पडियौ तेह, दातै दसरथदेवउत

---

२७ वाटी = बत्ती। खग-झाळि = खग रूपी ज्वाला। प्रसण पतग = शत्रु रूपी पतग। प्रजळइ = जल जाते हैं।

२८ लुकै = छिप जाते है। किरणा-लाखि = सूर्य। आगा = सम्मुख। असुर = रावण। दिणियर = सूर्य।

२९ कध = कंधा। श्रिया = सीता। सरि एकण = एक ही बाण से। वाहर = लौटाने के लिये।

३० बळि-बधण = वामन रूप धर कर बलि को बधन मे डालने वाले हे श्रीराम! बाणेह = बाणो से। पइ पाडै = शत्रु का विनाश करके। दससिर केह = रावण के। पूजी परम = सीता को प्राप्त किया।

३१ जेह = जो। हसियौ = हँसा। तण = तृण। तेह = जिसके। दातै = दातो मे।

पाठान्तर—

२७. खग झालि करि।

३१. त्रिण लीधो ए तेह।

(३२)

पइ पाडइ परमेस, पिडि गिणि गिणि पडियाळगे
लग गुदडी लक्रेस, डाढा दसरथदेवउत

(३३)

कै भजै दहकध, लका गयि लकाळ जिम
तू बैठौ बळि-बध, दावहि दसरथदेवउत

(३४)

साची माहि ससारि ताहरै अेकणि त्रीकमा
मुखि मू छा मे मारि, दाटी दसरथदेवउत

(३५)

रामण मत तू रेस, हेकणि बभीखण हुवउ
सुत काटत सोमेस, दसमिर दसरथदेवउत

(३६)

रोया लाभै राज, रजा तुम्हारै रामचद
इवडउ कोइ न आज, दूजौ दसरथदेवउत

(३७)

अजोधिया अणपार, तोरण आगम ताहरै
मंडिजै मगळचार, द्वार दसरथदेवउत

---

३२ पिडि = युद्ध मे । पडियाळगे = खड्गो द्वारा । गुदडी = गुद्दी, गरदन । लकेस = लकेश, रावण । डाढा = दाढो के ।

३३ दहकध = रावण । लकाळ = योद्धा । जिम = उसी प्रकार । दावहि = अधिकार से ।

३५ रेस = १. नाश २ गर्व । हेकणि = एक बार । बभीखण = विभीषण । सोमेस = महादेव ।

३६ रोया = रोने से । लाभै = प्राप्त होता है । रजा = आज्ञा, कृपा । इवडउ = ऐसा । दूजो = अन्य ।

३७ अणपार = असख्य । आगम = स्वागत । आगे मडिजै = रचे जाते है, शोभित हैं । मगळाचार = उत्सव । द्वारै = द्वार पर ।

पाठान्तर—

३२. दाढा ।

३४ हेकणि , मेमारि ।

३७. आजोध्या ।

(३८)

आस न जाई तेह, त्रीकम घर भगता तणा
माहव वूठा मेह, दूधे दसरथदेवउत

(३६)

पै सेवगा प्रमेस, सदा सुधानिधि सारिखौ
राम दईता रेसि, दारण दसरथदेवउत

(४०)

सत्रहरा सधारि, त्रिभुवन तू वड त्रीकमा
को इवडौ आधार, दासा दसरथदेवउत

(४१)

निज कौसिल्या नद, धाता करता सखधर
माता पिता मुकुद, दाता दसरथदेवउत

(४२)

राघव रुघपति राम, सीतावर सारगधर
नासै आया नाम, दोरिम दसरथदेवउत

(४३)

गिरि महले पुरि ग्रामि, मारगि जळ थळ माहरै
सरण विदेसै सामि, देसै दसरथदेवउत

---

३८ माहव = माधव । दूधे वूठा मेह = दूध की वर्षा हुई अर्थात् अत्यत शुभ प्रसग उपस्थित हुआ ।

३६ पै = पर, ऊपर । प्रमेस = परमेश्वर । सारिखौ = एक समान । दईता = दैत्यो को । रेसि = नाश किया । दारण = दारुण, भयकर ।

४० सत्रहरा = शत्रुओ को । वड = बडा । दासा = सेवको को, भक्तो को । इवडो = १ ऐसा, २ इतना ।

४१ धाता = रक्षक, पालक, २ विष्णु, ३ विधाता ।

४२. सारगधर = सारग धनुष्य धारण करने वाले श्रीराम । नासै = नाश होते है । दोरिम = सकट ।

पाठान्तर—

४०. इवडो को आधार।

(४४)

हरि तू हेकइ वार, जीहा जे जपियउ नही
पुणिसइ ताइ बिण पार, दे दे दसरथदेवउत

(४५)

सपेखियौ मसारि, पाळै जिहि पदमथ्थ
दीजै तीह दुवारि, दमरिप दसरथदेवउत

(४६)

तू दीठा श्री लोइ, राम जु रळियाइत हुवा
ताइ मानव है तोइ, देवत दसरथदेवउत

(४७)

प्रभु ताइ थिया प्रवीत, जाइ समरपिया सखत्रर
गाह कवित छद गीत, दूहा दसरथदेवउत

(४८)

निजि कजि तजि त्रिथनाथ, भुगति थयी करता भगति
साम सय ज सक स्राथ, देही दसरथदेवउत

(४९)

दीनानाथ दयाळ, तू जोइ स्राधख ताहरौ
काइ अम्ह समौ क्रपाळ देखै दसरथदेवउत

---

४४ जीहा = जीभ से । पुणिसइ = कहेगा । सनुष्ट करेगा । बिणपार = अपार ।
४५ सपेखियौ = देखा । पाळै = धारण करता है, भुकाता है । पदमथ्थ = मस्तक को चरणो मे । दसरिप = श्रीराम, दशरिपु ।
४६ लोइ = लोक । रळियाइत = प्रसन्न ।
४७ प्रवीत = पवित्र । समरपिया = समर्पण किया । गाह = गाथा, कथा ।
४८. निजि कजि = अपने लिये । त्रिथनाथ = पृथ्वीनाथ । भुगति = सुख । स्राथ = सर्वथा । देही = देह ।
४९ स्राधख = १. प्रभुत्व २ विरुद । काइ = क्या । समौ = साम्हनै ।

पाठान्तर —

४६. रलियावत ।
४७ प्रभुवे । जेहि समपिया सखधर ।
४८ निज कज । सक साथ ।
४९ की अम्हि समो क्रिपाल ।

(५०)

जग नाइक जग जाइ, दाणव दळबळ दाखता
तौ दीठा खळ ताइ, दुड़िया दसरथदेवउत

(५१)

राम सग्राम रमेह, त्रिगुट अगुट कटक तणा
गमिया दसे गमेह, दससिर दसरथदेवउत

(५२)

जा नाखियौ निराट, नाम तुमीणो नारियण
कडुबै ताहरै काट, दीसै दसरथदेवउत

(५३)

राम ज रोळवीयाह, रूठै दळ रावण तणा
सरगै साभळियाह, देवे दसरथरावउत

(५४)

गइ गइ किसन गुणेह, नर पाई नमिया नही
हाको करि हिरणेह, दौडे दसरथदेवउत

---

५०. जगनाइक = जगदीश्वर । दाणव = दानव । दाखता = दिखाते हुए, कहते हुए । खळ = दुष्ट, पापी । दुड़िया = नाश हो गये, भाग गये ।

५१ सग्रा रमेह = युद्ध करके । त्रिगुट = लका । कटक = काँटा रूप रावण । अगुट = सिर । दसे गमेह = दशो दिशाओ पे । गमिया = खो गए, नाश हो गये ।

५२ नाखियौ = छोड दिया । निराट = बिलकुल । तुमीणो = तेरा । नारियण = नारायण । कडुबै = कुटुम्ब मे । ताहरै = जिसके । काट = कलक ।

५३ रोलवीयाह = नष्ट कर दिया । रूठै = रुष्ट हो करके । सरगै = स्वर्ग मे ।

५४ गइ गइ = गा गा कर । गुणेह = गुणो को । नमिया नहीं = झुके नही । हाको = पुकार । हिरणेह = हरिणो के समान । पाई = पाँवो मे ।

पाठान्तर—

५२ नाख्यो जिहा निराट । कडूबै ज्यारै काट । जेही कडूबै काट ।

५४. गाइ राम गुणेह । गातां तुहिन गुणेह ।

भागीरथी-

जाह्नवी

रा

दूहा

श्री गंगाजो रा दूहा

भारतीय जनता को गगा के महत्व को समझाने की आवश्यकता नही है. हमारा रोम रोम उससे परिचित है फिर भी गगा हमारे देश की पावनतम सरिता है यह हमारी गरिमामय सभ्यता व सस्कृति की सदियो से मूक साक्षी रही है सहस्रो वर्षों से चले आ रहे इसके अविरल प्रवाह ने भारतभूमि को सिंचित कर सस्य-शामला ही नही बनाया है, पर ज्ञान-विज्ञान की उच्चतम उपलब्धियो का श्रेय भी इसके रमणीय व आकर्षक वातावरण का है

यह स्मर्तव्य है कि भारतवर्ष की अति पवित्र नदियो मे भी भगवती गगा नदी की जो महिमा है, वह सबसे बढ चढ कर मानी गई है, महाभारत[1] मे पुलस्त्य तीर्थ यात्रा मे कहा गया है—

> "न गगा सदृश तीर्थ न देवः केशवात्पर ।।९६।।
> यत्र गगा महाराज सदेशस्तत्तपावनम्
> सिद्धिक्षेत्र च तज्ज्ञेय गगातीरसमाश्रितम् ।।९७।।

अर्थात् गगा के समान दूसरा तीर्थ नही है और भगवान केशव से बढ कर दूसरा देव नही है हे महाराज ! जिस देश मे गगा है, गगा के तीर पर समाश्रित हो उस प्रदेश को तपोवन और सिद्धिक्षेत्र समझना चाहिये

भारत मे सहस्राब्दियो से स्त्री-पुरुषो की महत्वपूर्ण कामना गगा मे स्नान करके पाप मुक्त होने की चलती आ रही है इसमे निमज्जन कर वे अपने को कृतकृत्य समझते है यही नही, गगा जैसे तीर्थो पर जाकर स्नान, जप, हवन, श्राद्ध तथा दानादि करने से, ऐसी भावना थी कि कुल के सात पुरुष तक पवित्र हो जाते है

भूगोल की दृष्टि मे इसका उद्गम हिमालय मे अवस्थित गगोत्री भले ही हो, पर पौराणिक दृष्टि से इसका मूलागम तो शेषशायी भगवान विष्णु के दाहिने पैर के अँगूठे मे विजडित द्रवित मणि से है परमपावनी गगा, विष्णु, शिव और पृथ्वी तीनो का भूषण है—

> माइ पाय तणउ मुरारि, तणउ कठ प्रिथमी तणउ,
> तणउ सीस त्रिपुरारि, भूषण तूं भार्गीरथी ।

---

१ वन पर्व, अध्याय ५८.

सच तो यह है कि अपवर्ग की दात्री यह गगा स्वत प्रवाहित हो भारत भूमि मे नही आई है, इसके लिये राजा भगीरथ को घोर तपस्या करनी पडी है उनके भगीरथ प्रयत्नो के कारण ही इसका नाम भागीरथी पडा. ऐसी गगा के महात्म्य का वर्णन नही किया जा सकता गीता और गगा को समकक्ष स्वीकार करते हुये पृथ्वीराज कहते हैं कि—

गगा अरु गीताह, स्रवण सुणी अर साभळी,
जुग नर वे जीताह, भेदक है भागीरथी ।

अन्य देवता तो प्रसन्न होने पर एक जन्म के पापो को ही दूर करते हैं, पर गगा की बात निराली है, वह तो जन्म-जन्मान्तरो के विविध पापो को एक साथ ही काट देती है—

कीया पाप जिकेह, जनम जनम मड जूजूवा.
तइ भजिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी ।

और जो फल अन्य तीर्थस्थानो की यात्रा करने से नही होते, जो फल अन्य देवतागण नही दे सकते, केवल शुद्ध भावना से इच्छा करने पर उन्ही फलो को गगा माता तुरत दे देती है—

अन तीरथे अघात, अन देवते न आपियै ।
मात मुगति तिल मात, भावे तो भागीरथी ।।

गगा मे निमज्जन की बलिहारी है उस का तो कहना ही क्या है ? वह तो जन्म मरण के सारे सासारिक बधनो से अपने भक्तो को मुक्त कर देती है—

जाइ लोभ्रे लागाह, माता जामण-मरण की ।
भव सगळा भागाह, भेटइ तू भागारथी ।।

यह जानते हुये कि मनुष्य जिन सासारिक कार्यो को कर रहा है, वे असार हैं, वह उनके चित्ताकर्षक मायाजाल मे फँसता ही जाता है और अन्त मे वही मनुष्य इन सारे कर्मो से थक जाता है. थक कर वह गगा की शरण मे जाता है और वही पुण्य सलिला उसे इतने भटकने के बाद चिर विश्राम देती है—

करि करि घरि घरि काम, थारइ तट थाका थिया ।
वड-नदि ! दे विसराम, भ्रमिया बहु भागीरथी ।।

जब परमात्मा रूपी सिकलीघर भी शरीर रूपी लोहे के पाप रूपी काट को नही उतार सकता तब हे गगा माता, तेरे जल मे स्नान करने से सारे पाप दूर हो जाते है कवि ने मौलिक उपमा से गहन अर्थ को बड़ी सुदरता से स्पष्ट कर दिया है—

काया लागौ काट, सिकलीगर सुधरै नही ।
निरमळ होई निराट, भेव्या तू भागीरथी ।।

गगा के अद्भुत तेज का लोहा ससार मानता है प्रत्येक देवी-देवता अपने-अपने भक्तो का उद्धार घोर तपश्चर्या के बाद परीक्षा लेकर करते है, पर गगा-मैया तो केवल उसके पानी को मुँह मे डालने वाले के सारे पापो का नाश कर देती है—

ताहरउ अदभुत ताप, मात ससारे मानियउ ।
पाणी मुहडइ पाप, जाळइ तू जाह्रणवी ।।

पृथ्वीराज की इच्छा है कि उन्हे नित्यप्रति नहाने के पश्चात् गगाजल पान करने को मिले, वे सदैव सुर-सरिता गगा का स्मरण करते रहे, गगा के किनारे पर वास कर तपश्चर्या करने को मिले और प्रतिक्षण पतित-पावनी गगा के दर्शन करने को मिले तो मेरा जीवन धन्य धन्य है—

न्हाये पीयू नीर, समरू जपता सुरसरी ।
तपत वसू तो तीर, जोता तो जाह्रणवी ।।

अन्य कोई रास्ता न देख कर यह भयभीत बालक आपकी शरण मे आया है हे मा! यम के फदो को काट कर, इस दास पर दया कर, इसका उद्धार कीजिये—

आया सरणि ससारि, बीहता तो बाळका ।
आई! लेह उबारि, जम हूता तू जाह्रणवी ।।

भागीरथी-जाह्नवी रा दूहा

(१)

हुवइ सु नामइ होई, ब्रह्म सरेसो वास तव
तू नइ त्रीकम तोइ, भेद नही भागीरथी

(२)

हरि गगा हेकार, कहइ जिके मजन करै
भू डा ही क्रम-भार, भवि न हुवइ भागीरथी

(३)

कीधा पाप जिकेह, जनम-जनम मइ जूजुवा
तइ भाजिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी

(४)

कापाळि कापाळी, तीरथ सरगे ताहरइ
पटतरि पाताळि, तन भूतळि भागीरथी

---

१. हुवइ = जो होता है। नामइ = नाम के प्रभाव से। सरेसो = समान। वास = निवास। तोई = वह, उस, मे।

२ मजन करै = स्नान करते है। भू डा ही = पापी जनो को। क्रमभार = कर्मो का बोझा। हेकार = एक बार। भवि = भविष्य मे, कभी भी।

३. जूजुवा = भाँति भाँति के। जिकेह = जो। तिकेह = उनको। भेळा = इकठ्ठे ही। भाजिया = नाश किया।

४. कापाळी = शिव। कापाळि = कपाल (सिर) मे। सरगे = स्वर्ग मे। ताहरइ = तेरे। पटतरि = अतर पट। भूतळि = धरातल, ससार।

पाठान्तर—

१. सरीसो।

२ हिकवार। भवे।

४. पट अतर। भूतल तन भागीरथी।

(५)

सुरसरि ! दीपँ सात, नवे खडे, चहुए निगम
मानीजइ तउ मात, भवण त्रिहू भागीरथी

(६)

देवी तू देवेह, जणणी करि मारइ जगति
मानी मानवियेह, भुवँगे ही भागीरथी

(७)

अलकनदा आइह, सुरधुनि गगा सुरसरी
जे जाह्नवी जीह, भोगवती भागीरथी

(८)

माइ ! पाय तणउ मुरारि, तणउ कठ प्रिथमी तणउ
तणउ सीस त्रिपुरारि, भूखण तउ भागीरथी

(९)

परि केही परिवाह, सरिखाँ मत अम्ह सारिखा
निज पथ रावत नाह, भागीरथ भागीरथी

---

५ दीपँ सात = सात द्वीप । नवे खडे = नव खडो मे । चहुए निगम = चारो वेद । भवण त्रिहू = तीनो लोक, त्रिभुवन मे ।

६ देवेह = देवताओ द्वारा, देवलोक मे। जणणी = जननी। मानवियेह = मनुष्यो द्वारा। मानव लोक मे । भुवगे = नागो द्वारा । पाताल लोक मे ।

७ सुरधुनि = देवताओ की नदी, गगा। भोगवती = गगा, पाताल गगा । जाह्नवी = जाह्नवी, गगा ।

८ माइ = माता । पाय = चरण । त्रिपुरारि = शिव । तणउ = के । मुरारि = विष्णु । कठ प्रिथमि = पृथ्वी कण्ठ, गगा ।

९ परि = समान । परिवाह = (१) दान (२) दातार । सरिखा = समान । रावत नाह = राजाओ का राजा, महाराजा (भागीरथ) ।

पाठातर--

५ नवखडा ।
६ भमगे ।
८. भूषण तू ।
९. परि केहो ।

(१०)

तरि थाकउ तउ तारि, सरमा कउ ए सकळप
कछ काइ मछकाइ कारि, भेक चुकाइ भागीरथी

(११)

सुरसरि वाछउ स्रेव, थारइ तट कीयउ थकउ
देवि न वाछउ देव, भूपति ही भागीरथी

(१२)

हीडोळी तउ हास, छते विमाणे आव छव
अब लहरी उजास, भाळिस कदि भागीरथी

(१३)

जंपियौ नाम न जीह, निज जळ तन पीधौ नही
देवि त धवळइ दीह, भूला ताइ भागीरथी

(१४)

न्हाये गग नवार, अणन्हाया फळ जो अम्हा
सो खारी ससार, भीखारी भागीरथी

---

१० तरि थाकउ = जो ससार रूपी सागर को तैर कर थक गए। सरमा = शैलूष गधर्व की कन्या। भेक = मेढक। कारि = सीमा।

११ वाछउ = कामना करता हूँ। स्रेव = सेवा। थारइ = तेरे ही। कीयउ थकउ = (निवास) करते हुए।

१२ हीडोळी = हिलाते हुए। हास = गले का हार। छते विमाणे = विमानो मे स्थित (देवता)। छव = शोभा। अब = गगा माता। भाळिस = देखूगा। कदि = कभी, कब।

१३ निज = तुम्हारा। धवळइ दीह = प्रकाश वाले दिन मे भी, सुख के दिनो मे।

१४ नवार = निवारण करती है। अणन्हाया = बिना नहाये वालो का। अम्हा = हमको।

पाठान्तर—

१०. तू तार। कछमछ काया कार।

११. सेव।

१२. छतउ विनार्ण भाव छब। लहरीजै।

(१५)

नित नित नवा नवाह, मजण 'करता मानवी
भव टाळियौ भवाह, भव कीजइ भागीरथी

(१६)

भूखण चद भुजग, न्हाये ताइ पावइ निधू
गऊ कितीकइ गग, भडारे भागीरथी

(१७)

महि सो जळि मजताह, जहवा हइ तहवा जणणि
इन्द्र भउ मजण ताह, भल खपउ भागीरथी

(१८)

माता माणसियाह, जाया जाणीता नही
ताहरइ मजण थयाह, भूप थया भागीरथी

(१९)

मजण छेहै मात, सह सारीखा सुरसरी
तजियै करमै तात, भला बुरा भागीरथी

(२०)

गगा निज जळि गात, धौयै आतम धोइयै
महमा चीतइ मात, भामी हू भागीरथी

(२१)

अम्ह कीयौ अनुमान, विह जणि लिखि विरतो थयो
सुरसरि वडइ सनान, भीसळिया भागीरथी

---

१५. नवा नवाह=नये नये । टाळियौ=दूर किया । भवाह=भव भव का। भव कीजइ=जन्म को सार्थक कीजिए ।

१६ निधू=धन, सपत्ति । कितीकइ=कितनीक । भडारे=भडार मे ।

१७. जहवा हइ तहवा=जैसे हैं वैसे । भल=अच्छा ।

१८. माणसियाह=मनुष्यो को । जाया जाणीता नही=जन्म लेने पर भी जो प्रसिद्ध नही हुए । थयाह=-हुए ।

१९. छेहै=अत मे ।

२०. आतम धोइयै=आत्मा को उज्जवल बनाते है अर्थात् आत्म ज्ञान हो जाता है । भामी=बलिहारी । चीतइ=चितन करके । हूं=मै ।

२१ अनुमान=निश्चय, अदाज । विह=विधाता । विरतो=निवृत । वडइ सनान=मात्र स्नान करने से । भीसळिया=नष्ट हो गये ।

पाठांतर—

२१. सुरसरि करहि सिनान ।

(२२)

समरण परिया सात, समधरिया जे सुरसरि
मजण लाभइ मात, भाग किहि भागीरथी

(२३)

तूझ सनानै तोइ, माता जे लाभइ मुगति
हरि अधिकारइ होइ, भजता तइ भागीरथी

(२४)

लाखा देवै लोइ, माता नह थायै मुगति
हाडे पडियै होइ, भीतरि तइ भागीरथी

(२५)

अन तीरथे अघात, अन देवने न आपियै
मात मुगति तिल-मात, भावे तो भागीरथी

(२६)

माता लाभइ माग, तूझ सनाने सुरसरी
आफळइ को आग, भैरवझप भागीरथी

(२७)

अन वाटिवा अनेक, काय साधन साधां करइ
हइ हइ काणव हेक, भगत तूझ भागीरथी

---

२२. समरण=स्मरण, भक्ति। सात=मातो पदार्थ। परिया=अलग, अप्राप्त। समधरिया=सामने रक्खे हुए हैं। किहि=जिनके।

२३ तोइ=जल। लाभइ=प्राप्त होती है।

२४. लाखा=लाखो। लोइ=लोक। हाडे पडियै होइ=गगा मे अस्थि विसर्जन करने ही से मुक्ति हो जाती है। देवै=दान करते है। लाखा देवै=लाखो का दान करने पर भी।

२५ अन=अन्य। आपियै=देते हैं। भावे=भावना से ही इच्छा करने से। तिलमात=तिलमात्र, थोडा सा।

२६ माग=मुक्ति मार्ग। आफळइ=पछाडे, नाश करे। आग=अग। भैरवझप=मनवाछित प्राप्ति के लिए इष्ट आराधना स्वरूप बहुत ऊँचे से कूद कर प्राण त्यागने की क्रिया, भैरवझाप।

२७ काणव=१ न्यूनता २ महत्व।

पाठातर—

२६ भैरूझाप।

(२८)

लागी साकळि लोइ, छाटे छाटत हइ छळी
तणी करम तण तोइ, भोळइ हइ भागीरथी

(२९)

पथ कसट कीधाह, दान क तीरथ न्हाइ करि
लोके फळ लीधाह, भाखे तो भागीरथी

(३०)

जाइ ऊपाये अग, जाळे गाळे जोगिया
ताइ गति दीधी गग, भेळा हइ भागीरथी

(३१)

सिध पामी तू स्रेव, माता ! असुरे मानवे
दइते देवे देवि, भूते ही भागीरथी

(३२)

मारग मात तणाह, उवरि जाइवा-आइवा
घण मुखि वार घणाह, भागी तइ भागीरथी

(३३)

अवगाहे तू अग, तन छळिये तन छेदिये
गळे जु दीजइ गग, भाजे तन भागीरथी

---

२८. साकळि=शृखला । छाटे=जल बिंदु । छाटत=छाँटने से ।

२९ कसट=कष्ट । कीधाह=किये । भाखे=कहने से (नाम लेते ही) ।

३०. ऊपाये=उत्पन्न किये । भेळा=मिलने से (तुझ मे) । जाळे=जला दिये । गाळे=मिटा दिये ।

३१. सिध=१. सिद्धि २ सिद्ध महात्माओ से । पामी=प्राप्त की । स्रेव=सेवा । भूते ही=भूत-प्रेतादिक से ।

३२ जाइवा-आइवा=आवागमन । उवरि=उदर मे, गर्भ मे ।

३३ अवगाहे=स्नान करने से । भाजे=नष्ट किये, नष्ट होने पर ।

पाठातर—

२८. हइबली ।

२९. भागे ।

३०. ऊपाये जिहि अग , जोगिया । जो गया , गति ताइ दीधी गग ।

३१. सेव ।

३२. उबरि ।

३३. छलिये मन तन छेदिये ।

(३४)

मिळिया उवरि न मात, जाय सु वळि जाळनळि
गिळिया माछ जु गात, भिळिया तो भागीरथी

(३५)

चद्राणणि चउरेह, आइ ज आगउ बाविजइ
तरगे तूझ तणेह, भीना जे भागीरथी

(३६)

सुख आ लाया जाह, मन सरि सुणिवा सुरधुनि
आवी आवे नाह, भावी सुख भागीरथी

(३७)

देवी दीवटियाह, आई ! आधारण तणउ
तो भजता भजताह, भव केहउ भागीरथी

(३८)

जाइ लोअे लागाह, माता जामण मरण की
भव सगळा भागाह, भेटइ तू भागीरथी

(३९)

पडिया जे तू पाइ, केस ज नर का काटिवा
गंगा अहिया ताइ, भुजे निज भागीरथी

---

३४ जाळनळि=ज्वालानल । गिळया=निगल गये । माछ=मत्स्य, मछली ।

३५. चद्राणणि=चद्रानिनि । चउरेह=चारो ओर । तरगे=तरगो मे । तूझ तणेह=तेरी । भीना=भीगा (स्नान किया) ।

३६. सुरधुनि=गगा । सरि=सरिता ।

३७. दीवटियाह=दीये, दीपक । आधारण=१. सहायता २. आरती । केहउ=कैसा भी । भव=जन्म-मरण का दुख ।

३८ जामण-मरण=जन्म-मरण । सगळा=सकल । भेटइ तू=तेरा दर्शन करते ही ।

३९. तू पाइ=तेरे चरणो मे । केस''''काटिवा=चूडाकरण सस्कार के केश । भुजे=भुजाओ मे (तेरे जल मे) ।

पाठान्तर—

३४. जालानलै ।

३५. आइज आँगण लाघिजइ ।

३८ लोए जाइ लागाह ।

३९ भुजा बीच ।

(४०)

आपो पेखँ आप, थारउ जण निरभय थयौ
प्रिसण सबळ जिम पाप, भीर सबळ भागीरथी

(४१)

आग्री ! आडी थाइ, जमपुर जावेवा तणो
मजणहारा माइ, भोगळ तू भागीरथी

(४२)

अेक ब्रि लागी पाप, अन देवते न ऊतरै
आई ! आये आप, भावी क्रित भागीरथी

(४३)

एक गुरड अवसार, एकज तउ कल ता उवरि
आइ ! आवणहार, भीड पडी भागीरथी

(४४)

तइ नीगरडा लोइ, जणणी जाणेवा जठरि
हुता उ काहू होइ, भुइ अतरि भागीरथी

(४५)

आई ! आपाणाह, वाजम टाळै बालका
भणता मात भलाह, भू डा ही भागीरथी

---

४० आपो=सहारा । प्रिसण=शत्रु । थारउजण=तेरा भक्त । थयौ=हुआ । भीर=सकट ।

४१ आई=माता । आडी=कपाट । जावेवा=जाने वालो के लिये । भोगळ= अर्गला, रक्षा रूप आगल । मजणहारा=स्नान करने वालो को ।

४२ बि=दो । देवते=देवताओ से । न ऊतरै=उतरता नही । लागी=लग गये । क्रित=कृत्य । अेक बि=अनेक ।

४३ गुरड=गरुड । गुरड-असवार=विष्णु । भीड पड़ी=सकट पडने पर । आवणहार=आने वाला ।

४४ नीगरडा=निगुरा । जठरि=पेट । भुइ=पृथ्वी । जाणेवा=जन्म पर ।

४५. आपाणाह=अपने । बाजम=वाजिब । बालका=बालको के (भक्तो के) भणता=याद करते ही । भू डा=दुष्टजनो को ।

पाठान्तर—

४४ हु ता काहु होइ ।

४५ वाजप , वाजब ।

(४६)

वारि मिहम ना वारि, थाका जग तू एक थिति
कीया जह्नकुवारि, भेख घणा भागीरथी

(४७)

करि-करि घरि-घरि काम, थारइ तट थाका थिया
वड नदि ! दे विसराम, भ्रमिया बहु भागीरथी

(४८)

खीणा तन खिसियाह, थाका जर-जीरण थया
तू हि ज दिसि त्रिसियाह, भूखा ही भागीरथी

(४९)

गग पखाळै गात, जठर भरेवी कठि जळ
मइ क्रम कीधा मात, भसम सात भागीरथी

(५०)

मागिया मा मलियेह उवरि उदइगिरि आइवा
सुरसरि साभळियेह, भासकरइ भागीरथी

(५१)

जव तिल जितरो जाय, हेक कणूको हाड रो
मुवा पछै ही माय ! भेळै गत भागीरथी

---

४६ मिहम = महिमा। जह्नकुवारि = गगा, जह्नुकन्या।
४७ भ्रमिया = धोखे खाये। वड नदि = गगा।
४८ खीणा = क्षीण। खिसियाह = भाग गये। जर जीरण = जरा से जीर्ण, त्रिसियाह = प्यासे। तू हि ज दिसि = तेरी शरण मे आये।
४९ पखाळै = प्रक्षालन करते हैं। मइ = मैं। सात क्रम = सात जन्मो के कर्म, अनेक जन्मो के कर्म। भसमसात = भस्मसात्, भस्मरूप।
५०. उदइगिरि = उदयाचल। भासकरइ = भास्कर को।
५१ जव-तिल = जौ-तिल के समान छोटा। जितरो = जितना, के समान। कणूकौ – कण, छोटा टुकडा। हाड रौ = मृतक की अस्थि का। भेळै गत = सद्गति कर देती है। मुवा पछै ही = मरने के बाद भी।

पाठान्तर—

४६. मिहमन, महीमन।
५० माम लिएह।

(५२)

काया लागौ काट, सिकलीगर सुधरै नही
निरमळ होइ निराट, तू भेट्या भागीरथी

(५३)

गगा ऊजळ गात, सिर सोहै सकर तणै
मुकट जटा मे मात, भळकै तू भागीरथी

(५४)

गंगा जळ गुटकीह, निरणै ही लीधी नही
भव भव मे भटकीह, भूत हुवा भागीरथी

(५५)

गगा अरु गीताह, स्रवण सुणी अर साभळी
जुग नर वे जीताह, भेद कहे भागीरथी

(५६)

मोडौ आयौ माय, तै वेगो ही तारियौ
पडियो रहसू पाय, भाटो हुइ भागीरथी

(५७)

जाळ्या पुत्र जिकेह, साठ सहस सागर तणा
तै तारिया तिकेह, भेळा ही भागीरथी

---

५२. सिकलीगर = सुकृत रूपी सिकलीगर से । निराट = सर्वथा । काट = पाप रूपी जग ।

५३ भळकै = चमकती है ।

५४ गुटकीह = एक घूट । निरणै = प्रात काल बिना अन्न ग्रहण किए । भटकीह = भटकेगा, भटकेंगे ।

५५ जीताह = विजय प्राप्त की, जन्म-मरण के चक्कर से छूट गये । भेद = रहस्य ।

५६. वेगो = जल्दी । पडियो रहसू पाय = चरणो मे पडा रहूँगा । भाटो हुइ = घाट का पत्थर होकर ।

५७. जाळया = जलाया । सागर तणा = सगर राजा के साठ हजार पुत्रो को । तिकेह = जिनको । भेळा ही = एक साथ ।

पाठान्तर—

५६. भागे हुई ।

(५८)

लाखा देवा लोय, मात न ह्वै भजता मुगत
हाडा पडिया होय, भीतर तोइ भागीरथी

(५९)

सरसइ सिंध सपराइ, गोदावरि तू गोमती
वीजी वीजी माइ, जणणी तू जाहरणवी

(६०)

अवर कुवण आणीह, सरिता तोरी तू सरिति
पइ मिळि ले प्रामीह, जमना ही जाहरणवी

(६१)

मारग आपो माइ, सातइ हइ दीपा समद
सकइ न तू समाइ, जळनिधि हइ जाहरणवी

(६२)

पहिलउ धोये पाप, निज निधि हइ जीपै जगत
बीजा हता बाप, तइ जीता जाहरणवी

(६३)

सिव करता सेवाह, सब ही चौमासे सुवइ
देवि मुगति देवाह, जागइ तू जाहरणवी

---

५८ न ह्वै = नही होती है। हाडा = हड्डियो के।

५९ सरसइ = सरस्वती। सिंध = सिन्धु। सपराइ = सफरा, क्षिप्रा। बीजी बीजी = (इनके अतिरिक्त कावेरी नर्मदा आदि) भिन्न-भिन्न रूपो मे। जणणी = जननी। जाहरणवी = जाह्नवी।

६०. कुवण = कौन (श्याम वर्ण ?)। प्रामीह = प्राप्त हुई।

६१ आपो = आपका। दीपा = द्वीप। समद = समुद्र।

६२ बीजा = दूसरे। हता = थे, (वध करने वाला ?)

६३. चौमासे सुवइ = चातुर्मास मे जब सब देव सो जाते है। देवाह = देने के लिये।

पाठान्तर—

५९. सिंधु सफराइ।

(६४)

ताहरउ अदभुत ताप, मात संसारे मानियउ
पाणी मुंहड़इ पाप, जाळइ तूं जाहरणवी

(६५)

दीपक देव खदोत, के तारा कै तमीचर
अधिक अंधार उदोत, जगिचख तूं जाहरणवी

(६६)

माता आपौ मूझ, बसणा खीराडे करे
ताहरइ सरिखउ तूझ, जस ऊजळ जाहरणवी

(६७)

तइं सेवगां तणाह, कूट बीज काटे किया
आतम आपाणाह, जळ जेहा जाहरणवी

(६८)

कोडी मुंहि कीधाह, आई ! जे अपराध अम्ह
मात म मानेवाह, जायां मिटि जाहरणवी

(६९)

ताहरइ गंग तवांह, तीरथ सगळां ही तिलक
नीरां नीर नवांह, जे न्हायइ जाहरणवी

---

६४. ताप = तेज, प्रताप । मुंहड़इ = मुँह में ।

६५. खदोत = खद्योत । तमीचर = चन्द्रमा । उदोत = प्रकाश, तेज । जगिचख = सूर्य । के = कई । कै = अथवा ।

६६. बसणा = निवास । खीराडे = तट पर (?) । जस ऊजळ = उज्वल यश ।

६७. सेवगां = सेवक, भक्त । कूट = पाप, असत्य । आपाणाह जेहा = अपने समान उज्ज्वल ।

६८. कोडी = करोड़ों । मुंहि = मैंने । (कौडी मुंहि = अनेक प्रकार के ?) कीधाह = किये । आई = माता । जायां = जाने से । अम्ह = हमने । म = मत, नहीं ।

६९. तवांह = कहते हैं । तिलक = श्रेष्ठ ।

पाठान्तर—

६८. मातम ।

६९. तवाह नवाह ।

(७०)

वड नदि महिमा वारि, सुरसरि कहिवा कुण समथ
जो धारि जउ चारि जटा मुगट जाह्रणवी

(७१)

एक ज तू सक एव, सब ही आछइ सुरसरी
दुहु लोके त्रिहु देवि जुगे चहु जाह्रणवी

(७२)

न्हाया थाइ अघ नास, आई घाटे औघटे
मिस्री चउ मीठास, जेही तउ जाह्रणवी

(७३)

तन तीरथ त्री लोइ, देवे अवर न देवता
काटण पाप न कोइ, जा मिलि तौ जाह्रणवी

(७४)

माता माजतां माइ, आया फळ ते आपिया
त्यागे थियइ न ताइ, जागइ थियइ न जाह्नवी

(७५)

जळ मजता जिकाइ, थारइ गगा गति थियइ
तपइ न थायइ ताइ, जपइ न थायइ जाह्नवी

---

७० समथ = समर्थ । कुण = कौन ।

७१ सक एव = कर सकने वाली । आछइ = भलाई । लोके त्रिहु जुगे चहु = त्रिलोक मे और चारो युगो (इन दोनो) मे ।

७२. अघ = पाप । औघटे = (१) दुर्गम (२) कष्ट साध्य । थाइ = होते है ।

७३ अवर = अन्य । त्रीलोइ = त्रिलोक मे ।

७४, आपिया = दिये । त्यागे = त्याग करने से । जागइ = यज्ञ करने से । थियइ न = नही होता है ।

७५, जिकाइ = जिनकी । गति थियइ = गति हो जाती है । तपइ = तपस्या करने से । जपइ = जप करने से । न थायइ = नही होती है ।

पाठातर—

७३ जामलि ।

७४ मजन , आया फल तैं आपिया ।

(७६)

सुरसरि थारइ स्रेवि, ताइ फळ तपै न तीरथै
दान न थायइ देवि, जोग न थायइ जाह्नवी

(७७)

तन तीरथ त्रीलोइ, मनवे दैते मानवे
जइ तउ मानी जोइ, जवनेही जाहरणवी

(७८)

मागिया लाभै माइ, विसम प्रथम गगा विसन
निमखे नाम नियाइ, जगदीसे जाहरणवी

(७९)

वड नदि ' दे विसराम, दीखाळै लोका दुहू
नारायण-चउ नाम, जोडै तइ जाहरणवी

(८०)

देवी तमसि दीवीह, लाधी तु आधा लाकडी
निरधनिया नीवीह, जीवी तू जाहरणवी

(८१)

कूची तरग करेह, मोख तणी मोखाविया
ताळा तीरथडेह, जडिया नकि जाहरणवी

---

७६ थारइ स्रेवि=तेरी सेवा करने से । तपै=तप करने से । जोग न थायइ= योग साधना करने से भी प्राप्त नही होता है ।

७७ त्री लोइ = तीनो लोको मे । जवने ही=यवनो ने भी । दैते मानवे जवने ही मनवे=दैत्यो, मानवो और यवनो ने भी तेरी महिमा को माना है ।

७८ निमखे=निमिष मात्र ही । नियाइ=न्याय । लाभै=प्राप्त होता है । विसन=विष्णु ।

७९. विसराम=मुक्ति । जोडै=साथ मे । दिखाळै=दिखलाती है, प्राप्त करवाती है । चउ=का ।

८०. तमसि=अधेरा । दीवीह=दीवट, दीपक । लाधी=प्राप्त हुई । आधा= अधो को । नीवीह=आधार । जीवी=जीवन रूप ।

८१ कूची=चाबी । मोख=मोक्ष । मोखाविया=दिलाने वाली । करेह= बनाई । जडिया=लगे हुये, बद किये हुये ।

पाठातर—

७६ थायइ सेवि, ते फल।

७९ नाराइण वड नाम।

(८२)

आ ब्रह्म अवगाहेह, आप लगै लग ईसवर
मुवा ज तू माहेह, जीवाडिया जाह्नवी

(८३)

न्हाये पीयू नीर, समरूं जपता सुरसरी
तपत वसू तो तीर, जोवता तो जाह्नवी

(८४)

सुरसरि पखो सरीर, पीता न्हाता पेखता
तपता हुइ तो तीर, जपता हुइ जाहरणवी

(८५)

आया ! हिरदै आय, दया करै दासा तणइ
माथा ऊपर माय, जीवाडिया जाहरणवी

(८६)

आया सरणि ससारि, बीहता तू बाळका
आई ! लेह उबारि, जम हूता तूं जाहरणवी

(८७)

कीधी क्रिया करेह, करतां सुणता कीरतन
तड छोरूडा छेह, जोखा हूता जाह्नवी

(८८)

पुळियै मग पुळियाह, दरस हुवां अदरस हुवा
जळ पैठै जळियाह, मदाक्रम मदाकिनी

---

८२ मुवा = मरे, मृत्यु को प्राप्त हुये । माहेह = अन्दर, भीतर । जीवाडिया = अमर किये । ब्रह्म = ब्रह्म घाट, ब्रह्म कुड ।

८३ समरू = स्मरण करता हूँ । वसू = निवास करूं । जोवता = देखते हुए, दर्शन करते हुए । तपत = तपस्या करते हुए ।

८४ पेखता = देखते, दर्शन करते । पखो = सहारा ।

८५. आया = माता । दासा तणइ = दासो पर । माथा = मस्तक ।

८६ बीहता = डरते हुये । हूता = से । आई = माता ।

८७ छोरुडा = बालक । छेह = कष्ट, अन्त । जोखा = भय से ।

८८ पुळियै = जाने से । पुळियाह = नष्ट हो गये । अदरस = अदृश्य । जळियाह = जल गये । मदाक्रम = पाप ।

पाठान्तर—

८६ बीहता तो बालका ।

प्रकीर्णक

ईश्वर-भक्ति विषयक पद

ईश्वर भक्ति सबधी जो पद्रह पद हमे अद्यावधि उपलब्ध हुये है, मोटे रूप से उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१	आरती विषयक पद	२.
२.	करणीजी (माताजी)	१
३.	श्री राधाजी का शृगार वर्णन	१. व्रजभाषा मे
४	विवाहोत्सव पर गाया जाने वाला बधाई गीत	१
५.	सदेश-पठन विषयक पद	१.
६.	अन्य भक्ति पद	६. (एक पिंगल मे)

(१) आरती विषयक पद

दोनो आरती विषयक पदो मे प्रथम आरती अत्यन्त सरल है जबकि दूसरी साग रूपक लिये सुदर साहित्यिक कृति है प्रथम आरती मे विविध देवतागण अपने-अपने ढग से आरती की शोभा बढा रहे है. ब्रह्मा वेदो का उच्चारण कर रहे है तो नारद वीणा बजा रहे है. शकरादि देवतागण जय जयकार कर रहे है तो सरस्वती स्तुति गा रही है इमी आरती के दूसरे छद मे कवि उन सारे तीर्थस्थलो का वर्णन करता है, जिनको भगवान ने अपने चरण कमलो से पवित्र बनाया था. यहाँ भूगोल-वेत्ता की भाँति उनके नामो को गिना कर उनकी भी आरती करने को कहता है—

उडीसै जगनाथ आरती बदरीनाथ आरती,
वळि हरिद्वार हि आरती गगासगम आरती,
गया अवतिहि आरती, अनै रामेसर आरती,
आरती पाणि कमळावती आरती द्वारामति,
जिणि जिणि थानक गोविंद वसै,
तिणि तिणि ऊपर आरती ।

द्वितीय आरती एक पद्यबध रूपक है. पृथ्वीराज ने एक सुकवि के लिये प्राण-समा आवश्यक अक्षर, शब्द, छद, अलकार, गुण, अर्थ रसादि का मदिर मे बजते करताल, नगाडे और मृदग, भगवान के पहिनने का मुकुट और फूलो के हार, मदिर के आंगन मे चौक भरने के लिये मोती इत्यादि अनेक वस्तुओ से सुदर रूपक (अरथाकळ) बाँधा है—

धुर कवियण धरहरै, आगळी नट छद अवसरै ।
ऊजळे मोतियै आखरै, भले गुण चवक भरै ।।
दुहडा दमम दडीयडे, ग्राहा अदग गडियडै ।
भेरभह पिंगळ भडियडै, रूपक व्रद रुडै ।।
धुनि वेद साटक घडियडै, पडसदा अघ गिर सिर पडै ।
जस मोड माहव सिर जडै, चवसरी माळा चडै ।।
वातिया अरथ उत्तम वणै, घ्रत नेह सीचे घण घणै ।
बध जोत राग प्रबवण, करताळ थाळ कणकणै ।।

(२) माताजी विषयक पद

भूतपूर्व बीकानेर राज्य की इष्ट देवी आई (करनी माता) है. उनका प्रसिद्ध मदिर देशनोक मे है. यह पद आई माता के भक्तो मे अत्यन्त प्रचलित है इस पद मे देवी के आई, काछराय, काछ-पचाळी, सचाळी, चाळक, भीभळियाळी, धावळियाळी इत्यादि अनेक नामो का उल्लेख है इसमे कवि ने प्रार्थना की हे कि सकट काल मे भयभीत भक्तों का उद्धार करने वाली हे माता ! अन्य किसकी उपासना करूँ ? आप मेरी अति शीघ्र रक्षा कीजिये—

पीथळ वाहर काछ पचाळी, लाल मिळो मुझ हेकणताळी ।

(३) श्रीं राधाजी का शृंगार वर्णन

तीन षटपदियो वाले इस पद मे कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के अत्यन्त निकट ऐसी श्री राधिकाजी के नख-शिख का सर्वांग सुदर वर्णन किया है ब्रज की राधिका के अनुरूप कवि ने ब्रजभाषा का ही व्यवहार किया है पारम्परिक उपमाओ के होते हुये भी इनके प्रयोग मे नवीनता दृष्टिगोचर होती है—

आनन बैनी नयन बैन पुनि दसन सुकटि गति ।
ससि सर्पिन मृग पिक अनार केहरि करानन पति ।।

अपने पुष्ट व विकसित अवयवो वाली मदमस्त राधिकाजी बाग की ओर ऐसे चली मानो सुदरता के देवता कामदेव पर विजय प्राप्त करने चली हो—

कुवरि नयण नासक दसन, कुच कटि जघव चरन ।
विमल बाग राधे चली मनु अनग को जय करन ।।

(४) बधाई गीत

विवाहोत्सव पर गाये जाने वाले बधाई गीत को राजस्थानी भाषा मे सोहलो भी कहते है. शादी के पश्चात् जब बारात लौट कर आती है तो दूल्हे और दुल्हिन

का घर के मुख्य दरवाजे पर माँ और बहिन आरती उतार कर उनका स्वागत करती है नदकुमार और राधिकाजी विवाहोपरात लौटते है तो जसोदा और सुभद्रा उनका स्वागत करती है कवि ने पारिवारिक जीवन के इस उल्लासमय चित्र को सजीवता से अकित किया है—

चौक पुरावा माणक मोतिया जी, रतन भरावा थाळ।
करो नी सहोद्रा बहिणि आरती, आया घर वीर गुपाळ।
सोहलो गायो पृथ्वीराज राठोडजी, कासू-कासू पायो दान।
पाईजी खवासी दुहु की दुहु जणा, बिहु जण रहियो मान॥

पृथ्वीराजजी को तो श्रीकृष्ण और राधिकाजी की चाकरी (खवासी) मिल गई है उन्हे अब और किसी बात की अपेक्षा नही है.

(५) संदेश-पठन विषयक पद

गोपिकाओ द्वारा सदेश-प्रेषण के अनेक मधुर पद भक्त सूरदास द्वारा रचित है. पर पृथ्वीराज कृत राजस्थानी भाषा का यह पद भी सारी स्मृतियो को सचेतन करता हुआ करुण रस से पूर्ण है—

नयणै आँसू उर नेसासा,
अबळा विहवळ थई उदासा।
उर अगलूणी बधै आसा,
प्रिथु न छडै जमना पासा।

(६) अन्य भक्ति पद

पृथ्वीराज कृत अन्य पदो मे 'हरि! जेम हलाडो तिम हालीजै, काय घणआसूं जोर किगल' पाला पद[1] अत्यन्त प्रसिद्ध पद है, जो अनेक भक्तो द्वारा गाया जाता है पद बडा सरल पर भाव पूर्ण है—

रीस करो भावै रळियावत, गज भावै खर चाढ गुलाम।
माहरै सदा ताहरी माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम॥

'अथ कन्हैया नृत्याष्टक' वाला **अमृत ध्वनि** पद, नृत्य, सगीत, ताल और साहित्य तीनो ही दृष्टियो से अजोड पद है इसकी पँक्ति-पँक्ति से सगीत लहरी उठती है, जो तन-मन को आह्लादित कर देती है. इसके शब्द चयन से पता चलता

---

१. यह पद राजस्थान भारती मे प० बदरीप्रसादजी साकरिया ने प्रकाशित करवाया था.

है कि शब्दो का समर्थ सारथी है, जो लगाम पकड़े इन शब्द तुरगो को मन चाहे ढग से चला सकता है श्रीकृष्ण के नृत्य का क्या ही भव्य चित्रण है—

द्रु द्रु द्रुकट द्रुकटि द्रुकटि धुनि धपमप धपमप धपमप धैया ।
क्रिट किट ताल झझरी झनकत ततथई ततथई धुनिकन थैया ।
घुघरू घनन घमक पग नेउर ता ता तननन बीन बजैया ।। सकल प्राण ।।

चग उपग सग ब्रजसुदरि रगराग अति हामु मुनैया ।
कटि पट पीत रीत बहु कछनि नट विकट विकट लट लटक लटैया ।
लटकत माल लाल गल मोतियन खटकत उरह कम जम दैया ।
सकल प्राण प्रिथीराज सुकवि कहि, वाजत मृदग तत नचत कन्हैया ।।

(१)

आरती

ब्रह्मा वेद उच्चरै नारद अलापै तुबर ।
शनि क पान आडवै सभ जैकार करै सुर ।।१।।
सपति जोतिक धरै पाणि कज ब्रह्म प्रकासै ।
फाणि मणि आडवै ठवति सारद्द प्रकासै ।।२।।
प्रथु पुहप चपक कळी वार वार सिर आरती ।
उडीसै जगनाथ आरती बदरीनाथ आरती ।।३।।
अजोध्या आरती अनै मथुरा आरती ।
वळि हरिद्वार हि आरती गगा-सगम आरती ।।४।।
गया अवति हि आरती अनै रामेसर आरती ।
आरती पाणि कमळावती आरती द्वारामती ।।५।।
जिणि जिणि थानक गोविंद वसै ।
तिणि तिणि ऊपर आरती ।।६।।

(२)

श्री ठाकुरजी री आरती रो गीत, पिरथीराजजी कहै

पद्यबंध रूपक

कवि कवत सिघासण करे, चमर सुढाल चवसरैं ।
प्रभु सावळावत सिर परे, छत्रबध छत्र धरै ।।घट।।
धुर कवियण धर हरे, आगळी नट छद अवसरै ।
ऊजळै मोतियै आखरै, भल गुणे चवक भरे ।।१।।
दुहडा दमम दडीयडे, गाहा अदग गडियडै ।
भेरभह पिगळ भडियडै, रूपक व्रद रुडै ।
धुनि वेद साटक धडियडै, पडसदा अध गिर सिर पडै ।
जस मोड माहव सिर जडै, चवसरी माळा चडै ।।२।।
वातिया अरथ उत्तम वणै, घ्रत नेह सीचै घण घणै ।
बध जोत राग प्रबधणै, करताळ थाळ कणकणै ।।
झालरी सपत सुर झणहणै, परठवै मिण नग पूरणै ।
आरती गीत उवारणै, कर कुवर नद चे कारणै ।।३।।
ताय पेख काय न रही तथा, उपाय दाय न अन्नथा ।
साभळै वायक स्न मथा, इण आरती अरथाकळ ए कथा ।
हरि हुआ रळियायत हथा, प्रसाद भगत लहै पिथा,
.... जग अबरीक जथा ।।४।।

(३)

सोहलो

दुलह क्रिसन दुलहण राणी राधिकाजी, वधावो जसोमति माय।
पाट नै सिंवासण प्रभुजी रै सोवनो, सोवन छत्र तणाय ।।दु।।१।।
कुवरी लाडली हो राजा वृषभाण री, आणी आणी नंद कुमार।
उण गळि सोहै चउकी जडाव री, उड गळि नवसर हार ।।दु।।२।।
तोरण घडावो चंदण-बावनो, वधावो गोकुळजी री प्रोळि।
कळस भरावो केसर कपूर सू, भीति करावागी खोळि ।।दु।।३।।
चौक पुरावा माणक मोतिया जी, रतन भरावा थाळ।
करो नी सहोद्रा बहिणी आरती, आया घर वीर गोपाळ ।।दु।।४।।
सोहलो गायो प्रिथीराज राठोड जी, कामू-कासू पायो दान।
पाई जी खवासी दुहु की दुहु जणा, बिहु जण रहियो मान ।।दु।।५।।

(४)

अथ कन्हैयानृत्याष्टक

अमृत धुनि

थागडदिक थागडदिक ततथई ततथई निरतत स्याम सबन सुख दईया।
सुन संगीत निरति अदभुन थकित चंद जल उलट चलईया।
थक मृग थकित थकित सुर गन्ध्रव सुर विमान सब थकितत रहिया।
सकल प्राण प्रिथीराज सुकवि कहि, बाजत मृदंग तत नचत कन्हैया ।।१।।
रुद्र इन्द्र अरु ब्रह्म थकित भयै थकित भानु रथ चलन रखैया।
मोहित भयै सकल सुर नर मुनि सुनि अनग मनि गर्व धरैया।
निरख स्याम छबि मूर्छे भयै जब कहू धनुष कहू बान परैया ।।२।।
।।सकल प्राण०।।
धुग धुन धुन धरत फिरत पाय, स्याम वदन सब लेत बलैया।
बिछुरन माल कमल दल उछरत, झलकति मुकटि सुसीस छरैया।
कुंडल करण अधर दुति दीपति मानु भानु ससि तान रचैया ।।३।।
।।सकल प्राण०।।
चंग उपग संग ब्रजसुंदरि रय-राग अति हासु सुनैया।
कटि पट पीत रीत बहु कछनि नट विकट विकट लट लटक लटैया।
लटकत माल लाल गल मोतियन खटकत उरह कस जम दैय्या ।।४।।
।।सकल प्राण०।।

द्र् द्र् द्र्कट द्र्कटि द्र्कटि धुनि धपमप धपमप धपमप थैया ।
किट किट ताल झझरी झनकत ततथई ततथई धुनिकन थैया ।
घुघरू धनन घमक पग नेउर ता ता तननन बीन बजैया ।।५।।
।।सकल प्राण०।।

गिरिधर अधर गोवरधन कर धर जर्जर नार नर जतन रखैया ।
अडर अमर नर अजर अलेपम दससिर कट धर गेद करैया ।
इद फुनिद सिद्ध सनिकादिक, ब्रह्म रुद्र सब खेलि खिलैया ।।६।।
।।सकल प्राण०।।

धुधुकटि धुधुकटि धुकटि धुकटि कटि मधुर मधुर धुनि करत कन्हैया ।
बजत पखावजि धुधुमपि धुधुमपि धपमप धपमप धै धै धैया ।
थागडदिक ताल ताल मिलि झुजकटि ततथइ थइ थइ थइ थइ थैया ।।७।।
।।सकल प्राण०।।

घुघरनि घुघरनि घुघरनि घम घम घमक घमक पग धरनि धरैया ।
उलट पलट सब फिरि फिरि निरखति त त तननन बीन बजैया ।
झम झम झमक ताल कसालह फिरि फिरि फिरगटि फेर फिरैया ।
सकल प्राण प्रिथिराज सुकवि कहि, बाजत मृदग तत नचत कन्हैया ।।८।।

(५)

पृथ्वीराजजी कहै

हरि ! जेम हलाडो तिम हालीजै, काय धण्या सू जोर क्रिपाळ ।
मोळी दिवो, दिवो छत्र माथै, देवो सो लेऊ स दयाळ ।।१।।
रीस करो भावै रळियावत, गज भावै खर चाढ गुलाम ।
माहरै सदा ताहरी माहव, रजा सजा सिर ऊपर राम ।।२।।
मूझ उमेद वडी मह महण, सिंधुर पाखै केम सरै ।
चीतारो खर सीस चित्र दै, किसू पुतळिया पाण करै ।।३।।
तू सामी पृथुराज ताहरो, वळि बीजा को करै विलाग ।
रूडो जिको प्रताप रावळो, भूडो जिको अमीणो भाग ।।४।।

---

(५)

पाठातर—

हर हलावै जेम तेम हालीजै, की घणिया सू जोर क्रपाल ।
मौलो दियो दियो छत्र माथै, दोनू ही ले हालस्यू दयाल ।।१।।
रलियावत भावै रीसाणो, गज चाढै खर चाढ गुलाम ।
माहरा देव ताहरी महिमा, रजा सजा सिर ऊपर राम ।।२।।
आखै हम तुम याही ईसवर, सिंधुर पाखै केम सरै ।
चीतारो खर ऊपर चित्रबै, किसू पूतली पाण करै ।।३।।
तू सामी प्रथीराज ताहरो, लोका बीजा लाग अलाग ।
रूडो जिको प्रताप रावलो, भूडो जिको अमीणो भाग ।।४।।

(६)

गीत प्रिथीराज कल्याणमलोत ठाकुरां नुं कहै

रखपाल वडा तो विण कुण राखै, नमो पराक्रम नारीयण।
श्रोम-गोम विचि दीसै अवगति, जळ मे प्राजळती जळण ॥१॥
कुण राखै तो विण करुणाकर, मान ससार विचार मनि।
अबर धर दीसै आवतर, अब विचै हुवती अगनि ॥२॥
जग एकठा बिन्है जगजीवन, सु तो किसी परि राखै सामि।
जळण अब नह सकै ऊभमै, अब सकै नह जळणि उभामि ॥३॥
वानी बिन्है एकठा वादळ, करुणाकर विण कवण करै।
अब तणै सिर भाळ ऊभरै, (नै) भाल तणै सिर अब भरै ॥४॥

(७)

गीत ठाकुरजी रो पिरथीराजजी कहै

प्रहळाद भाळ गज भाळ परीखत, भाळ गुवाळ पडवा भणी।
सारीखो कोइ न सूझै सावळा, धणीयप करै सेवगा-धणी ॥१॥
जाइ राजा बाँधिया जरासधि, जाइ अबरीष द्रोपदा जाइ।
आयां सकट आपरा उवेळण, किसन सारीखो धणी न काइ ॥२॥
ईस-सीत सुग्रीव ईसवर, इद्र ईस जादुव कुळ ईस।
अर हुण अब चाढण ओळगुवा, श्रीवर तणो न को सारीस ॥३॥
राकस ग्राह बाण सक्र राजा, क्रितिया दूण छोडण दहकध।
बाळि असुर वृत कस विभाडण, बळ बाधण छोडण बळ बध ॥४॥
आस जास हारी प्रभ एता, आतम तास न छडै आस।
भाजै सकट केता भवा लग, दासा ज्ञान कियो प्रथीदास ॥५॥

---

(७)

पाठातर—

१. सरीखो को सामला न सूझै, धणियापगर सेवगाधणी ॥१॥
२. जोइ राजा वधिया जरासधि, जोइ अबरीख द्रोपदी जोई
आयै सगठ आपरा उवेलण, किसन सारखो धणी न कोई ॥२॥
३ ईखि इद्र जादव कुल ईखि। अरि हुणि।
४ राक्स ग्राह बाण रिखि राजा, कृत्या दूसासण दहकध।
वालि असूवृत कस विभाडै, वालि वध्रण छोडै जगबध ॥४॥
५ आस जास पूरी हरि एवां, आतम तास न छडै आस।
भजै सकट किते भुवणतरि, दासा आणि कियो प्रिबदास ॥५॥

(८)

प्रिथीराज जी कहै

काळकूट भखियौ सकर काळ पळ अजण किय,
कियो पहळाद पित सरिस अहकार।
इद्र ची लोपना गुआळियाँ आदरी,
भरोसै ताहरै गोपि-भरतार ॥१॥

खादियौ हुवण रामण सरिस बभीखण,
आगमैं व्रकोदर जरासंध अत।
बभ जैदेव त्री असत्थि गळि बधिया,
कै प्रतै राउळै राधिका कत ॥२॥

महमहण सुरे असुरे ज मथियौ महण,
देव जुजिठळ रिण सूध दीधौ।
वळै प्रथीदास ससार आडौ वहै,
कम्मळानाथ वेसास कीधौ ॥३॥

जारिया वारिया हेक ऊबारिया,
राखिया मारि बैसारिया राजि।
जिपाडै अमृत दे हेक जीवाडिया,
क्रसन करि कृपा निज सेवगा काजि ॥४॥

(९)

प्रीथिराजजी कहै

तणा द्रोपदी देखता जगत अरि ताणता,
भला कर करण हरि जगत भणिया।
पूरवै जगत हू चीर हथिणापुरै,
साद हथिणापुरा जगति सुणिया ॥१॥

थळ करण हेक नै हेक कूससथळी,
आच श्रुति प्रवाडा अरकि ऊगा।
करण करणा करे क्रिसन क्रिसना तणा,
पुर बिन्है सद वसत्र समा पूगा ॥२॥

वार पचाळि विचि द्वारिका वजावै,
विसव जोअण जोए जोइ वादै।
अनत आचागळौ दास ऊवेळिवा,
श्रवणि सरुवौ अनत दास सादै ॥३॥

सनस गुणग्राम नक्यो द्रोपदी सद तणो,
पगुरण तणो गुण नक्यो "प्रिथदास"।
इळ न आकास गुण दूरि पूगा ज भ्रज,
राउळौ सुगुण रुखमणी-रमण-रास ॥४॥

(१०)

पृथीराजजी कहै

करै कोप सिर कापि हेक मुगतिगामी कियौ,
कृपा कर लकपत हेक कीधौ।
सारिखौ आपरै हाथ दसरथ-सुतन,
दुहू विध राकसा दान दीधौ ॥१॥

मारि दहकध साजोति ले मेळियो,
मया कर बभीखण कियौ म्होटो।
तै भलो भाजियो आच त्रैलोकपत,
त्याग विध दाणवा तणो तोटो ॥२॥

साभि अहकार भल अभैपद समपियौ,
सारस जण त्रिकुटगढ समपि सोई।
रीझियै खीझियै राम जिम राकसा,
किया उपगार तिम करै कोई ? ॥३॥

रीझियै लक दै दूरि लइ राखियौ,
कोपि प्रिथ राखियो आप कानै।
नारियण तणो रामण बभीखण नमा,
मारिया तणो उपगार मानै ॥४॥

(११)

प्रिथीराजजी कहै

असमान कुळेह गत माळा उडीयण,
रार बिन्है सूरज राकेस।
यळ मेखळी वणाया एहो,
अनत महर तोतू आदेस ॥१॥

भुज-गिर-सिखर रोमराय अदभुज,
तोय फिरेवा सायर त्रिण-च्यार ।
वप काळा वळता मुख वाळा,
जूना नाथ अनत जुहार ।।२।।

वीऊ चित वात साच जे वाचा,
असी-च्यार लख आतम आथ ।
गात लात सा सहणा गूढा,
नमस्कार हरि बूढा नाथ ।।३।।

नाह छत्रीस राग वाजै नित,
अकवीस मे गुरुड आरोढ ।
सोळै सै जोगणी सहेतौ,
जोगी घरबारी हरि जोढ ।।४।।

लख घट भाजै घडै सवा लख,
कळियौ जायँ नही किणी ।
इण अवसता तणो तो ईसर,
धोक धोक त्रिहुलोक धणी ।।५।।

(१२)

प्रिथीराज कहै

पथिया रे ! हेकै प्रीत-सदेसौ,
कहिजौ जाइ आगळि केसौ ।
नद जसोदा नेह अनेसौ,
अम्हा बिया पै एह अदेसौ ।।१।।

एक सु दिन जे गोकळ आयौ,
धाइ जसोदा अचळ धायौ ।
ग्लाळणिया मिळि मगळ गायौ,
वीठळै जाइ समद्र वसायौ ।।२।।

वीसारी हरी करै विडाणी,
वाणी एह वदै विलखाणी ।
रिधि द्वारिका मडि रजधाणी,
रहिया रीझि रुकमणी राणी ।।३।।

नयणै आँसू उर नेसासा,
अबळा विहवळ थई उदासा ।
उर अगलूणी बधै आसा,
प्रीथु न छडै जमना पासा ।।४।।

(१३)

प्रिथीराजजी कहै

ब्रहिणी इद्राणी रुद्राणी,
वळि वळि बलि विहरा ब्रहमाणी ।
वसुधा तणी वदती वाणी,
रुकमणि भाग सराहै राणी ।।१।।

सत्र हणै किय कस सरग्गी,
मुँहि भाजै सिसपाळ उमग्गी ।
सखी कहै सहुग्रँ म्हे सग्गी,
वडी सुजाइ हरि हत्थ विलग्गी ।।२।।

सु वर रुकमणि तणो सुहावै,
पूजा फळ जो इसडो पावै ।
भुवगणि सत्री सावत्री भावै,
पूजण गोरि गवरि पछतावै ।।३।।

पति सोहाग रुकमणी पोसै,
भरता आप तणेय भरोसै ।
मिणधर इद्र रुद्र तिय मोसै,
दूसिया ब्रह विह-अक्खर दोसै ।।४।।

(१४)

पृथ्वीराजजी कृत

राधाजी के नख शिख वर्णन की तीन षटपदियें

वृज भाषा में

करि रभ हरि चक्क इदु दीपक मृग विषधर ।
सरण तट्ट सिख पुनय दिवस खय अफल मद्दभर ।।
नील सजल जुव प्रेम सरद निस दभ अकचस ।
चदन वन ग्रह गयद सयल तकि कपूर विजस ।।
गति जघ लक उर वदन भनि नासक चख वैणी वरण ।
यह रूप भूप पृथ्वीराज कह मिले कान राधा रमण ।।१।।

उरग मीन लोय तडित कुर्भसिह् कदल अबुज ।
उरुन मध्य वन कनक व्रखा निसि वरन स्याम धुज ।।
नगन गग पुर तिमर सुघट तकि मानसर ।
सद कपूर मद झरत लता थिर चपल मलयतर ।।
कुवरि नयण नासक दसन, कुच कटि जघव चरन ।
विमल बाग राधे चली मनु अनग को जय करन ।।२।।

आनन बैंनी नयन बैंन पुनि दसन सु कटि गति ।
ससि सर्पिन मृग पिक अनार केहरि करानन पति ।।
पुरन खिझत जक तरुन पक्व वर पच पुष्ट बल ।
सरद पताल विछोह बाग तरु ल(ता) गिरि बन कज्ज(ल) ।।
निसि सन्निवास सावक चुवत बिगस प्रसूती मद झरत ।
पृथ्वीराज भनत बसी बजत अस वनिता बनबन फिरत ।।३।।

—श्री सौभाग्यसिह् शेखावत के शोध पत्रिका १५/१
'महाराज पृथ्वीराज राठौड' रचित छप्पय लेख से,

(१५)

गीत माताजी नूं पिरथीराजजी कहै

आई आवजो व्रण छळ आवीजैं, देवी साद सुमरिया दीजै ।
बळ तज कवण पुकारू बीजैं, काछराय मो ऊपर कीजैं ।।१।।
छिलतैं तेज रथे पाय छणहण, वेगा खेड नत्रीठा-वाहण ।
त्रसकत सेवक करण निर्भैतण, आवीजैं ग्रहीया उग्राहण ।।२।।
चाळक नैं मढ हूतो चाचर, काछ-पचाळ ममे छेडा करि ।
झीझळियाळ स देवत-झूलर, आवीजो व्रन सकट ऊपर ।।३।।
स्रवणैं साल्हळ सुणो सचाळी, धायज्यो चारण धाबळियाळी ।
पीथळ वाहर काछ पचाळी, लाल मिळो मुझ हेकण ताळी ।।४।।

---

(१)

१ अलापैं = गाते हैं । तुबर = एक वाद्य । सभ = शभु ।
२ सपति = सूर्य । आडवै = १. निर्माण करते है, २. तैयार करते है । ठवति = स्तुति ।
३ पुहप = पुष्प ।
४ अनै = और । वळि = और । गंगा-सगम = १. प्रयाग, २. गगासागर ।
६ थानक = मदिर, स्थान । वसैं = निवास करते है ।

(२)

१. कवत = १. कविता, २. कवित्त । चवसरैं = चारो ओर । धुर = प्रथम । अवसरैं = नृत्य करते हैं । चवक = चौक ।

२ दुहडा = दोहा । दमम = दमाम, नगाडा । दडीयडै = बजता है । भेरभह = बडा ढोल । व्रद = विरुद । पडसदा = प्रतिशब्द । मोड = मौर, मुकुट । चवसरी माळा = चार लडियो की माला ।

३ करताळ = भाभ, मजीरा । कणकणै = वजते है । भालरी = भल्लरी वाद्य । परठवै = धरते हैं । उबारणै = निछावर करते हे । वातियाँ = दीपक की बत्तिये । मिणनग = मणि रत्न आदि ।

४. पेख = देखकर । अन्नथा = अन्यथा । अरथाकळ = रूपक, अर्थ रूप मे । रळियायत = प्रसन्न । स्र मथा = समर्थजन ।

(३)

१ वधावो = मगलोपचय द्वारा स्वागत करिये । सोवन, सोवनो = सुवण का ।

२. आणी-आणी = ले आये, पाणिग्रहण करके लाये । उण गळि = श्रीकृष्ण के कठ मे । उण गळि = श्री राधिकाजी के गले मे ।

३ खोळि = लेपन ।

४ सहोद्रा बहिणी = सुभद्रा बहन । वीर = भाई (श्रीकृष्ण) ।

५. सोहलो = विवाह करके आने पर तोरण-वदन के समय गाया जाने वाला बधाई का मगल-गीत । कासू-कासू = क्या-क्या । खवासी = श्री राधाकृष्ण की चाकरी । दुहु की = दोनो की (श्रीराधा और श्रीकृष्ण दोनो की) । दुहु जणा = हम दोनो ने । बिहु जण = दोनो ।

(४)

१. निरति = १ अत्यत लीन, २. नृत्य । गध्रव = गन्धर्व । तत = तहाँ, जहाँ । थक्तित रहिया = मुग्ध हो करके स्थिर हो गये ।

२ रखैया = रोक दिया । अनग = कामदेव ।

३ पाय = पाँव । छरैया = सुदर केश लटि । दुति = द्युति, चमक ।

४. उपग = एक वाद्य । हासु = हँसी-उल्लास ।

५ भभरी = १ भाँभर, २. भाँभ ।

६. जर्जर = १ भयभीत, २. वृद्ध । दससिर = रावन । फुनिद = फणीन्द्र, शेषनाग ।

७ पखावजि = छोटा मृदग ।

८ कसालह = भाँभ । फिरगटि = चक्कर । सकल प्राण = अखिल सृष्टि के प्राग श्रीकृष्ण ।

(५)

१ जेम हलाडो = जिस स्थिति मे रखे । तिम हालीजै = उसी स्थिति मे प्रसन्न रहू । मोळी = १. मगलसूत्र, २. लकडियो का भारा ।

२. भावै = चाहे। रळियावत = १ खुश, प्रसन्न, २. प्यार, लाड। माहव = माधव, रजा = १ कृपा, २ छुट्टी, ३ मुक्ति।

३. महमहण = १ महा महार्णव परब्रह्म, २. श्रीकृष्ण। सिंधुर पाखै = हाथी के बिना। केम सरै = कैसे काम चले। खर सीस = १ गदहे की सवारी, २. गदहे के जैसा सिर, गर्दभ शीर्ष। पाण = १ जोर, २ वश। चीतारो = चित्रकार। पुतळियाँ = पुतली, चित्र।

४ वळि = फिर। बीजा = दूसरे। विलाग = विलग, दूर। रूडो = भला, अच्छा। रावळो = आपका। भूंडो = खराब, निकृष्ट। अमीणो = हमारा।

(६)

१. कुण राखै = कौन रक्षा करे। ओम-गोम = आकाश और पृथ्वी। अवगति = समझ मे नही आने वाली बात। जळण = अग्नि।

२. आधतर = अध बीच मे। अब = पानी। हुबती = जलती हुई।

३ सु तो = उसको। किसी परि = किस प्रकार। वह सकै ऊझमै = जला नही सकती। सकै नह उझामि = बुझा नही सकता।

४. वानी = अग्नि, वह्नि। बिन्है = दोनो। झाल ऊभरै = ज्वाला उठती है। अब झरै = पानी बरसता है।

(७)

१ भाळ = रक्षा। भणी = की, (सबध सूचक प्रत्यय)। सावळा = श्रीकृष्ण। धणीयप = स्वामित्व। सेवगा-धणी = भक्तो के स्वामी।

२ जाइ = जिसने। आपरा उवेळण = अपनो (भक्तो) की रक्षा करने वाला।

३ ईस सीत = श्री राम। अर हण = शत्रुओ का नाश करने वाला अरिहत। अब चाढण = बल-काति प्रदान करने वाला। ओळगुवा = भक्तो को।

४ क्रितिया = कृत्या, अभिचारिणी। दहकध = रावण। विभाडण = नाश करने के लिये। बल बाधण = बलि को बाँधने वाला।

५. आस-जास = आशा और भरोसा। प्रभ = प्रभु, श्रीकृष्ण। एता = इन्होने। केता भवा लग = १ कितने ही जन्मो के, २ कितनो ही के जन्मो के।

(८)

१. काळकूट = भयानक विष। भखियो = भक्षण किया। अजण = ब्रह्मा। आदरी = विचारी, विचार किया। गोपि-भरतार = गोपियो के स्वामी।

२. खादियो = शव की अरथी उठाने वाला। आगमै = निश्चय करता है। बभ = ब्राह्मण। त्री = स्त्री, पत्नी। राउळै = आपके।

३. महमहण = समुद्र। मथियो = मथन किया। जुजिठळ = युधिष्ठिर। सूध = मार्ग दर्शन। वेसास = विश्वास।

४. जारिया = जला दिया । वारिया = वारण किया । बैसारिया = बिठाया, स्थापित किया । जिपाडै = जिताया । जीवाडिया = जीवित किया ।

(९)

१. अरि = शत्रु (दुशासन) । पूरवै = पूर्ण किया । साद = पुकार । जगति = द्वारिका ।

२ कूसस्थळी = कुशस्थली, द्वारका । अरकि = सूर्य । क्रिसना = द्रौपदी, कृष्णा । बिन्है = दोनो । वसत्र समा = वस्त्र के रूप मे ।

३ पचाळि = द्रौपदी । आचागळो = दातार, उदार । ऊवेळिवा = उद्धार करने के लिये । सरवो = शीघ्र सुनने वाला ।

४. सनस = सदेश । गुणग्राम = गुणो की खान, श्रीकृष्ण । सद = पुकार । पगुरण = वस्त्र । इळ = पृथ्वी । अज = आज । राउळो = आपका, श्रीकृष्ण का । सुगुण = उपकार ।

(१०)

१ मुगतिगामी = मुक्ति पाने का अधिकारी । हेक = एक को, रावण को । हेक = विभीषण को । दुहू विध = (शत्रुता और मित्रता) दोनो प्रकार से । राकसां = राक्षसो को ।

२ दहकध = रावण । साजोति = मोक्ष । तोटो = कमी, अभाव ।

३ अभैपद = निर्भयपद । त्रिकुटगढ = लका । रीझियै = प्रसन्न हो करके । खीझियै = क्रोध करके ।

४ आप कानै = अपने पास । नारियण = नारायण, श्रीराम । मारिया तणो = मारे जाने का ।

(११)

१ उडीयण = उडगण, तारे । राकेस = चन्द्रमा । यळ = पृथ्वी । मेखळी = करधनी । महर = सूर्य । आदेस = नमस्कार ।

२ रोमराय = रोमराजि । अदभुज = उद्भिज । सायर त्रिण-च्यार = सातो समुद्र । तोय = पानी । वप = शरीर । वळता = झुकाये हुए (मुख की एक मुद्रा) । जूना नाथ = पुरातन प्रभु, श्रीकृष्ण ।

३ असी-च्यार लख = चौरासी लाख । बूढा नाथ = पुरातन परमेश्वर ।

४ नाह = नाथ । जोगी घरबारी = गृहस्थ योगी । जोध = योद्धा ।

५ घट = शरीर । कळियौ जायै = जाना जाय । अवसता = १ अवस्था, २. रूप । धोक = प्रणाम ।

(१२)

१. केसो = केशव, श्रीकृष्ण । नेह अनेसो = स्नेह व्याघात । अम्हा बिया = हम दूसरो को ।

२. वीठळँ = विट्ठल श्रीकृष्ण ने । समद्र वसायो = समुद्र मे द्वारिका का निर्माण कर निवास किया ।

३ विडाणी = परायी । विलखाणी = बिलखती हुई । रजधाणी = राजधानी ।

४ नेसासा = नि:श्वास । विहवळ = विह्वल । अगलूणी = आगे की ।

(१३)

१ अहिणी = शेष नाग की पत्नी, सर्पिणी । वळि-वळि = बार बार । बिहरा = दूसरी बार । ब्रह्माणी = सरस्वती ।

२. सत्र = शत्रु । सरग्गी = स्वर्गगामी । उमग्गी = उमगी ।

३ इसडो = ऐसा । भुवगणि सत्री = नागिन । भावै = अच्छा लगे ।

४ मिणधर = शेषनाग । मौसै = ताना देती है । दूसिया = दूषित । व्रह = विरह । विह-अक्खर = विधाता के लेख । दोसै = दोष देती है ।

(१४)

१ चक्क = चक्र । खय = क्षय । लक = कमर । चख = चक्षु ।

२. उरग = सर्प । उरुन = जाँघे । व्रखा = वर्षा । मानसर = मानसरोवर । मलयतर = चदन वृक्ष । नासक = नासिका । दसन = दाँत । अनग = कामदेव ।

३ आनन = मुख । बैनी = वेणी । पुरन = समुद्र । बन कज्जल = कजरी वन । सन्निवास = पास । बिगस = विकसित ।

(१५)

१ आई = १. आई माता, २ करणी देवी । व्रण = वर्ण । चारण छळ = के लिये । साद = पुकार । बीजै = दूसरे को । काछराय = देवी । ऊपर कीजै = कृपा कीजिये ।

२ खेड = चलाकर । नत्रीठा-वाहण = अश्व रथ, तेज गति वाला वाहन । निर्भय । उग्राहण = छुडाने के लिये ।

३. चाळक = आवड देवी । चाचर = चौक । काछ-पचाळ = देवी । स देवत-त्रसकत = भयभीत । नूिमै = भूलर = देवताओ के समूह के साथ ।

४. धाबळियाळी = करनी देवी । वाहर = रक्षा । हेकणताळी = अतिशीघ्र ।

उद्‌बोधन

इन चक्षुओ से दिखाई देने वाली ससार की प्रत्येक वस्तु माया है माया (और माया जनित सारी वस्तुएँ) नाशवान है यह जानते हुये भी कि जिस जिसको हम प्यार करते है, फिर वह चेतन हो या जड, सब नाशवान है फिर भी हम उन्हे प्यार करते ही रहने है इसी का नाम मोह है मोह ही अज्ञान की जड है और यह अज्ञान का ही दुष्परिणाम है कि मनुष्य सदैव इस सुनहरे मनमोहक पक मे फँसा रहता है वह सोचता है कि यही जीवन का सच्चा आनद है और जैसे जैसे वह उसका भोग करता जाता है, उतना ही उस दलदल मे फँसता जाता है. वास्तव मे यह भोग-सामग्री तो उस खुजली के समान है, जिसे खुजलाने पर लगता तो अच्छा है पर, खुजली का रोग बढता जाता है. अन्त मे होता यह है कि जब जीवन मे कही किनारा नही मिलता तो डूबा अधडूबा मनुष्य हाथ पाँव पछाडता है, छटपटाता है और अपनी विगत भूलो पर पश्चाताप करता है, तब कोई काम न आकर केवल आध्यात्म ज्ञान और राम नाम ही आधार होते है राम नाम की यह औषधि रामबाण है, जो अचूक है इस महौषधि का उपयोग सत, महात्मा और भक्तो के द्वारा ही हो सकता है. वे ही हमे इस भय-पक से मुक्ति दिलवा सकते है उनके वचनामृत हमे सजाग कर देते है उनकी सत्यनिष्ठ ज्ञानमयी वाणी हमे उद्बोधित करती है अतएव ऐसे सारे उपदेश उद्बोधन सज्ञा के अन्तर्गत आते हैं

राजस्थानी भक्ति साहित्य मे पृथ्वीराज का नाम सदैव स्वर्णाक्षरो से अकित रहेगा इस धारा को अटूट रखने के लिये पृथ्वीराज ने प्रबध काव्य, मुक्तक, गीत तथा अनेक पद लिखे हैं अपने सारे भक्ति साहित्य मे जहाँ कवि उद्बोधक के रूप मे हमारे सम्मुख आता है, वह कबीर, दादू आदि की भाँति कुछ अशो मे ज्ञानमार्गी बन जाता है इतना होते हुये भी एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि निर्गुण कवियो की भाँति वे और उनका काव्य न तो दुरूह ही बन पाया है और न शुष्क ही.

स्वय अपने पिता महाराजा कल्याणमल की मृत्यु पर कवि ने जिस उद्बोधक गीत की रचना की है, वह दर्शनीय है. अपार दास-दासियो और समृद्धि से घिरा तथा वासना मे रचा पचा कल्याणमल न तो कोई सुकृत्य किये ही और न भगवान का नाम लिये ही, ससार से चल बसा—

सुखरास रमता पास सहेली,
दास खवास मोकळा दाम ।
न लियो नाम पखै नारायण,
कलिया उठ चलियो बेकाम ।।

यूनान से लेकर भारतवर्ष तक जितना राज्य फैला हुआ था तथा जिसके नाम का डका चारो ओर बजता था, ऐसा वैभवशाली व प्रतापी सिकदर जब मरा तो उसकी मुट्ठी खाली थी. साथ मे तो किसी के तृण भी नही चलता पचतत्वो से बनी यह देह पचतत्वो मे मिल जायेगी—

खाटी सो दाटी धर खोदी,
साथ न चाली एक सिळी।
पवन ज जाय पवन बिच पैठो,
माटी माटी माहि मिळी ।।

माया जन्य वस्तुओ से मनुष्य इतना चौंधिया गया है कि उसे सच्चे और झूठे का अतर समझ मे नही आ रहा है. धनमद मे वह प्रभु को भुला रहा है और व्यर्थ मे ही इतनी उछल-कूद मचा रहा है, जबकि वह यह जानता है कि यह जीवन तो पानी के बुलबुले के समान क्षणभगुर है—

हीरो काइ कवडी साटै हारै,
कहि समझायौ आतम केतौ।
विभो किसो जिणि हरि वीसारै,
आउ किती जिणि कूदै एतौ।

अज्ञानवश हम खोटे को खरा, अभोज्य को भोज्य और त्याज्य को ग्राह्य समझ कर, हर काम उलटा कर रहे है. पृथ्वीराज ने इस भाव को एक छप्पय मे सुन्दरता से आलेखित किया है—

हू ऊजड हालियो, बार आसन्नी हूती।
म्है कोहोर सीचियरै, तीर सुरसरी वहती ।।
मेल्हे चदण कठ, आवि बावळियो घमियो।
छाडै सज्जण सयण, वीडा भीतर होई वसियो ।।
कीरतन न कीधो श्रीक्रिमन, कर जौडै त्रयभुवण कर।
व्रासियो जु मै वाखाणियो, नारायण विणि अवर नर ।।

एक अन्य छप्पय मे कवि ने बधन की शृखला, (कौन किससे बधा हुआ है) घटमाला का वैज्ञानिक सही चित्रण किया है जीव कर्मो से बधा हुआ है और कर्म शरीर से बधा हुआ है आदि का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि हे जीव! तू किसी प्रकार भगवान को अपने हृदय मे रख—

जीव बध्ध क्रम्माणि, क्रम्म बधा काइ तण।
काया बध्धी मैल, मैल बध्वा इद्रियायण ।।

इद्री बध्धा रूप, सबद परसण रस घ्राणै ।
ग्रै ले बध्धा मनि, मन्न बध्धो महिलाणै ।।
छोडावि ग्राह गज, छोडवण, बधी तो बळि-बधयण ।
जिणि तिणि प्रकारि प्रिथदास जण, राखि राखि रुकमणि-रमण ।।

उपर्युक्त छप्पय पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है 'बध्ध', 'क्रम्माणि' और 'इद्रियायण' आदि शब्द इसके उदाहरण है. ऐसे इक्कीस छप्पयों मे कवि ने अनेक उदाहरण देकर बार बार यही बतलाया है कि हे मन ! ससार की कोई भी वस्तु तथा कोई भी मानव तुम्हारी सहायता नही कर सकेगा, अतएव तू अन्य सासारिक झझटो से मुक्ति प्राप्त कर केवल हरिभजन कर (उक्त छद के अन्य अपभ्रंश रूप का पाठान्तर द्रष्टव्य है)

इनके अतिरिक्त पृथ्वीराज ने नीति, हरि स्मरण व आत्म निवेदन के बयालीस दोहे और लिखे है जो हर दृष्टि से मुक्तक है. नीति विषयक दोहे मे कवि ने इस तथ्य को उद्घाटित करते हुये कहा है कि सवेदनशील प्राणी ही सुख दुख का अनुभव करते है, अन्य नही—

चातक चकवा चतुर नर, तीनू रहइ उदास ।
खर घुघु मूरख गिथळ, सदा सुखी प्रिथुदास ।।

एक अन्य दोहे मे कवि ने साग रूपक अलकार के माध्यम से कामाग्नि से जलते हुये तन पर नयन रूपी बादलो से वर्षा नही होने का सुन्दर वर्णन किया है—

चित चकमक छाती पथर, काम अगनि कँप गात ।
नयन सघण बरसत नही, पिथ तन पर जल जात ।।

भगवान की भक्ति का त्याग कर जो मनुष्य केवल सासारिक धधो मे लिप्त रहता है तथा अयोग्य मनुष्यो की चाटुकारिता कर अपने स्वार्थ-साधन मे ही रत रहता है, उसके लिये कवि ने मौलिक उक्तियो का सृजन कर, नई उपमाओ से इस प्रकार व्यजित किया है—

प्रिथु जे अवरा पुणै, गुण छडै गोपाळ,
माणक गुथ मोताहळा, मड गळि घाती माळ ।।

और इसी प्रकार—

प्रथि हरि तजि गुण मानवा, जौडे किया जतन्न ।
जाणि चित्त भ्रम बधिया, गळ गादहां रतन्न ।।

'मड गळि घाती माळ' और गळ गादहा रतन्न' (मुर्दे के गले मे मोतियो की माला डालना और गधे के गले मे रत्नो की माला पहिनाना) उक्तियो से काव्य सौंदर्य निखर आया है.

'मन अश्वभाव' के अंतर्गत कवि ने मन की उपमा घोडे से दी है. घोडे की लगाम खीचने पर भी जैसे घोडा आगे बढता जाता है, वैसे ही यह मन जो प्रभु के प्रेम का पथी है, अब अन्य किसी विषय की ओर आकर्षित न हो, केवल परमात्मा की ओर ही आकर्षित है—

प्रिथ प्रभु पथी प्रेम को, नयणे दीप दिखाइ ।
मो मन लग्गा तुरग जिम, ज्यु खचे त्यु जाइ ।।

ठीक इसके विपरीत रीतिकालीन कवि बिहारी का दोहा है, जिसमे आँखो की तुलना घोडे से की गई है. यह घोडा मुँहजोर है, जो खेंचते हुये भी चला जाता है—

लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहि ।
ए मुँहजोर तुरग ज्यौ, ऐंचत हू चलि जाहि ।।

पृथ्वीराज का मन घोडे जैसा है और बिहारी के दोहे के नायक के नैन घोडे जैसे हैं. दोनो के घोडो की लगामे खीचने पर भी घोडे तो आगे बढते जाते हैं. अन्तर है तो भक्ति और शृगारिकता का, श्रद्धा और वासना का तथा सात्विकता और कायिकता का.

जैसे पर्वत के झरने पुनः पर्वत पर नही चढ सकते ठीक उसी भाँति बीते हुए दिन लौटाये नही जा सकते इसी सत्य को पहिचान कर कवि निश्चित होकर सोने को मना करते हैं तथा प्रबोध करते हैं कि हे मनुष्य ! उठ और धर्मकर्म कर क्योकि यही सार है—

जात वळै नही दीहडा, जिम गिर निरझरणाह ।
उठ रे आतम धरम कर, सुवै नचितो काह ।।

'उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन नही जो सोवत है,
सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है'—वाली उद्बोधक पँक्तियाँ भी इसी सार तत्व की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है

और अत मे कवि कहते हैं कि मेरे यह प्राण प्रभु-प्रेम को लज्जित करने वाले है भगवान से बिछुड कर भी वे इस काया मे रहे इसलिये दुख तो भोगना ही पडेगा. अब श्मशान के चक्कर काटने ही पड़ेंगे—

हरि बिछुरत निकस्यो नही, प्रेम लजावन प्राण ।
लाइक होइन दुखन को, ढूढत फिरौ मसाण ।।

'दसरथरावउत रा दूहा' अथवा 'वसदेरावउत रा दूहा' ग्रथो के दोहो से ये उद्‌बोधन के दोहे अपेक्षाकृत बहुत सरल भाषा मे लिखे हुये है इनमे साहित्यिक छटा का सर्वथा अभाव-सा है जिस वयण सगाई अलकार का कवि ने सर्वत्र बडी चुस्ती से पालन किया है, उसका भी यहाँ नितात अभाव है इसका एक स्वाभाविक कारण यह हो सकता है कि सभव है कवि को अपने जीवन के उत्तरार्द्ध मे यह लगा कि यह सब भी एक वाक्‌प्रपच ही है जो वस्तु सरलता और प्रसादिकता मे है, उसकी तुलना नही हो सकती प्रभाव की दृष्टि से इसी का महत्व है हिंदी साहित्य के राष्ट्रकवि गुप्तजी को और पत तथा प्रसाद अथवा महादेवी जैसे ख्यातनाम कवियो को ले तो निश्चय ही जनमानस को आदोलित और प्रभावित करने का जितना श्रेय गुप्तजी को है उतना किसी को नही वह काव्य ही क्या जो दुर्गमता के गिरि गह्वरो मे टकराता रहे अथवा शब्दो के खिलवाड मे उलझता रहे या फिर पश्चिमी कवि गेटे के अनुसार 'आधुनिक कवि अपनी मसि मे पानी अधिक डाल देते है'—इस प्रकार निर्जीव-सा बना रहे

(१)

प्रिथीराजजी कहै

हीरो काइ कवडी साटै हारै
कहि समभायौ आतम केनौ
विभो किसो जिणि हरि वीसारै,
आउ किती जिणी कूदै एती ॥१॥

पडै इद्र चऊदह दिन पूरै,
वसै इद्र चौकडी बहनरि ।
ब्रहमाइ गरढौ थियौ विमूरै,
हस रे ! तसमात भजै हरि ॥२॥

माडियौ अक अनादि भाळ मधि,
प्रिथ तिको वहि आयो पासै ।
वार किती मिळती मरणावधि,
पहलो छेह तव्योह पचासै ॥३॥

(२)

गीत श्रीठाकुरजी रो पिरथीराजजी कहै, पणिहारी रै भावरो ।

हे कहि कन्ह हे पणिहारी, हससुता तट छड विहारी ।
हे हरणाखी कोतगहारी, हाल घरै हर हेरणहारी ॥१॥

गेलै मे ऊभी सिर गागर, चूप किया किसन सू चागर ।
नागर सू रीधी बोह नागरि, सुण हे वात सु वाता सागर ॥२॥

सीख दियत सहेल सहेली, गोविद रूप तू मोही गहेली ।
वार भई घर हाल वहेली, हेला किया स साभळ हेली ॥३॥

सावळ ऊजळ मुख सा वसी, वार मयक मुख ऊपर वसी ।
लग मग कोई दोख लगेसी, घर घर घेर हसी घरेसी ॥४॥

मुझ पणहार सरूप सु सुन्दर, न करै कान्ह कवर दिस नजर ।
तै ऊभी रहिया ऊभा हर, घण स दीठा हाल हमै घर ॥५॥

जोवती प्रथु कहै जोवती, अब सपूर कुभ आवती ।
कामण कान्ह सरस कुळवती, वाट वजै व्रज हर बोहवती ॥६॥

(३)

पिता कल्याणमलजी री मृत्यु रै समिये पृथीराजजी कहै

सुख रास रमता पास सहेली, दास खवास मोकळा दाम ।
न लियो नाम पखै नारायण, कलिया उठ चलिया बेकाम ।।१।।
माया पास रही मुळकती, सज सुदरि कीधा सिणगार ।
बहु परवार कुटब चौ बाधो, हरि विण गयो जमारो हार ।।२।।
हास हसता रह्या धौळहर, सुख मे रासत ज्यु ससार ।
लाखा धणी पयाणै लाबै, जाता नह भेजिया जुहार ।।३।।
भाई बध कडूबो भेळो, पिड न राखो हेक पुळ ।
चापरि करै अगनि सिर चाढो, काढो-काढो कहै कुळ ।।४।।
असिया रह्या पग आफळता, मदभर खळहळता महमत ।
व्हालो धणी सिघासण वाळो, पाळो होय हालियो पथ ।।५।।
देहळी लग महळी पण दौडी, फळसा लग मा-बहण फिरी ।
मरहट लगै कुटब चो मेळो, किणियन सुख दुख वात करी ।।६।।
कोमळ अग न सहतो कळिया, ताती भळियां सहै तप ।
धडी धडी कर तडी धीवियौ, बडी बडी बाळियो वप ।।७।।
केसर चनण चरचतो काया, भणहणता ऊपर भमर ।
रजियो राख तणै पुगरणै, घणा मुसाणा बीच घर ।।८।।
खाटी सो दाटी धर खोदी, साथ न चाली हेक सिळी ।
धवन ज जाय पवन बिच पैठो, माटी माटी माहि मिळी ।।९।।

(४)

गीत

सांसि कलक सरवर सपंक, सुर-मुख्ख सधूमिय ।
सुवृष सप्प सविता सतप्त, गगा गति वकिय ।।१।।
एग मेर किरपण कुबेर, इक अख असुर-गुरु ।
नीच नीर नीरस समीर, पीर नहीं परमेसवर ।।२।।
ब्रह्मा कुलाल क्रम कुद्ध हर, नृपति नास पृथुदास शठ ।
सब दोष सबै विठलेश विण,हसममणि ताइ दोष हठ ।।३।।

(५)

पृथ्वीराजकृत छप्पय

पथि नथि चीर नय सुक नीर गिर गुहा रुद्ध किहि ।
वनसपति पत्त फल मूल वत्त जाचत्त दत्त-विहि ।।
थल जल अयास वन नयर वास आवास कच्च परि ।
निबल निम्रक अकित अलक रखि एको हरि ।।
भणि प्रथ सुछडि विसभरह सब आसय आसान सुध ।
कुण भजै कलित कलि राइया धन दुरमद अधा अबुध ।।१।।

हू ऊजड हालियो वार आसनी हूती ।
म्है कोहोर सीचियरै तीर सुरसरी वहती ।।
मेल्हे चदण कठ आवि बावळियो घसियो ।
छाडै सज्जण सयण वीडा भीतर होइ वासियो ।।
कीरतन न कीधो श्रीक्रिसन कर जोडै त्रयभुवण कर ।
त्रासियो जु मै वाखाणियो नारायण विणि अवर नर ।।२।।

जीव बध्ध क्रम्माणि क्रम्म बधा काइ तण ।
काया बध्धी मैल मैल बध्धा इद्रियायण ।।
इद्री बध्धा रूप सबद परसण रस घ्राणै ।
अैले बध्धा मनि मन्न बध्धो महिलाणै ।।
छोडावि ग्राह गज छोडवण वधी तो वळि बधयण ।
जिणि तिणि प्रकारि प्रिथदास जण राखि राखि रुकमणि रमण ।।३।।

मोह पास मडियो करै छळ सब्बळ इकबळ ।
बधि त्रसना झळ झललकल लोभ लगो दावानळ ।।
एक काम पारधी रह्यो सीगणि सर सधे ।
एक काळ लकाळ गळ बैंठो मग रूवे ।।

पाठान्तर—

तीसरे छद का पाठान्तर हमारे अपने सग्रह से—

जीव बद्ध कम्मेण, कम्म बद्धउ काय तण ,
काया बद्धी मयल, मयल बद्धउ इद्रियण ।।१।।
इद्रिय बद्धो सद्द फरस रूव रस घाणइ ,
ए सहु बद्धा मन्न, मन्न बद्धउ महिलाणइ ।।२।।
छाड विग्गह जग छदि इणि बलबधग ताइ बल बहण ,
जिणि तिणि प्रकारि पृथुदास भणि राखि राखि रुकमणि-रमण ।।३।।

कम्मेण=कर्मों से । क्रम्म=कर्म । काय=शरीर । मयल=मैल, पाप । सद्द=शब्द । फरस=स्पर्श । रूव=रूप । घाणइ=गध से । महिलाणइ=महलो मे, महिलाओ से । विग्गह=विग्रह । छदि=कपट । भणि=सुमिरण कर । राखि-राखि=रक्षा करो रक्षा करो ।

मन मृग भुवन वन अतरहि मुखिमाया वल्ली धरै ।
सुन चरै नखै भय करै, त पेखै हरि सभरै ।।४।

मोह पास परजळै बोध दावानळ लग्गो ।
अगनि लोभ ऊभमै सघण सतोष स भग्गो ।।
डसै नागि वैरागि काम पारधी मरम हि ।
हणेस बाणि गियानि काळ लकाळ उर म्हि ।।
मजर पुहप आणदमय चहू मग्गे लग्गो चरण ।
मन मृग थियो जीवण मुगत तो पसाई वसुदेव तण ।५।।

विना तूझ वेदा निगरम गोविंद गदाधर ।
सुवि सधार व्रनीया सुरिद्र ग्रहण उधोर गिरवर ।।
करि कुभाव मम कन्ह भाव दै भगत परायण ।
गुण गहन गोपाळ निज्ज नामी नारायण ।।
श्रेवता करता सखधर काइ निछेछ कमळा-रमण ।
छोडिस्यै मूझ बळि छेतरण कहि क्रिसन बीजो कमण ।।६।।

अमृत लता जे लहै कोई मदार प्रयासै ।
पारिजातक तजै कोई कडुवा तन वासै ।।
सीतळ छाया मेल्हि धूप को बैसै पथरि ।
लाभति सुख सेझ सुवै को बाउळ सथरि ।।
तन आप आपरै जाणतै सुख तजै को दुख सहै ।
ताहरै नाम हरि लभ्भतै कोइ नाम बीजो कहै ।।७।।

पाखडै पिड गयो ध्यान चूको गई धारण ।
हीण भक्ति इाहूल कर्म नही जाणै कारण ।।
ऊपरि होइ ओडियै आप नीवे अविनासी ।
केही परि हो क्रसन जीव रो जोखम जासी ।।
भ्रातीयै भ्राति भाजै नही देव दुहेली वारडी ।
ओ रोग अमगळ ऊपनो अहि हो गोविद गारुडी ।।८।।

तू कोमळ तू कठिण तू हिज मनहर मन रखण ।
तू अतृपत तू तृपत तू हिज वेकल्ल विचखण ।।
तू दुरजण तू सजण तू हिज जोवण जर आगति ।
.. .. ।।
अधार तू हिज उद्योत तू तू हिज हेक त्रिभुवण तळै ।
गोविंद मह्र हवि गुनह विणि छोडि बध छेह मळै ।।९।।

लाख सिंघ केहरी एक जबक ग्रहि ल्यावै ।
दुयण देखि भूतेस तजै कोमड पलावै ।।
सेस नटै भुग्र भार भगनि प्रहलाद न भावै ।
बलि राजा हरि चरण छाडि अवरा चित लावै ।।
रवि किरण पेखि जग तम रहै दव हेमाचळ प्रज्जळै ।
हरि हरि पुकार सारगधर जा मिरताज न सभळै ।।१०।।

लोभ मोह जळ बहल लह त्रिस्णा अनिमधी ।
कुमति फैण ऊछळै अगम चिंता तट बधी ।।
काम क्रोध अति रौद्र ग्राह तै सगि मग्जिजै ।
नही सुक्रित्त बोहिथ जेणि अवलवि तरिज्जै ।।
माया समुद्र गोपाळ हरि दै बूडत आलबयण ।।
करता अनत पाखै न को सभा मित्र बधु मयण ।।११।।

वासनीयै क्रन विपुळ होम कीधा हाथाळै ।
लक बभीखण थप्पि परम निज वाचा पाळै ।।
अग्जिण ओळग तै सामरथि होइ सखाए ।
अबरीख करि अमर आप अवतार हि आए ।।
वाछलो भगता तू विसन आगै भगत उववरी ।
आमगो तेणि लागो अनत त्रीक्रम ओळग ताहरी ।।१२।।

जाप चरण जयदेव नामदे ग्रहेय निरत्ता ।
सुकदेव हि साहीयै रगि जे पाडव रत्ता ।।
प्रीति करै प्रहलाद आवि रहियो जा ओलै ।
ओलै जे आविया व्रहम दिन सोह्या बोलै ।।
आसगो तेणि लागो अनत किमै न छोडै तामकर ।
अभवास हूत बीग्रेह्य चरण तकै मै चक्रधर ।।१३।।

गोकळ तम्ह गोपाळ तइ गोवाळ तुहारा ।
वेढि लार बाछरू हुए अम्ह मा तो हारा ।।
चूरण कस चालीया तई पेखिवा तमासै ।
हुवै लार हाल्लिया परम जण तोरा पासै ।।
गाजियो कस गुणि गहकिया वडवा होए विमरी ।
प्रम ठेलि म हू तोरा पगा हरि तोरा वारतरी ।।१४।।

नाद मूळ थड वेद डाळ अढार पुराणह ।
सासत्र साख प्रसाख पन सुवचन प्रमाणह ।।
सीतळ अति सुगध गरुव गभोर गमागमि ।
अमर असुर अनि-अनि भगत वीटियो भुवगमि ।।

वासिया भुवण चउदह विसन वास जास कीरति वळि ।
तिल-तिल्ल वार हू हरि तणा बावन चदण ना बळि ।।१५।।

वन सरीर विग्रहै अब आराम उजाडै ।
लाज तेज लावण्य उसण चिता ऊपाडै ।।
सकै न को सघारि नाग निरजरा निसाचर ।
भैरव रूप रौद्र तास सिव हरै धनधर ।।
ससार ईस जपै सयळ नर पारघी तत्तखिण ।
वाराह उर भजण हरि तू समथ्थ निरदुद विण ।।१६।।

वप वन अतरि वसै फिरै दह दिसि चाहतो ।
दया अगी मारत क्रोध पारध्ध करतो ।।
फेरि चित्र लगूल ध्रम पत्तण ऊजाडै ।
माया छरा उभारि त्रपा वाराह विभाडै ।।
हुव दै भजन धानखधर जीहा करत ...फालियो ।
हरि नाम खग्ग प्राहार विणि पाप सिघ के पालियो ।।१७।।

मित्र बधु मावित्र निमध जाणियै निरंतर ।
स्वारथ हि सनमधि छूटिजाइ है कलेवर ।।
पाच बध ऊबध साम जीतै सु कळपण ।
सोने वूहे रेत जरा आई गै जोवण ।।
आधार पखै धर उद्धरण पखै थभ थभण गयण ।
दुहिले ज हथवाही दियण सु कुण निरजण तूझ विण ।।१८।।

कुलरि नह अगुली बोर मोखण नर विणकर ।
कट्टारी नह कवच बाथ सुण आवी नाहर ।।
प्रमदा विभचारणी रग प्रिय सरस न खेली ।
चौ गाऊ चलियो जरा विरध तन वेली ।।
जगदीस किथा जाइजस्यै जीवण किम जीवीजिस्यै ।
सौ पुरस कूप अतरि सलिल प्यास तास किम पीजिस्यै ।।१९।।

सखासुर सघारि मच्छि सायर माणिज्जै ।
मेर कोम उद्धोर धरा वाराहि धरिज्जै ।
हरिणाकुस पाधरै खेत्रि नरसिंघ वहिज्जै ।
बळि बायणि बाधीजै धरा फरसधर दिज्जै ।।
सघारि कुभ रामण सहित लका राघव लुट्टियै ।
विपरीत काळ आगा विसन तू छुडावि त छुट्टियै ।।२०।।

मधुकैटभ हरिणख्खि हरिणकस्यप सघारिय ।
नृग राजा रिंखि वधू रेण तन रूप सभारिय ।।
द्रुपदसुता समरिया सभा कौरव मझ्झारिहि ।
पत राखी पूरिया चीर दीठा समारी हि ।।
बळि द्वारि हुवा तुच्छहु बहत ढाकेय जा अबर धरणि ।
यो तूझ मूझ राजा अनत सोमनाथ राखै सरणि ।।२१।।

---

(१)

१ कवडी = कौडी । साटै = बदले मे । विभो = १ वैभव, २. वधा । किसो = कौनसा । आउ = आयु । किती = कितनी । कूदै = नाच कूद करता है, तोफान करता है ।

२ ब्रह्माइ = ब्रह्मा भी । गरढो = वृद्ध । तसमात = अत । थियो = हुआ ।

३ माडियो = लिखा । वहि आयो = १ चला आया, २ प्राप्त हुआ । पहलो छेह = आयु की अवधि का प्रथमान्त-काल । तव्योह = कहा गया है । भाळ = ललाट । पचासै = पचास वर्ष की आयु मे ।

(२)

१. हस सुता = यमुना । हरणाखी = हरिणाक्षी । हाल = चलो । हेरणहारी = तलाश करने वाली ।

२ गेलै मे = मार्ग मे । चूप कियां = उमग से । चागर = १ वार्तालाप, २ मिलन । रीधी = प्रसन्न हुई । बोह = वहुत ।

३ सीख = १ शिक्षा, २ छुट्टी । सहेल = सखा । गहेली = पागल । वार = देरी । वहेली = शीघ्र । हेला किया = आवाज दी, पुकारा । हेली = सखी ।

४ सावळ = १ श्यामल, २ श्रीकृष्ण । दोख = दोष कलक । हसी = निंदा ।

५ नजर = नजर । रहिया ऊभा = खडे रहे । दीठा = देख लिये । हमै = अब ।

६ जोवती = देखती हुई । जोवती = युवती । अव संपूर कुंभ = पानी के भरे हुए घडे को उठाई हुई । कामण = कामिनी । वाट = १. मार्ग, २. प्रतीक्षा । बोहवती = १ गुण आगरी, २. रूपवती ।

(३)

१ सुखरास = आनन्द केलि । खवास = सेवक । मोकळा = अत्यधिक । पखै = बिना । कलिया = हे पिता कल्याणमल ! (आदर सूचक ऊन सज्ञा) । बेकाम = सुकृत्य किये बिना ।

२ मुळकती = मुस्कराती हुई । चौ = का । बाधो = बँधा हुआ । जमारो = जीवन । हार गयो = खो दिया ।

३. हास हसता धौळहर = सुदर केलि गृह । रासत = लीन । पयाणै-लाबै = बडे प्रयाण के समय मृत्यु के समय । जुहार = राम-राम, जय श्रीकृष्ण, विदाई का प्रणाम ।

४. कडूबो = कुटुम्ब । हेक पुळ = एक पल भर भी । चापरि करै = शीघ्रता से । काढो-काढो = जल्दी निकालो ।

५ असिया = घोडे । मदभर = हाथी । खळहळता = पाँवो की साँकल को खड-खडाते हुए । महमत = मदमस्त । व्हालो = प्रिय । पाळो = पैदल । हालियो = चला ।

६ महळी = पत्नी । पण = भी । फळसा लग = द्वार तक । लगै = तक । किणिय न = किसी ने भी ।

७ ताती झळिया = तप्त ज्वालाएँ । धडी-धडी कर = चुन चुन करके । तडी = लकडियाँ । धीबियो = पीट दिया । वडी-वडी = अग प्रत्यग, बोटी-बोटी । बाळियो = जला दिया । वप = शरीर ।

८. भणहणता = गुजार करते । रजियो = १. प्रस्थापित हुआ, २ सज्जित हुआ, सजाया गया । पुगरणै = वस्त्रो से ।

९ खाटी = उपार्जित की हुई । दाटी = गाड दी । धर खोदी = जमीन खोद कर । हेक सिळी = एक तृण भी । पवन = प्राण वायु । पवन बिच पैठो = पवन मे मिल गया । माटी = शरीर । माटी माहि मिळी = मिट्टी मे मिल गई ।

(४)

१. सपक = कीचड सहित । सुर-मुख्ख = अग्नि । सधूमिय = धुआ युक्त । सुवृष = चदन वृक्ष । सप्प = सर्प । सतप्प = तापयुक्त ।

२. असुर गुरु = शुक्राचार्य ।

३ कुलाल = कुम्हार । हसगमणि = सरस्वती ।

(५)

१ रुद्ध = रोकी हुई, बद । पत्त = पत्ता । अयास = आकाश । नयर = नगर । निवळ = निर्बल । भणि = कहता है । प्रथ = पृथ्वीराज । विसभरह = विश्वम्भर । दुरमद = अभिमानी, उन्मत्त, खोटा गर्व । दत्त = दान । विहि = विविध । कलित = सुदर, फँसा हुआ ।

२ आसनी = निकट, आसन्न । हूंती = थी, से । कोहोर = कोस, कुँआ । वहती = बहती हुई । वीडा = काँटो मे, जगल मे, दुर्जनो के साथ । न कीधो = नही किया । वासियो = इच्छा की । वाखाणियो = प्रशसा की । विणि = बिना ।

३ कम्माणि = कर्मों से । कम्म = कर्म । काइ = काया, शरीर । मैल = पाप । इद्रियायण = इद्रियो से । परसण = स्पर्श । महिलाणै = महलो से, स्त्रियो से । राखि राखि = रक्षा करो, रक्षा करो ।

४. त्रसना = तृष्णा । झळ = अग्नि । लकाळ = सिंह । सीगणि = धनुप । नखै = पास मे । सभरै = याद करे ।

५ परजळै = जलती है । ऊझमै = सुलगता है, पैदा होता है, शान्त होता है। पारधी = शिकारी । पुहप = पुष्प । पसाई = कृपा ।

६ उवोर = उठाने वाला । श्रेवता = सेवा करते हुए । निछेह = नि शेष ।

७ बाउळसथरि = बबूल (के कांटो) का बिछौना ।

८ भत्ति = भक्ति । ओडिये = चिनिये । जोखम = भय । जासी = जायेगा । भाजै नहीं = मिटे नही । दुहेली वारडी = कठिन समय मे ।

९ वेकल्ल = विकल । विचख्खण = विचक्षण । जोवण = यौवन । जर = जरा । उद्योत = प्रकाश । तळै = नीचे, मे ।

१० जबक = जवुक, गीदड । दुयण = दुर्जन । कोमड = धनुप । भुअ = भुव, भूमि । दव = अग्नि ।

११ व्हल = बहुत । अनिमधी = अपार । बोहिथ = नाव । बूडत = डूबते हुए को । आलबण = सहारा ।

१२ ओळग = भक्ति । उवधरी = उद्धार किया । आसगो = सबध, साथ, आशा ।

१३ ओलै = शरण । किमै = कैसे ।

१४ वाछरू = बछडे । चूरण = मारने को । गाजियो = मार दिया । गहकिया = प्रसन्न हुए । विमरी = विमर मे । ठेलि म = धकेल मत । वारतरी = न्योछावर ।

१५ डाळ = शाखा । पन = पत्ते । वीटियो = लपेटा । वासिया = बसाये ।

१६ उसण = उष्ण । निरजरा = देवता । तत्तखिण = तत्क्षण । समथ्थ = समर्थ ।

१७ वप = शरीर । दह दिसि = दसो दिशाओ मे । पारध्घ = पारधी । लगूल = बदर, लगूर । त्रपा = लज्जा । विभाडै = नाश करता है । छरा = सिंह का पजा । धानखधर = धनुषधारी श्रीराम । जीहा = जीभ से । खग्ग = खड्ग । पालियो = रोका ।

१८ मावित्र = माता पिता । निमध = निर्मित, बनावटी । सनमधि = सम्बन्ध । ऊबध = खुले हुए । गै = गया । जोवण = यौवन । गयण = गगन । हथवाही = सहारा ।

१९. कुलरि = कुल्हिया । मोखण = खाने को, छुटकारा । विणकर = चिन कर । बाथ = बाहुपाश, भिडत । विभचारणी = व्यभिचारिणी । रग = केलि । चौ = चार । गाऊ = कोस भर की दूरी, दो माइल । जरा = वृद्धावस्था । विरध = वृद्ध । किथा = कहाँ । किम = किस प्रकार । जीवीजिस्यै = जीवित

फुटकर

दीया है जग मे भला, दीया करो सहु कोय ।
घर मे घरयो न पामियै, जे कर दीया न होय ।।१।।

दीया का गुण तेल है, दीया की वडि बात ।
दीये उजाळा हुई रहै, दीये विहूणी रात ।।२।।

अखर एक परिणाम दुइ, कहत प्रिथु कवि हेर ।
ऊ घर दीया ऊ कर दीया, कज्जळ उज्जळ फेर ।।३।।

चित चकमक छाती पथर, काम अगनि कप गात ।
नयण सघण बरसत नही, पिथ तन पर जळ जात ।।४।।

प्रिथु मोतन की माल है, प्रोई काचै तागि ।
जतन करो झाटा बहुत, तूटेगी कहु लागि ।।५।।

चकवा चातक चतुर नर, तीनू रहत उदास ।
खर गूघू मूरख गिथळ, सदा सुखी प्रिथुदास ।।६।।

---

१ दीया = दान । पामियै = प्राप्त होता है ।

२ गुण = लाभ । (तेल है अथवा) ते लहै = वह प्राप्त करता है । विहूणी = विहीन ।

३ अखर = शब्द । परिणाम दुइ = श्लेष मे दो अर्थ । घर दीया = पृथ्वी मे गाड दिया । कर दिया = दान किया ।

४ पिथ = पृथ्वीराज ।

५ प्रिथु = पृथ्वीराज । प्रोई = पिरोई । झाटा = झटके ।

६ गूघू = उल्लू । गिथळ = पागल, हिजडा ।

रहा जायेगा । जाइजस्यै = जाया जायेगा । पुरस = साढे चार हाथ की एक नाप, पुरसा ।

२०. सायर = सागर । माणिज्जै = आनद करते है । मच्छि = मत्स्यावतार । मेर = मेरु पर्वत । कोम = कूर्मावतार । उद्धोर = उद्धार । वाराहि = वाराहवतार । पाधरै = समाप्त करते है । खेत्रि = युद्ध करके । वायणि = वचन से । फरसधर = परशुराम । आगा = द्वारा, से । विसन = विष्णु ।

२१. रिखि वधू = ऋषि पत्नी । मझ्झारिहि = मे । पत = प्रतिष्ठा, प्रतिज्ञा । दीठा = देखे । बहत = बहुत । ढाकेय = ढक दिया । जां = जिन्होने । यो = वह । तूझ-मूझ = तेरा और मेरा सभी का । सरणि = शरण मे ।

हरि सुमिरण उपदेश व आत्म निवेदन

(१)

प्रथि हरि तजि गुण मानवां, जोड़ै किया जतन्न
जाणि चित्त भ्रम बंधिया, गळ गादहां रतन्न

(२)

प्रिथु जु मैं अवरां पुणै, गुण छंडै गोपाळ
मांणक गुंथ मोताहळां, मड गळि घाती माळ

(३)

हंता हरि अबडा हितू, काइ न भजै असन्न
चिदानंद छंडै चलण, मंडै अलिगण मन्न

(४)

हरि परिहरि करि अवर सूं, आस विलंबी आनि
तरु छंडै लागी लता, पथर चै गळ जानि

---

१. मानवां = मनुष्यों के । जोड़ै = काव्यबद्ध किये । जाणि = मानो । चित्त-भ्रम = पागल । गळ गादहाँ = गधे के गले में ।

२. अवरां पुणै = दूसरों के गुण गाये । मोताहळां = मोतियों की । मड गळि = मुर्दे के गले में । घाती = डाली, पहनाई ।

३. हंता = थे । अबड़ा = इतने । काइ = कोई । असन्न = मृत्यु । न भजै = नहीं टाल सका । चलण = चरण । अलिगण = सहेलियाँ ।

४. अवर सूं = दूसरे से । आनि = दूसरी ओर । चै गळ = के गले में ।

पाठान्तर—

३. हुंतै हरि इवडै हितू, कांइ न भजै असंन ।
चिंतामणि छंडै चलण, मंड आलिंगे मंन ।।

४. जास विलूंधी वाणि ।
पाथर कै गल जाणि ।।

(५)

वीथि हरि वीसारि करि, अनि सभरै अयाण
रति छडे पति आपणे, जारि विलूधी जाण

(६)

प्राणी अनकारा पुहवि, गोविंद छड न गठ
तूबी तज सायर तरीस, काकर बंठे कठ

(७)

तूबी ही तारण समथ, जळ ऊपर पाखाण
ताइ तरीयै जग तारणै, तइ केहा वाखाण

(८)

प्रिथ दास प्रभु जे विमुख, विमुखे रसण रसति
ताई पखाळी जनम हलि, सिर धुणि हाथ घसत

(९)

प्रिथ भुपद पकज पर्मकि जे सचरै संहारि
भुवण भवता भुवण जिम, पगो न पडिया पारि

---

५ वीथि = मार्ग। सभरै = याद करता है। अयाण = अजान, मूर्ख। आपणो = अपना। जारि = जार पुरुष के। विलूधी = लिपट गई।

६ अनकारा = वीरो की। तरीस = तिरेगा। काकर = किस प्रकार। कठ = किनारे।

७ समथ = समर्थ। पाखाण = पत्थर। वाखाण = प्रशसा।

८. रसण = रसना। रसति = रस लेती है। पखाळी = पक्षी।

पाठान्तर—

५ वाचा हरि विसारि करि।
६. प्राणी अनिकारा पहुवि, गोविंद छडि म गठि।
तूबी तजि साइर तिरसि, काकर बधे कठि॥
८. विषै रसणि रसति।
ताइ पषीली जनम लहि,।
९ पृथ प्रभुपद पकि प्रमुख, जे सचरै ससार।
भ्रमणि भमती भुयण ज्यु, पगे न पडियो पार॥

(१०)

साइ हरि आप न सपदा, साइ संपदा न संपि
जिणि सपजि तू वीसरइ, बुधि बुझावइ झपि

(११)

मे नेढे पून बहु, तू बडा प्रभु कान्ह
साती सेती वीनती, प्रिथ सहि जी खुन्ह

(१२)

मानवती वर्णन

पून्यो पूरो उग्गवे, बदीजे बीयेण
पृथी नवल्ले रच्चणी, केह्नो दोस पियेण

(१३)

प्रवत्स्यत्पतिका

पियु बिछरत प्रिथदास सुनि, इहि काम सरि सिद्धि
मो हियरा महवाल जिम, रहे दुहूगा विद्धि

(१४)

हरि बिछुरत निकस्यो नही, प्रेम लजावन प्राण
लाइक होइ न दुखन को, अब ढूढत फिरौं मसाण

(१५)

आगमिष्यत्पतिका

पोवण प्रसत प्रसन मन, अग दीवले उजास
साजण साम्हा साजणा, परदेसा प्रथीदास

---

१० आप न = मत दे । न सपि = मत दे । जिणि = जिसके । सपजि = प्राप्त होने से । वीसरइ = विसर जाता है ।

११ नेंढे = छोटा = साती सेती = तेरे से ।

१२. पून्यो = पूर्णमासी को । बदीजे बीयेण = द्वितीया (के चद्र) को वदना की जाती है । नवल्ले = नये को । पियेण = पति को ।

१५. दीवले = दीपक से । साजण = पति ।

पाठान्तर—

१०. साई आवि न आपदा, साई सपदा म सप ।
जिणि सुणी तू वीसरै, बूझ बुझावै झपि ॥

(१६)

एकांगीलगन

मो मन तो रस सौ लग्यो, तो तन नैंकु भिदै न
ज्यो पृथिराज हि मत्र बळ, सस्त्र घात लागे न

(१७)

सज्जन वारौ कोट इक, या दुरजन की भेट
रजनी का मेळा किया, विहि का अक्षर मेट

(१८)

मन अश्व भाव

प्रिथ प्रभु पथी प्रेम को, नयने दीप दिखाइ
मो मन लग्गा तुरग जिम, ज्यु खचे त्यु जाइ

(१९)

ज्ञान भाव

वसती ते ऊजर भई, ऊजर ते फुनि वास
इह जुग अरहट की घडी, देखि हस्यो पृथुदास

(२०)

एक सबद मे सब किया, येसा समरथ सोइ
आगे पीछे जो करै, जो बळ हीना होइ

(२१)

खिण वसती ऊजड करै, खिण ऊजड खित घास
यह जुग अरहट की घडी, देखि डर्‌यो प्रिथदास

(२२)

मन कहिया चित्त न करै, चित क्रित करै सु होइ
इन दुहुवन झगरो परो, प्रिथ प्रभु करै सो होइ

---

१७. मेळा = मिलाप। विहि = विधाता।

१८. तुरग = घोडा। जिम = की भाँति।

१९. ऊजर = आबादी रहित। फुनि = वापिस। वास = बस्ती। इह जुग = यह संसार। घडी = लुटिया, घरिया।

२१. खिण = क्षण मे। ऊजड = वीरान। खित = पृथ्वी।

२२. चित क्रित = चित्त का किया हुआ। परो = पड़ा।

(२३)

सज्जन भाव

प्रिथ गाढे गाढत वढै, दहत न देत दुरार
ए तीनै ताइ पारीखिया, कचन सज्जन सार

(२४)

पृथि गढउँ गाढौ बढत, दहत न देत दरार
ए तीनौ तीय परखीयै, सज्जन सोनौ सार

(२५)

प्रिथीदास पाणी विसन, छडी म व्रन विलोइ
पाथर पाल्हविसी नही, अमी सीचसी तोइ

(२६)

प्रिथि काहे कूवा तकउ, तजि हरि-मदिर द्वार
वेस साह पकरीजिसउ, करत चोर विवहार

(२७)

आली मोरा अवगुणा, साहिब केर गुणाह
बूद वरिक्खा रेण-कण, पार न लम्भै ताह

(२८)

मन चित अर जीव जक, ए सभ तुम ही पास
देही भवइ विदेस कूं, तउ कहा भव प्रिथदास

(२९)

प्री विछुरत प्रिथिदास सुनि, इहइ काम सर सिधि
मो हियरउ मह वाल जिम, रह यै दहुगा विधि

---

२३ गाढत वढै = घडने (ठोकने) से बढते हैं। न देत दुरार = घटते नही-फटते नही। ताइ पारीखिया = ताप द्वारा परीक्षा करने पर। सार = हीरा।

२५. पाल्हविसी नही = भीगेगा नही। अमी = अमृत। सीचसी = सीचेगा।

२६ पकरीजिसउ = पकडा जायेगा। विवहार = व्यवहार, काम।

२७ केर = के। वरिक्खा = वर्षा। न लम्भै = नही पाता है।

२८ देही = देह। भंवइ = फिरती है। भव = जीवन।

२९ प्री = प्रिया। काम सर = काम बाण। दहुगा विधि = दोनो प्रकार से विंध गये।

(३०)

जे मैं घण अवगण किया, तो लेखो तू हथ्थ
तू अवगण सदो श्रीकमा, तू ही कानळि नथ्थ

(३१)

गुरड गुरडधुज पलक मे, जोयण लख्ख ज जाइ
माठौ जाणै छडियौ, जण धावत सिहाइ

(३२)

माहव मिले असंगणे, जा जगदीसर तोइ
तो प्रथु मुख मगण तणौ, खरो दुहेलो होइ

(३३)

मल माया अैठी मडळी, सुणि पृथुदास सुवस
जे लग्गै तो कग्गलो, जे छडै तो हस

(३४)

भावी अक निलाट पट, लिखी करम कृत जास
नन सज्जन नन दुरजना, पळ न मिटै प्रिथिदास

(३५)

जात वळै नहि दीहडा, जिम गिर निरझरणाह
उठ रे आतम धरम कर, सुवै नचितो काह

(३६)

जात-वळतइ सासडइ, जो दीजइ सो लभ्भ
विचि ही वाव विलावसी, राख थयेसी सभ्भ

---

३० अवगण = औगुण । सदो = का । कानळि = हे कान्ह । नथ्थ = नाथ डाल दे ।

३१. जोयण लख्ख = लाख योजन । माठौ = मंद । जण = भक्त ।

३२. माहव = माधव । असंगणे = साहस करने से । जा = जिन्हे । मंगण = भिखारी । दुहेलो = कठिन ।

३३. अैठी = उच्छिष्ट, जूठी । कग्गलो = कौआ ।

३४. नन = नही ही, नही कभी । पळ = पल भर के लिये भी ।

३५. वळै नहीं = लौटते नही । दीहडा = दिवस । निरझरणाह = झरने । धरम कर = कर्त्तव्य पालन कर ।

३६ जात-वळंतइ सांसडइ = स्वाच्छोस्वास लेते लेते ही । लभ्भ = लाभ । वाव = प्राण वायु । विलावसी = विलीन हो जायेगा । थयेसी = हो जायेगी ।

पाठान्तर—

३०. तो गुण बदो त्रीकमा, तु कान्ह ले नथि ।

३१. जोजन लाखां जाइ, जण धावता सहाइ ॥

महाराणा प्रताप

रा

दूहा

महाराणा प्रताप रा दूहा

जब तक इस भारत-भूमि पर एक भी हिन्दू जीवित रहेगा, हिन्दू-सूर्य महाराणा प्रताप का नाम सदैव गौरव व श्रद्धा के साथ लिया जायेगा । उन्होने अपने शौर्य व त्याग से मृत-प्राय जाति मे जागृति के प्राण फूक कर उमे वीरोचित जीवन जीना सिखा दिया था. राजस्थान के सारे राजा-महाराजा जब एक-एक कर अकबर की प्रचण्ड शक्ति के सम्मुख नतसिर हो गये थे, तब बीहड जगलो मे भूखा प्यासा रह कर भी इसने स्वतन्त्रता के दीपक को अपने राज्य, सैन्य और परिवार के सदस्यो का बलिदान देकर भी उस भीषण तूफान से बुझने से बचा कर रखा. यह अकेली ऐसी गोरव-गाथा है जो इतिहास मे सदैव स्वर्णांकित रहेगी तथा हमे हमेशा अनुप्राणित करती रहेगी

ऐसी दशा मे राजस्थानी, हिदी, गुजराती, बगाली आदि भारतीय भाषाओं मे महाराणा के व्यक्तित्व पर प्रचुरता से लिखा जाय तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है इसमे भी राजस्थान के तो ऐसे बहुत कम कवि होगे जिन्होने महाराणा प्रताप पर एकाध दोहा या गीत न लिखा हो फिर महाराज पृथ्वीराज, जो महाराणा प्रताप के निकटतम सबधी होने के साथ साथ वीरो की प्रशस्ति के गायक थे, कैसे अछूते रह सकते थे उन्होने मात्र दो सोरठो का एक ऐसा पत्र लिखा, जिसने न केवल महाराणा की क्षणिक कायरता का विनाश कर दिया बल्कि ऐसा वीर रस का सचार किया कि जिसने सारा इतिहास ही बदल दिया—

पातळ जो पतिसाह, बोलै मुख हूता बयण ।
मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासपराव उत ।।
पटकू मूछा पाण, कै पटकू निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण, इण दो मँहली वात इक ।।

[हे महाराणा प्रताप ! यदि आपने अकबर को अपने मुख से बादशाह कहा है तो समझलो कि अब सूर्य पशिचम दिशा मे उगने लगा है हे उदयपुर के दीवान ! आप मुझे इतना लिख कर बता दीजिये कि क्या मैं आपकी गौरव मडित-गाथा पर अपनी मूछो पर ताव दे कर अभिमान प्रकट करू या फिर अपनी ही तलवार से आत्मघात कर लूँ.]

पत्र का अनुकूल प्रभाव पडना ही था. महाराणा ने पृथ्वीराज के पत्र का जो उत्तर दिया, वह भी एक ऐतिहासिक धरोहर के रूप मे भारतीय जनता के पास रहेगी महाराणा ने लिखा कि अकबर के लिये मेरे मुख से सदैव तुर्क शब्द ही प्रयुक्त होगा और इसलिये हे पृथ्वीराज आप निर्भय होकर मू छो पर ताव दें

उपर्युक्त दो सोरठो के अतिरिक्त चौदह दोहे-सोरठे और हैं जिन्हे पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप की प्रशसा मे कहे थे. कवि ने उनका यशोगान करते हुये लिखा है कि यद्यपि महाराणा प्रताप जगलो मे पहाडो पर रहते हैं, फिर भी अपने स्वाभिमान का त्याग नही करते है पहाडो मे निवास करते हुये भी वे अनेक ाज ागणो से घिरे रहते हैं—

घर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणा नरिंदा घेरियो, रहै गिरदा राण ।।

प्रताप जैसे पुत्र को अपनी कोख से जन्म देकर कौन माँ गौरवान्वित नही होती ? उसके प्रताप को देख कर अकबर जैसा शक्तिशाली सम्राट भी ऐसे चौंकता है जैसे सिरहाने साँप आ गया हो—

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो औझकै, जाण सिराणे साँप ।।

राठौड वीर दुर्गादास जिसकी वीरता और स्वामीभक्ति की तुलना का पात्र इतिहास मे ढू ढे नही मिलता, के सबध मे भी इसी प्रकार का एक दोहा जन-मन मे प्रचलित है—

माई एहो पूत जण, जेहो दुर्गादास।
बाध मुडासो राखियो, विण थभै आकास ।।

कवि ने कई मौलिक उपमाओ द्वारा महाराणा प्रताप के अस्त्र प्रहार का सुदर शब्द-चित्र अकित किया है. उनके द्वारा फेंकी जाने वाली बरछी जब शत्रु के कवच को भेद कर बाहर निकलती है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो मछली ने जाल मे से अपना मुँह निकाला है—

वाही राण प्रतापसी, बगतर मे बरछीह।
जाणक झीगर जाळ मे, मुँह काढ्यौ मच्छीह ।।

यही बरछी जब आतो को लेकर बाहर निकली तो कवि ने वीभत्स रस से युक्त क्या ही भव्य उपमा दी है आतो को लेकर निकली हुई बरछी ऐसी लगती थी मानो दर मे से मुँह मे बच्चो को लेकर निकलती हुई सर्पिणी—

वाही राण प्रतापसी, बरछी लचपच्चाह।
जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चाह ।।

जबकि अन्य राजागणो ने अपने अपने मुकुटो, साफो, पाघो आदि को अकबर के चरणो मे झुका कर उसकी आधीनता स्वीकार कर ली थी तो उस समय समूचे देश मे एक ही तो ऐसा व्यक्ति था, जिसके सिर पर अनझुकी पाघ रही. कवि ने कितनी विलक्षणता से इसे व्यक्त किया है—

चौथो चीतोडाह, बाँटो बाजती तणो ।
माथै मेवाडाह, थारै राण प्रतापसी ॥

उपर्युक्त दोहे मे कवि ने घडी के चौथे भाग अर्थात् पाव घडी (पा घडी) का उल्लेख कर कूटार्थ के माध्यम से छद मे चमक उत्पन्न कर दी है.

जबकि देश के सभी छोटे बडे राजागणो ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, केवल प्रताप ही ऐसे नर-सिह थे, जो अत तक स्वतत्रता का गर्जन करते रहे—

सहु गोघळिया पास, आळूधा अकबर तणी ।
राणो खिमै न रास, प्रबळो साड प्रतापसी ॥

इस प्रकार मात्र चौदह दोहों मे कवि ने महाराणा प्रताप के चरणो मे जो श्रद्धा सुमन चढ़ाये हैं, वे किसी सामान्य कवि के अधिकार की बात नही है. उनके एक एक छद नव नव भावों व नई नई उपमाओ से मडित हैं, जो गागर मे सागर भरने मे समर्थ है.

————

प्रताप रा दूहा

(१)

पातळ जो पतिसाह, बोलै मुख हूता वयण
मिहर पिछम दिस माह, ऊगै कासप-रावउत

(२)

पटकू मूछा पाण, कै पटकू निज तन करद
दीजै लिख दीवाण, इण दो मँहली वात इक

(३)

घर वाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण
घणा नरिंदा घेरियो, रहै गिरदा राण

(४)

माई अहडा पूत जण, जहडा राण प्रताप
अकवर सूतौ ओझकै, जाण सिराणै साप

(५)

चोथौ चीतोडाह, वाटो वाजती तणौ
दीसै मेवाडाह. तो सिर राण प्रतापसी

---

१ पातळ = महाराणा प्रताप । मिहर = सूर्य । पिछम = पश्चिम । हूता = से । कासपरावउत = सूर्य ।

२ पटकू मूछा पाण = गर्व से मूछों पर हाथ धरूं । कै = या । करद = तलवार । दीवाण = मेवाड के महाराणा, महाराणा प्रताप ।

३. दिन पाधरा = अनुकूल समय । न मूकै = नही त्यागता है, नही छोडता है । माण = मान, स्वमान । नरिंदा = राजागणो ने । गिरदा = पर्वतों मे ।

४. जण = जन्म दे । ओझकै = चौंकता है । जाण – १. जानकर, २ मानो । सिराणै = सिरहाने ।

५. चोथौ – चौथा भाग, पाव भाग । चीतोडाह – चितौड के अधिपति, महाराणा प्रताप । वाटो चोथो वाजती तणो = घडी का चौथा भाग अर्थात् पाव घडी, (पाव त्पा) कूट अर्थ में पाघडी । मेवाडाह=महाराणा प्रताप ।

(६)

हिन्दू-पति परताप, पत राखी हिंदवाण री
सहे विपति सताप, सत्य सपथ करि आपणी

(७)

पातळ खाग प्रवाण, साची सागाहर तणी
रही सदा लग राण, अकबर सू ऊभी अणी

(८)

सह गावडियँ साथ, एकण वाडँ वाडिया
राण न मानी नाथ, ताडँ साड प्रतापसी

(९)

अइ रे अकबरियाह, तेज तुहाळँ तुरकडा
नम नम नीसरियाह, राण विना सह राजवी

(१०)

पातळ राण प्रवाडमल, बाकी घडा विभाड
खू दाडँ कुण है खुरा, तो ऊभा मेवाड

---

६. पत = लज्जा, सम्मान । हिंदवाण = हिन्दुस्तान । सत्य सपथ करि = प्रतिज्ञा को सत्य करके ।

७ प्रवाण = प्रमाण स्वरूप । सागाहर = महाराणा सागा का वशज । सदा लग = हमेशा के लिये । ऊभी अणी = युद्ध के लिए सदैव प्रस्तुत ।

८. गावडियँ = गायो के झुण्ड को । वाडँ = वाडा मे । वाडिया = प्रवेश कराया । नाथ = आधिपत्य रूपी नकेल । ताडँ = गरजन करता है ।

९. तुहाळँ = तेरे । नम-नम = झुक झुक कर, सलाम करते हुए । नीसरियाह = गुजरे । सह = सभी । राजवी = राजागण ।

१० प्रवाडमल = युद्ध प्रवीण, शूरवीर । बाकी = विकट। विभाड = नाश। है खुरा = घोडो के खुरो से, टापो से । खू दाडँ = पददलित करते है । घडा = सेना ।

पाठान्तर—

७. पाव प्रवाण ।

(११)

वाही राण प्रतापसी, बगतर मे बरछीह
जाणक भीगर जाळ मे, मुँह काढ्यौ मच्छीह

(१२)

वाही राण प्रतापसी, बरछी लचपच्चाह
जाणक नागण नीसरी, मुँह भरियो बच्चाह

(१३)

पातळ घड पतसाह री, अेंग विघूसी आण
जाण चढी कर बदरा, पोथी वेद-पुराण

(१४)

सहु गोधळिया पास, आळूधा अकबर तणी
राणो खिमै न रास, प्रबळो साड प्रतापसी

---

११ वाही = चलाई, फेंकी। बगतर = कवच। जाणक = मानो। भीगर = मछुआ, धीवर।

१२ लचपच्चाह = आँतें। नीसरी = निकली।

१३ घड़ = सेना। पतसाह = बादशाह। अेम = ऐसे। विघूसी = नाश किया।

प्रशस्ति गीत

प्रशस्ति गीत

राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल का इतिहास संघर्षपूर्ण रहा है, अतएव डिगळ का अधिकाश गीत साहित्य वीर रसात्मक ही रहा है राजस्थान मे कदाचित ही कोई ऐसा वीर होगा, जिसकी पुण्य स्मृति मे एकाध गीत की रचना नही हुई हो और क्योकि ऐसे वीरो की सख्या भी अगणित थी, इसीलिये यहाँ के कवियो द्वारा अगणित गीतो का सृजन भी हुआ ये गीत हमारे देश के लिये एक अमूल्य थाती है, जिनमे जीवित और दृष्ट इतिहास सुरक्षित है राजस्थान मे मुख्य रूप से चारण और भाट कवियो तथा गौण रूप से चारणेतर कवियो ने राजा-महाराजाओ अथवा आश्रयदाता जागीरदारो की वीरता, धर्मपरायणता, उदारता आदि उदात्त गुणो की गीतो के माध्यम से भूरि-भूरि प्रशसा की है. डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु ने इन प्रशस्ति गीतो को दो भागो मे विभाजित किया है[1] प्रथम नैसर्गिक दृष्टि से आश्रयदाता का गुण कथन और द्वितीय अपने उद्देश्य की पूर्ति के साधन के रूप मे दोनो ही दृष्टियो से लिखे गये ये गीत अपने चरित्रनायक के प्रति अत्यधिक सम्मान या स्नेहातिरेक के कारण अत्युक्तिपूर्ण होते हुये भी सर्वथा निराधार नही होकर ठोस ऐतिहासिक पृष्ठिका लिये हुए है

चारणी रचनाएँ प्राय: प्रपचपूर्ण भाषा मे काव्यात्मक वर्णनो से भरी रहती है. बाद के मारवाडी चारणो की तो यह शैली ही बन गई थी, जो डिंगळ भाषा बन गई थी.[2] इसी डिंगळ भाषा मे लिखे डिगळ गीतो का राजस्थानी साहित्य मे अपना विशिष्ठ स्थान है.

डिंगळ भाषा मे रचित ये गीत संगीत विधानुसार गेय न होकर वैदिक ऋचाओ अथवा गीता के श्लोको की भाँति सस्वर पढे जाते थे वास्तव मे गीतो का सस्वर पाठ भी एक कला थी, जो अब आधुनिकता की बाढ मे तथा पारपरिक गीतो के निर्माण के अभाव मे लुप्त होती जा रही है इन गीतो का अपना छद विधान है. डिंगळ के अब तक अनेक रीति ग्रथ प्रकाश मे आ चुके हैं इनमे कवि मछ कृत 'रघुनाथ रूपक', उदयराम कृत 'कविकुल बोध' तथा किसना आढा रचित 'रघुवर

---

१. 'चारण साहित्य का इतिहास, भाग १,' पृ० १६१. ले०, डॉ० मोहनलाल जिज्ञासु प्रकाशक :—उज्वल चारण सभा, जोधपुर ।

२. परम्परा अक २५-२६ स. नारायणसिंह भाटी, जोधपुर. पृ० १६.

जस प्रकास' अति प्रसिद्ध है 'रघुवर जस प्रकाश' मे ९१ प्रकार के गीतो का उल्लेख है ससार के छंद-शास्त्रीय इतिहास मे यह राजस्थानी भाषा का ही गौरव है कि उसका छंद विधान इतने प्रचुर वैभव से मडित है डिगळ गीत की प्रशसा मे कवि नवलजी लालस ने लिखा है[3] —

गीत डिंगल री तारीफ रो

किसू व्याकरण अवर भाखा अनै पराक्रत
ससक्रित तणै क्यू फिरै सागै,
लाख रा ठाकरा तणा माथा लुळै
आखरा तणा गजबोह आगै ।।१।।

नायका-पाठडा हूत आवै नही
लायकाछरा री अतर लाहा,
कोइक विरदायका माय जाणै सकव
वायका सायका तणी वाहा ।।२।।

तिकण री सीखिया भेद नावै तुरत
सुरत पण पेखिया पडै सासै,
विधक घणजाण रा माण छाडै वहै
वाण रा जहूरा तणै वासै ।।।३।।

जोगमाया तणी भगति कीधा जुडै
प्रथी सिर मुडै नह विकट पैडा,
सगत रा पुत्र जाणै कोइक वचनसिद्ध
उगत री जुगत रा घाट अैडा ।।४।।

---

१. आखरा तणा गजबोह = काव्य का चमत्कार ।

२ नायका-पाठडा = नायक-नायिकाओ के पाठो (काव्यो) मे । लायकाछरारी = काव्य मे योग्य अक्षरो को लाने की कला । वायका-सायका = वचन रूपी बाणो की । बाहा = प्रहार ।

३. नावै = नही आवै । सासै = सशय मे । विधक घणजाण रा = अनेक शास्त्रो के जानने वाले विदुष । वाण रा जहूरा = वाणि (डिगल काव्य) का प्रकाश ।

४. विकट पैडा = कठिन मार्ग । सगत रा पुत्र = चारण, शक्ति पुत्र । उगत = उक्ति । जुगत = युक्ति । घाट अैडा = दुर्गम घाट ।

---

३. 'डिंगल गीत, पृ० १३ स० श्री रावत सारस्वत, प्र० शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर ।

वास्तव मे इन गीतो के कहने की कला पर कवियो ने बडा जोर दिया है क्योकि इस कला के बिना सुन्दर गीत भी प्रभावहीन हो'कर रह जायेगा. किसी कवि ने इसे उचित ढग से व्यक्त किया है—

कवि के अक्खर सब सक्खर, कछु कहिबै मे वैण ।
वो ही काजल ठीकरी, वो ही काजल नैण ॥

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि गीत छदो की इस समृद्ध परम्परा मे अनेक कवियो का योगदान रहा है. कवि शिरोमणि महाराज पृथ्वीराज राठौड भी उनमे से एक है यह सत्य है कि पृथ्वीराज की जितनी ख्याति उनके सर्वोत्तम ग्रथ 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' तथा अन्य भक्ति ग्रथो—'दसरथरावउत रा दूहा', 'वसदेरावउत रा दूहा', और 'गगाजी री दूहा' आदि से हुई है उतनी उनके द्वारा प्रणीत गीतो से नही हुई है. इसके दो कारण है प्रथम तो वेलि की सर्वोपरिता ने सबको इतना मत्रमुग्ध कर लिया था कि अन्य रचनाएँ गौण बन गई और द्वितीय गीतो की सख्या भी अल्प थी अद्यावधि पृथ्वीराज के उनचालीस प्रशस्ति गीत उपलब्ध हुये है विभिन्न शूरो और जूझारो की प्रशसा मे कहा गया एक एक गीत कला की उत्कृष्टता का अमूल्य रत्न है, पर भक्त कवि के रूप मे प्रतिष्ठित हो जाने के कारण इनका प्रशस्ति-काव्यकार का रूप अधिक दमक नही सका एक तथ्य और भी है. प्रशस्ति गीत लिखने का कवि का उद्देश्य किसी स्वार्थ की साधना के हेतु नही था. अन्य दरबारी कवियो की भाँति उन्हे रोटी और रोजी की चिंता नही थी और इसीलिये उनका काव्य अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुये भी राज्याश्रित कवियो के काव्य मे सत्य के कही अधिक समीप था उन्होने न तो कायरो को शूरवीर ही बनाया और न अपनी मौत से मरने वालो को जूझार सिद्ध किया विपरीत इसके, उन्होने अपने कथित अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन के लिये स्थान स्थान पर 'गळ गादहा रतन्न' और 'मड गळ घत्ती माळ' आदि कह कर सामान्य मानव के गुण कथन पर पश्चाताप किया है.

अल्प मात्रा मे ही सही, पर एक बात तो सुनिश्चित है कि पृथ्वीराज अपने समय के प्रसिद्ध गीतकार थे और अनेक विद्वानो ने गीत साहित्य मे भी उन्हे शीर्ष स्थान दिया है

एक बार जोधपुर के मोटा राजा उदयसिंह ने चारणो के ऊपर कुपित हो, उनके गाँव जब्त कर लिये. मारवाड के आउवा नामक नगर मे समस्त चारण उनके इस आदेश का प्रतिकार करने के लिए एकत्रित हुये. चारणो ने वहाँ धरना दिया और उसके पश्चात् परिणाम के अभाव मे उन्होने चाँदी की अर्थात आत्महत्याएँ करना प्रारम्भ किया प्रसिद्ध चारण कवि रामा सादू भी वहां था यह कवि मेवाड का था और इसे मारवाड मे भी रामासणी नामक गाँव जागीरी मे मिला हुआ था, पर जैसे ही इसे यह मालूम हुआ कि महाराणा प्रताप पर अकबर की विशाल सेना

मानसिंह के नेतृत्व मे चढ आई है तो धरने का त्याग कर, अपने सैनिको के साथ महाराणा की सहायतार्थ आ पहुँचा हल्दी-घाटी का तुमुल युद्ध हुआ और वहाँ यह वीर मातृभूमि की रक्षार्थ वीरगति को प्राप्त हुआ पृथ्वीराज तो महाराणा के परम प्रशसक थे और जब उन्होने यह जाना कि उनके आदर्श पुरुष की और अपनी मातृ-भूमि की रक्षार्थ एक चारण कवि ने अपने स्वार्थो को तिलाजली दे अपना जीवनोत्सर्ग कर दिया तो कवि की वाचा बह निकली—

गीत सांदू रांमै रो प्रिथीराज कहै

गयौ तू भला, भला तू न गयौ
धिन धिन तू सादवा-धणी।
जाडै अणी माहेडो जाकळ
अणी करण पातळा अणी ।।१।।

तै लिय आहव राण त्रिजडहथ
ले लाधण सासण न लिया।
सोहै ससत्र सालिया सात्रव
कठ सोहै न खालिया किया ।।२।।

[हे सादू कुळ श्रेष्ठ ! तेरा धरना देने जाना, नही जाने के समान हो गया तू प्रताप की सेना की सहायतार्थ सेना लेकर आ पहुँचा तूने सासण के लिये लघन करना छोडा और गले पर अपनी ही कटारी से घाव न कर (आत्महत्या न कर), तूने युद्ध मे तलवार धारण कर शत्रु सेना का सहार किया, तू धन्य है.]

इस गीत के अतिम दुहाले से स्पष्ट हो जाता है कि सादू रामा के पिता का नाम धरमा था— धरमा-तणो न बैठो धरणै,' तीसरे दुहाले से पता चलता है कि रामा किसी प्रसिद्ध व्यक्ति आबा का वशज था—'आबाहरा न बीजा ओपम,' पृथ्वीराज ने इस गीत के माध्यम से रामा मे निहित उदात्त गुणो को उजागर कर हमारे सम्मुख एक सास्कृतिक आदर्श की स्थापना की है व्यक्तिगत स्वार्थों से श्रेष्ठ राष्ट्र का स्वार्थ है क्योकि देश सर्वोपरि है रामा इसी आदर्श की प्राप्ति की हेतु अपना सर्वस्व अर्पण कर युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुआ अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाना इस गीत का दूसरा आदर्श है

इस गीत का भाषाकीय स्वरूप परिनिष्ठित डिगळ होते हुये भी अपेक्षाकृत सरल है. इसमे सर्वत्र उत्तम वयणसगाई अलकार के प्रयोग के अतिरिक्त अनुप्रास (सोहै ससत्र सालिया सात्रव), पुनरुक्तिप्रकाश (धिन धिन तू सावदा-धणी), विरोधा-

---

१. सादवा धणी = चारणो की सादू शाखा का स्वामी। जाडै अणी = बड़ी सेना।
२ आहव = युद्ध। त्रिजड = कटारी। सात्रव = शत्रु।

भाम (गयो तूं भला, भला तू न गयो), आदि अनेक अलकारो का सुदर प्रयोग हुआ है.

इतिहास प्रसिद्ध कल्ला रायमलोत के अद्भुत पराक्रम से प्रभावित हो पृथ्वीराजजी ने दो गीतो की रचना की. प्रथम गीत व्यक्तित्व शीर्षक के अन्तर्गत थोडे विवेचन के साथ उद्धृत किया गया है अतएव यहाँ पर कल्ला के जीवन की चारित्रिक विशेषताओ का वर्णन और द्वितीय गीत संबंधी समालोचनात्मक विवरण भर प्रस्तुत करना समीचीन होगा गागा का वशज और रायमल के पुत्र कल्ला अप्रतिम वीर थे एक बार बादशाही नौकरी के कारण इन्हे लाहोर जाना पडा लाहोर मे किसी मनसबदार के आदमी के अपमानजनक शब्द कहने के कारण कल्ला ने उसका सिर कलम कर दिया, पर साथ ही बादशाही-परिणाम की आशका के कारण वे अपने किले सिवाने मे आकर रहने लगे आशका निर्मूल न थी बादशाह ने हत्या का बदला लेने के लिये इनके ही बधु मोटे राजा उदयसिह से कहा इस प्रकार के निर्देश से बादशाह को एक लाभ और होता दोनो वीर तथा उनकी सेनाओ का नाश एक तरफ बधु तथा उसके प्रति अपार स्नेह तथा दूसरी ओर शक्तिशाली बादशाह की आज्ञा गुलामी क्या नही करवा सकती ? विवश होकर मोटे राजा ने अपने महाराजकुमार सूरसिह को एक विशाल सेना के साथ आक्रमण करने को भेजा सूरसिह बुरी तरह परास्त हो, सामुँह लौट आये इधर इस हार पर बादशाह ने मोटे राजा को कडे शब्दो मे उपालभ दिया और आज्ञा दी कि वह स्वय जाकर उस उद्दण्ड को दड दे निदान मोटे राजा ने आक्रमण किया पर कई दिनो के कठोर घेरे का भी कोई सुफल नही निकला अत मे पोलियो नामक नाई को लोभ देकर गढ मे प्रवेश करने के गुप्त मार्ग का सारा भेद जान लिया. मोटे राजा की सेना किले के भीतर प्रवेश कर गई यह देखकर रनिवास की सभी क्षत्राणियो ने तो जौहर कर लिया पर कल्लाजी ने उस समय जो युद्ध किया वह अद्वितीय था सिर कट जाने के बाद उनके धड़ ने शत्रु सेना का वह घान निकाला जो आज तक सुनने मे नही आया और अत मे वह वीर सवत् १६४५ को वीरगति प्राप्त हुआ.

नव चौकिये महळ नीसाणी,
राखी राख करै निय राणी।
कलो मुवो कथ अकथ कहाणी,
पब्बै सीस चढावै पाणी ॥

नव''' नीसाणी = किले की नौ चौकियो पर अभी तक उनकी रानी का जौहर स्थान पूजित है। राख = सती की भस्मी। अकथ कहाणी = कहानी अकथनीय है। पब्बै....पाणी = पर्वत (अणखले किले) पर यश रूपी पानी चढ़ाकर।

पृथ्वीराज ने युद्ध वर्णन करते हुये कहा है कि एक बार तो सारा ससार भी यदि उसके मार्ग का अवरोधक हो जाय, तो भी राठौड कल्ला निर्भय होकर, बिना रुके, क्षात्रधर्म का निर्वाह करते हुये तथा तलवारो से मुसलमान सेना का सहार करते हुए, तलहटी से किले मे जाने के लिये पर्वत शृगो पर चढता गया अपने उज्ज्वल चरित्र से उसने सिवाने के किले का भी यशस्वी बना दिया—

रायमलोत रोद रीसाणै,
थुडिया कटक लूबियै थाणै।
रूका मुहै विढतै राणै,
सिरगै चल चढियो समियाणै ।।२।।

नमे न निरभय जगत नडतै,
खेडेचै खत-माग खडतै।
घायै अरदळ सेन घडतै,
चढियो गिरवर नीर चढतै ।।३।।

इस गीत मे उत्तम वयणसगाई, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलकारो के साथ साथ 'नीर चढतै' और चढावै पाणी' आदि रूढि-प्रयोगो के द्वारा अर्थ-चमत्कार उत्पन्न हो गया है 'खत-माग' अर्थात 'रजवट' का उल्लेख कर कवि ने क्षत्रियों के 'प्राण जाहि पर वचन न जाहि' जैसे गुणो और उससे उत्पन्न गौरव को अकित किया है गीत मे वीरता-वर्णन की अद्भुत छटा और अत्युक्ति का अभाव वस्तुतः उल्लेखनीय है

गीतो का अध्ययन करते समय एक और तथ्य उभर आता है वह है राजपूतो का मुसलमानी नामो का अनुसरण करना इसके दो कारण हो सकते है प्रथम तो मुसलमानो का राजनैतिक दबाव तथा द्वितीय चापलूसी करने की दृष्टि से स्वेच्छा से. ख्यातो मे तो ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते हैं[1] मुहता नैणसी री ख्यात, पुरुष नामानुक्रमणिका मे नौ 'लाडखान' नामधारी ऐसे क्षत्रियो का नामोल्लेख है[2] जिनके पिता और पुत्र दोनो के हिन्दू नाम थे एक

---

२. रायमलोत = रायमल का पुत्र राव कल्ला। रोद = यवन। रूका मुहै = तलवारो से। विढते = लडते हुए। सिरगै = शृगो पर।

३ नडतै = अवरोध होने पर। खत-माग = क्षात्र मार्ग। घायै अरदल = शत्रु सेना का नाश करते हुए। नीर चढते = यश रूपी पानी चढाते हुए।

---

१. मुंहता नैणसी री ख्यात, भूमिका, भाग ४ पृ० १८ स० प० बदरीप्रसाद साकरिया.
२. वही पुरुषनामानुक्रमणिका पृ० ८२.

उदाहरण दृष्टव्य है. कछवाहो की वशावली का विवरण देते हुये नैणसी ने लिखा है—'ऊदो लाला रो→लाडखान ऊदा रो→फतैसिंघ लाडखान रो तिणनू राजा जैसिंघ बेटो कर गोद लियो थो.[1] इन गीतो मे भी एक गीत 'गीत दोलतखान नारायणदासोत नू' इसी प्रकार के नाम से सबधित है

यह सभी गीत व्यक्ति-पूजा मे सबधित हैं

इन उनचालीस गीतो मे से दो चारणो पर, एक मुसलमान पठान पर दो अपने बडे भ्राता महाराजा रामसिंह पर, दो महाराणा प्रताप पर, दो वीरवर कल्ला रायमलोत पर, पाँच गीतो मे व्यक्ति सूचक नाम का अभाव है तथा शेष राजस्थान के किसी न किसी वीर से सबधित है

निश्चय ही इन गीतो का उद्देश्य ऐतिहासिक विभूतियो के चरित्र के एक सबल पक्ष का उजागर करना रहा है और ऐसा करते समय सहज ही अत्युक्तिपूर्ण वर्णन हो जाता है वीर की वीरता का मूल्याकन करने के लिये वीर काव्य का इसे एक आवश्यक अग ही समझना चाहिये. पृथ्वीराज के गीतो मे उनके अपने मौलिक रूपक बडे ही सुरुचिपूर्ण और विषय को (दुरूह नही बनाकर) स्पष्ट करने वाले होते हैं। जब तक उन्हे समझने की कोशिश नही करते वे अत्युक्तिपूर्ण मालूम होते है। साथ ही इन गीतो द्वारा हमारे मध्यकालीन समाज का जो सास्कृतिक पक्ष उभर आया है, वह कोई कम महत्वपूर्ण नही है. अतएव हमे इन गीतो का मध्यकालीन भाषा, शैली, सास्कृतिक व सामाजिक पक्ष तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे ही मूल्याकन करना चाहिये.

---

१. वही. भाग प्रथम पृ० ३१८

गीतों की प्रथम पंक्ति अकारादि क्रम से—

१ अकबर दळ
२ अपछर इम कहै
३ अमगळिवर
४ आप दईव कोपिये
५. आलोच करै जोईयो
६ ऊगा दन समै
७ एक फरसधर राम
८ अहो पीथळो वीराण
९ कर लेखण कुत
१० कोळी कर भाग
११. कनि पडियो अजनन
१२ खाग भट विकट
१३. खेडपत करू
१४ गयो तू भला
१५ ग्रह न सकै
१६. चढै ळीड बकडाळ
१७ जम पासै अेक
१८ तो तणा सूर
१९ दला दियतो ओळभा
२० दामणि करि अहे
२१. धणि करै वाखाण
२२ नर जेथ निमाणा
२३. पावक काइ जहर
२४. पूरब दिस काम
२५. भरि सूता नींद
२६. भवस जाप थाका
२७ भवसादरि छोहि
२८. मिटियो रण दळै
२९. रमतो मन माथै
३०. बढ चढ बोलियो
३१. वळावळी गोळा वहै
३२. वाजइ नौबते
३३. विढण दीह विढता
३४. शकर चढि वृषभ
३५. सकति सो सिवा
३६. सत पुरखा तूझ
३७. सरणाई चरण
३८. सिर झूर हुओ
३९ सुरागुर अेम कहे

(१)

गीत प्रिथीराज राठोड़ रो कहियो

अकबर दळ अगनि कडाह आरीयण
लाकड सुहड बळै कुळ लाज
दूध कुसळि पोहतो खीची दळ
पाणी आवटियो प्रिथीराज ॥१॥

चामरियाळ घडा चूडाक्रमि
अघपति काठ जळै अहकारि
हरिराज उत वहरण होमता
पै जासउत पहुतो पारि ॥२॥

खरहड फोज अगनि खू दाळम
नर ईंधण जाळिजै नरेस
रासो खीर निवाछ राखियो
नीर प्रजळियो खेड नरेस ॥३॥

सतदळ वैमदर मानव सळ
बळै तेजि बोह मानववळ
अमरत धारु हरै ऊजाणो
सूरहरो जळियो सुजळ ॥४॥

(२)

गीत प्रिथीराजजी कहै

सतपुरखा तूझ जिसा साहसमल,
वीरे नह छाडियो भ्रम।
अन अभवै भव नवज आदरै,
कुळ दहुंवा देसीया क्रम ॥१॥

मैला राज पेखि मालावत,
भाटी तो हुयवो खत भीर।
कीजो हुवो काच कुलवती,
सोनो जो नायका सरीर ॥२॥

दोसीयै विसै अभिनमा देवा,
लाभियो नहीं पटतर लेखि।
ऊना वसतर नवज अभावै,
दासी तणा पटबर देखि ॥३॥

सपति काजि तूझ सारीखा,
रायजादा जेसळगिर राव।
कुळ ध्रम छाडि नवज क्रमेवो,
नवज बोलियो छाडि नियाव ॥४॥

(३)

गीत

खेडपत करू भागोड हाडा खेती
समझती न थी कुळवट सनीमा
ताण री ऊच धारी अडग अडसतण
भुजा हिंदवाण री लाज भीमा ॥१॥

बेसु पूरब पछम दखण उतराध वीच
साख पकस वट तजै अवसाण
मडी गहिलोतगुर गळै थाटै मरद
खेत धरमपणा री अडप खूमाण ॥२॥

जुगादि जोध जोगिंद जारी जहर
तूझ विण अवर [कुण] गयण तोलै
धणी चीतोडँ खटतीस कुळ ढाकिया
एक भीमेण भुजडड ओलै ॥३॥

(४)

गीत पाहू भीमा रो प्रिथीराजजी कहै

भरि सूता नीद ऊपरै भीमा, रूक वहै लू बिया रिम।
किम सभरी तरवार ग्रही किम, किम काढी वाही सु किम ॥१॥
पोढियै जु तै कियो राव पाहू, भारथ हू अधिको भाराथ।
वामै तणै दाहिणै वळियो, हाथवैर वाहतै हाथ ॥२॥
तन डोलिया पछै डूगर-तण, सूतै नीद जु ते सभवै।
सारहली चत्र वार साचवी, हेकिणि जिणि वाखाण हुवै ॥३॥

(५)

गीत गोपालदास मांडणोत रो प्रिथीराजजी कहै

धणी करै वाखाण सत्र करै अमगळ धमळ,
सहोवर तीख आणै सओधा।

माडहै परणजै कमध गोपाळमल,
जानिया साथ रिडमाल जोधा ॥१॥

माडवै वेर ही नवे ग्रह माडिया,
ब्राह्मण फिरै नारद विचाळै।
रौद्रणी वीदणी छेह सिर राळियै,
रुधर तबोळ मुख हूत राळै ॥२॥

माडहो अमलगत सगा वाकै मुहै,
वडम वर सोह सत्र चढै बकवाद।
वीद मुरधर तणो सतर ची वीदणी,
नवलगत परणिया सीववै नाद ॥३॥

पटधरै पखणी अपछरा पूखणै,
धार तोरण अणीवाध खत्र घोड।
विकट लाडी सबे लगन वाको त्रबक,
मयक रो परणजै बाधियै मोड ॥४॥

हुवै जस दायजो पात्र पळचर हुवै,
खरच वरियाम सत्र दाम खूटा।
जोत मे पोढियो महल जेसाहरौ,
छेहडा अवतरण तणा छूटा ॥५॥

(६)

गीत जसै चारण रो प्रिथीराजजी कहै

जम पासै एक पोढीयौ बीजौ,
पिसुण कहै जागीयै पछै।
मानो मारि जसो अणमारियै,
आवण जीवता दुलभ अछै ॥१॥

आवे सका नही उपराठा,
आलोचिया आविया इम।
मानो कमध पोढिये मारै,
रोहड अणमारियै इम ॥२॥

बारहठ हुवै जाणीयौ बीजौ,
बोलिया सात्रव पलिग बीयै।
मारै भारमलोत न मारा,
दानावत जाणि न दियो ॥३॥

(७)

गीत मंडलै दूदै संसारचंदोत रो, प्रिथीराजजी कहै

चढै भीड बकडाळ ऊपाडियै चाचरै,
माडियै ढाल रिणताळ माथै।
हुकम सू ताहरै साथ मडळाहरा,
साकतिया तणा रथ वहै साथै ॥१॥

खळ जुता बगतरा नरा सझिया खरा,
त्रिजड प्रसणा तणा कध तोडै।
रात दिन सदा ही कमध तारै रहै,
जोगणी तणा पीठाण जोडै ॥२॥

विघन रा विसाऊ चद रा वीरवर,
खळा करणा डळा खाग खूदा।
रुधर धापा थकी केविया तणै रिण,
देवि दै तूझ आसीस दूदा ॥३॥

(८)

गीत सांदू रांमै रो महाराज प्रिथीराजजी कहै

गयौ तूं भला भला तू न गयौ
धिन-धिन तूं सादवा-धणी
जाडै-अणी माहेडो जाकळ
अणी करण पातळा अणी।

तैं लिय आहव राण त्रिजड हथ
ले लाघण सासण न लिया
सोहै ससत्र सालिया सात्रव
कठ सोहै न खालिया किया।

दळ आपरो नत्रीठो दीन्हो
घाये लीन्हा प्रसण घणा
आबाहरा न बीजा ओपम
तागावाळा नसा तणा।

चारण जाणै माय चारणा
अबै समै विच नथ-अनथ
धरमा-तणो न बैठो धरणै
रामो बैठो रंभ-रथ ॥

(९)

गीत राठोड़ सेखा सूजावत रो पृथीराजजी कहै

(गीत छोटो साणोर)

ग्रह न सकै ग्रहै उग्रहै ग्रहिया,
दाखं चद दुणियद दुवै।
सेखडा सामि सनाह सारिखौ,
हेक कन्है जो भीछ हुवै ॥१॥

अधड ग्रहै किम मुतन आपणौ,
कहै किरणपत सोम कथ।
एकाधीपत जिमौ ऊदावत
हेक हुवै जो खडग हथ ॥२॥

राह ग्रहै किम सोम कहै रवि,
मिळै असुर धड केम मुडै।
सुभट बिया ग्णिमाल सारिखौ,
जुडणहार एहवौ जूडै ॥३॥

ससिहर कहै सपेखै सूरिज,
अधड ग्रहण नित करै अनेक।
सूर कळहगुर सेखडा सारिखौ
आपा बिहू न जुडियो एक ॥४॥

(१०)

गीत राठोड़ कला रायमलोत रो पृथ्वीराज कहै

वढ चढ बोलियो पतसाह वदीतो, मंडोवर रख माण मलीतो।
जिण जमवार लगे जस जीतो, कलो भलो रजपूत कहीतो ॥१॥

पूळिया दळ पारभ पतसाहै, सिंघ नरेसर बीडो माहै।
बकिया वयण तिके निरवाहै, गढ समियाण कलो पडिगाहे ॥२॥

थट गागरट तलहटी थाणो, राव अग्राज करै नीसाणो।
करडा वयण कहै कलियाणो, सिर पडियै आपिसि समियाणो ॥३॥

तोडिस मछर वधै तियाळै, वेध पड्यो घर खेध विचाळै।
उदो राव दुरग ऊदाळै, रायमलोत दुरग रखवाळै ॥४॥

सूजाहरो डाखिया साबळ, छावो विढै अणखला नियछळि।
दीठो काळ रोहियां अरिदळ, चढिया गढै जूजुवा चळि चळि ॥५॥

भारतसीह जिसा भूपाळा, माचि कळह गढ ऊपरमाळा ।
रे कहता आयो रवताळा, कलियो रह्यौ मुड़ै किरमाळा ।।६।।
जिम रावळ दूदो जैसाणै, सातळ सोम मुआ समियाणै ।
निहसि राव चूडो नागाणै, कीधो मरण तिमो कन्नियाणै ।।७।।
जुडि धड कान्ह मुओ जाळधर, थाट विडारि हमू रणथभर ।
अगति लाज अणखला ऊपरि, कलियो जूझि मुओ गज केहरि ।।८।।
नरसिघ मणियड प्रोळ निरोहै, रहियो भाण मडोवर रोहै ।
लुद्रवै भोज मुओ वढि लोहै, सिर समियाण कलो भ्रित सोहै ।।९।।
पावागढ जूझार पताई, वळि जैमल चीत्रोड सवाई ।
लाखावड सिर माड लडाई, वाघहरो रहियो वरदाई ।।१०।।
हाथीसी हरभाण हथाळो, कुभ गागरण माझी कालो ।
आबू मजन मुओ अडसालो, समियण तेम कलो सपखाळो ।।११।।
अचळ तिलोकसिंघ रण आगै, जुडि गागरण मुआ छळि आगै ।
लाज तिका भुज अबरि लागै, खेड नरेसर विढियो खागै ।।१२।।
वढि घा भोज मुओ बीकाणै, पाटण अरिजण जेण प्रमाणै ।
दरसलपुर खेमाळ वखाणै, साको तेम कलै समियाणै ।।१३।।
निहचल वात कलो निरवाहै, चावो रावा बोल चढाहै ।
रवि ससिहर लगि नाम रहावै, इद छभा विच बैठो आवै ।।१४।।

(११)

गीत सरखांन रो प्रिथीराजजी कहै

सिर झूर हुवो चढि खागै सेरा,
सासि प्रामिगो ज्योति सगाथ ।
आदम गयो वूणतो उतबग
हूरा गई मसळती हाथ ।।१।।
कण कण कमळ कियो अबदूका
पना खुदाई तो हस पिण ।
तसवी विण त्रैनयण गयो तिण
वेगम रथ गा खसम विण ।।२।।
कमळ पठाण कियो चढि कुटके
मिळि ज्योति रहमाण मझारि
गवरा-वर सिणगार पखो गो
निवर गई वर चगा नारि ।।३।।

(१२)

मेवाड़ रा राणाम्रां रो
गीत

(यह गीत पृथ्वीराज कृत कहा जाता है)

वाजइ नोबतै नीसाण गाजइ खभूठाणै गजराज ।
वाजिराज लीयइ लाही साज मइ विराज ।।
राइजादउ महाराज साहिया दउ सिरताज ।
राजा राउ सेवइ राजइ रूप जग राज ।।१।।

पाहडा किमाड सउग्रउ नाउ वइरवइ पछाड ।
दाळिद विभाडणउ मेवाड मइ दुवाह ।।
पाट रखपाळ थाट सोहइ पातिमाह ।
पातिसाहा साल हिन्दूपति पातिसाह ।।२।।

अरिसी लखमसीह भीमसीह अजइसीह ।
जैसीह खूमाण बापइ जम जोडी जूप ।।
मोकल हमीर खेतइ लाखइ कूभइ मोटमन ।
रायामाल सागइ ऊदइ प्रतापसी रूप ।।३।।

मेवाडा चीत्रोडा मइणि आहडा अभगनाथ ।
नागद्रह कइलपुरा सीसोदा नमोहि ।।
राइजादउ गुहिलोत रावत राउळा राणा ।
सेलगुरा रायगुरा चाडगुरा सोहि ।।४।।

भेखधारी ततकारी वइकारी नगारी भारी ।
तालधारी रागधारी करइ सुर तार ।।
भट-भाखा देववाणी चारण चतुर वाणी ।
दूसरा हमीर तणउ सेवइ दरबार ।।५।।

एजदी गुलाब गेडा अबर जबाधि अग ।
पूजा घणसार मृगमद मइ प्रमाण ।।
केसर चदण करा मलयतर केतकी रा ।
अभिनवउ पृथ्वीराज सेवंता आघ्राण ।।६।।

दूवा कोडी लाख दीजइ गाम हाथी दाम दीजइ ।
दान वाजा साज दीजइ, मेवाडउ-मसद ।।
जगतउ करणि जायउ अमरेस पाट आयउ ।
सूर धीर मौजा इद्र साहण समद ।।७।।

(१३)

गीत रायसिंघ रो राठोड़ प्रिथीराज कहै

रमतो मन माथै बिया रायसिंघ महलै चापतो मरम ।
दीसै तूझ द्वारि ऋण दूजा, है गै गळ-थी तो हुकम ॥१॥

साह तणो सहतोइ अणसहतो, दुवै न लोपाईयै दुवो ।
ताइ ताहरइ दरबारि कल्याणतण, हटका सहे निरोस हुवो ॥२॥

अमहलि महळि अवरि सिरि अवरा, रायहर व्यापक थको रहै ।
सोइज आज हुकम सुरताणी, सिंघद्वारि गळहथा सहै ॥३॥

अकबर दिसि आदेस अकबरी अनि राउ घणी कीयै अजकै ।
बळ तजि होठ चाटतो वळियो धूहडि धरि मारियो धकै ॥४॥

(१४)

गीत रामसिंघ कल्याणसिघोत रो राठोड़ प्रिथीराजजी कहै

सकति सो सिवा श्रोण सिव सीस कजि सवहै,
समळ पळ काजि प्रब एह सूधो ।
खाति करी राम अतरीक रथ खेडिया,
तै रभ चे रथे रवि माग रूधो ॥१॥

चौसठी चोळ कजि कमळ कजि विष चरण,
पायल कज ग्रीधणी पख करि पूर ।
आहचै राम वर परिणवा आवत्या,
सुरत्रिया रूधियो पथ रथ सूर ॥२॥

रगत कजि चाउडा रुड ची माळ रुद्र,
मास भख विहग वन छाह वळिया ।
निहगपुर रूधियो माग लाभै नही,
भाण रथ रभ रथ आइ भिळिया ॥३॥

रगत कज योगिणी ईस उतबग रचै,
खगा पळ पूरवै खळ दळै खाग ।
सुतन कलियाण वर रभि पोहतौ सरग,
मीत मुगतौ हुओ प्रामियो माग ॥४॥

पाठान्तर—

१. है वै गलथीयतो

(१५)

गीत

तो तणा सूर सेवगा तणी त्री, रिण कजि सनाहिया रहै।
कामे कत ऊजळै कीए, लोह काटि सावळा वहै ॥१॥
सुहड तुहारा सिह समोभ्रम, मिळि सग्राम महळि मिळिया।
पदमणि वदन सपेखै रवि परि. काट सिलह घट काजळिया ॥२॥
जोध तुहारा जोध कळोधर, सदा सनाहिया कळह सुख।
वर प्रामिया इसा वर नारी मैला नन ऊजळा मुख ॥३॥

(१६)

गीत प्रिथीराज राठोड़ कहै (मेघा मोहिलरो)

मिटियो रिण दळै दूसरा मेघा,
कळि ऊपनी-नीपनी काहि।
सूरजमाल कटारी समहर,
मीर तणै लाई उर माहि ॥१॥
मोहिल राण बेलियै मिटतै,
गह दाखै काढी अवगाढ।
गळक तणै पिजर तू मेल्ही,
जगदीठी वहती जमदाढ ॥२॥
हिंदू हेक-हेक राव हैवै,
घणो वाखाणै सुपह घगा।
पलटै साथ पछै प्रतिमाळी,
तू वाहै नेतसी-तणा ॥३॥
अणिया मुहै नेतसी-अगोभ्रम,
साहण सभेदग साहसधरि।
बळवत सूर भाजियौ बिजडी,
सगळौ तावी तणो सरीर ॥४॥

(१७)

गीत मोटै मोहिल रो प्रिथीराजजी कहै

सकर चढि वृषभ, गुरुड सारगधर,
खडिया रण रथ छोहि खरै।
दिणिअर कहै अचभो देखो.
मोटो छळ-पारको मरै ॥१॥

त्रिनयण तेख उखेखत त्रीकम,
विहग खडो हिव करो म वार ।
मरै पराई आरति मोहिल,
अरक कहै देखो एक वार ।।२।।

ईश किसन सूरज अचरिजिया,
जुडिवा कौतिग देखि जुवो ।
मोटा सामि आगळी मोटो
मोटै प्रब आफळै मुवो ।।३।।

हरि हर पतग वीभम रहिया,
घटि घटि विढतो दीठ घणो ।
आफळि मुवो राम साह आगै,
तढमल डूगरसीह तणो ।।४।।

(१८)

गीत वैरसल प्रीथीराजोत नूं प्रीथीराज कल्याणमलोत कहै

आलोच करै जोईयो उदैसिघ, गोल वैर लाभंलाभ गिण ।
हाथ चढै न देवडा हीरा, वैरागर घाइया विण ।।१।।

विणज वैर नह दोम वैहरता, कहै राव ए मत्र कर ।
परै इया चहवाण पीथउत, नह जीरव लजी नयर ।।२।।

जैतहरा घायो इम जाँणै, उदैसिघ निज सोभ उर ।
सपजै रतन करग सूराउत, पिड नाहरो करत न पूर ।।३।।

(१९)

राम मानमलोत रो गीत प्रिथीराजजी कहै

पावक काइ जहर वहै काइ परपच,
कळह न आवै सिलह करि ।
दोहरा तो जिम मान दुजडा-हथ,
आद कहै वरहीण अरि ।।१।।

मगळ जहर चूक करि मारै,
रूकै नह दाखवै रह ।
मगिया नही न्याय है माना,
सबळै तै निबळा असह ।।२।।

पाठातर—

१ नाभम लाभ । १ नट जीर वैं ।

आगि दहै विस चूकि आगिमै,
पिड चढि नह दाखै प्रभति ।
सकजै भारहमाल-समोभ्रम,
सदा न वछिया अकज सति ।।३।।

केवी अकज सकज गिण कमवज,
कळह न आया सिलह करि ।
जागविये नड मान जादवै,
भरियो लोहै नीद भरि ।।४।।

(२०)

गीत खंगार जैमलोत नूं, प्रिथीराजजी कहै

अमगळि वर वर कुशळि खगार आणिया,
घणी महळ करि मगळ घणो ।
माथै दाघ वहै मालाउनि तिलक तणो मिस तूझ तणो ।।१।।

राव राखिया तणी कूरमराव, समहरि घरि करती सिणगार ।
राम उपम तिलक रिख ग्रहि, खत्रीस ताहरो आक खगार ।।२।।

राजाहरा रिण आगणि राजा, थोमै अरि दळ चोत थिर ।
राइहरै मानै राईजादी, सारै माग स दाघ सिर । ३।।

(२१)

गीत कछवाहै अचलदास बलभदासोत नूं प्रिथीराजजी कहै

भव स जाप थाका भणि भणि, कर साहियै दोयण वादी किणि ।
अचळ जहर ऊभा रण-अगणि, चोटी भंग थई चदाणणि ।।१।।

असुर पारसी मत्र उचारैं, अचळा काळकोट आधारै ।
वामा वेणी सरप वहारै, प्रिसण गारडू [म] कर न पसारै ।।२।।

रवद वाच वचने लागा रसि, लागू आथि जाई वादी लसि ।
विसमै प्रिथम हरै कीधा वसि, कुमरि चमरि चाल नवा कसि ।।३।।

लोह लहर लागी के गालसि विस कूरम गै कीधा घोर वसि ।
हरमा सरिस न जाई मिळियै हसि, दसत म पूगीधर मूंकै डसि ।।४।।

(२२)

गीत फहीम पूंजावत रो प्रिथीराजजी कहै

विढण दीह विढता फहीम ऊपरै ग्रह ग्रही,
जोवै जग पतग ए अचभ जुवो ।
है तो हिंदू जनम अछर कहै वरसि हू,
हूर कहै दूर हू मिया हुवो ।।१।।

अरक कहै पूजउत तणो रण जोय अरण,
वाहतो त्रिजड घड कमळ वढिया ।
कमध चै समध कजि रभ वीरवा करै,
परी कहै' .. " हुई खत पढिया ।।२।।

रवद घड फहीम धड रहचतै,
हसै रवि परी अपछर ग्रहै हुवै पाळो ।
चवै चपावती खुदाई पै न्याव चली,
चवै चदवदनि हरि कन्है चालो ।।३।।

कहर गुर पोहर सिर विना विढियो कमध,
कर वदै सूर रथि वलण कीधी ।
वह गई सुर असुर नारि दरिगह वडै,
दईव रणमलहरा दुवै दीन्ही ।।४।।

(२३)

गीत मांडणोत सारंग दे रो प्रथीराजजी कहै

सुरगुर एम कहै सारगदे, खतिया पारख एह खत ।
जाइ पित सुता मात जावती, सूता आवै सेज सत ।।१।।

कहै एम रिणमाल कळोधर, रात ज आवै करण रिण ।
जननी तणो चूक जाणावै, जाहि अदीठा पिसण जण ।।२।।

भारमलोत जीहा इम भाखै, रजवट राखण रेस रिम ।
रत पित पीठ मात जा रमती, कळह सदीहा करै किम ।।३।।

माया चहर तणी माडेचा, पखा सपूरत एह प्रमाण ।
मारियो अखो मान मागता, ऊजळै दीह करै आराण ।।४।।

(२४)

गीत रामसिंघ कल्याणमलोत नूं पिरथीराजजी रो कहियो

एक फरसधर राम सुतन जमदगन नरेसर ।
एक दसरथ सुत सुतो सारगधनखवर ।
इक वसदै सुत सम सुतो हलधरण महाबल ।
एक कलावत राम खडगधारी खाडण खळ ।
एक एक हुआ एक एक जुग क्रत त्रेता द्वापर कळि ।
हुवो न हुइ है पाचमो चार राम रव चक्कतळ ।।१।।

(२५)

गीत भोपत चहवाण रो प्रथीराजजी कहै

भव सादरि छोहि बखाणै भोपति. बेली गया पडती बाथ ।
काढी हुती हाथ कटारी, हूतो कना कटारी हाथ ।।१।।

भारथ तणै जु कीधो भारथ, करै एक बीजो कमण ।
दुजड काढि वाहतो न दीठो, पडियो हिज दीठो प्रिसण ।।२।।

पोह जोगिणिपुर धर सैभरि पोह, लोहाळी प्रघटतै लोह ।
तै द्रोहियो प्रिसण अणद्रोहा, द्रोहै जिही छछोहै द्रोह ।।३।।

दाणव तणी यू प्रिथम दूसरा, तै आहचै कियो ऊगाड ।
ग्रह काढी वाही वडै ग्रहि, दाढा थकै विचै जमदाढ ।।४।।

(२६)

गीत राठोड कले रायमलोत रो प्रिथीराज कहै

आप दईव कोपियै अवर, अनि ऊतारै उतरि उतरि ।
आतम चाड चढै किण अवरि, गंगहरा विण तीर गिरवरि ।।१।।

रायमलोत रोद रीसांणै, थुडिया कटक लूंबियै थाणै ।
रूकां मुंहै विढतै राणै, सिरगै चल चढियो समियाणै ।।२।।

नमे न निरभय जगत नडतै. खेडेचै खत माग खडनै ।
घायै अरदळ सेन घडतै, चढियो गिरवर नीर चढतै ।।३।।

नव चोकिये महळ नीसाणी, राखी राख करै निय राणी ।
कलो मुवो कथ अकथ कहाणी, पव्वै सीस चढावै पाणी ।।४।।

(२७)

गीत रायसिंघजी रो पिरथीराजजी कहै

एहो पीथळो वीराण आखाडै, लोहै वीर लडेवा ।
रिण आगण रावा रोहडियो कमधज मागै केवा ।।१।।

हाका डाक जमातो हूकळ, धड खूदतो ध्यावै ।
लागो हस भगोती लेवा, आडो आडो आवै ।।२।।

मरि चदरणि चवदस ममडा, सीहा टोळ स ऊभो ।
पडिया भड तळफै पावा तळ, अखो बहुस ऊभो ।।३।।

खेलि सारप आळा खेलै, जमा कत जमदूतो ।
जोगणपीठ माडियो जागर, करि देवळ अवधूतो ।।४।।

रिण वाडी घू साळ राठोडै, धरती ऊपर धाया ।
सिंधुर भाटी डार सहेता, एकल मारै आया ।।५।।

(२८)

गीत मंडलै अचलदास नूं प्रथीराजजी रो कहियो

पूख दिस काम आकरो पडियो, तो गिण नाम प्रमाण तिण ।
चाल्या कटक साभळै अचळा, राठोडा झिल दीध रिण ।।१।।

स्रवणा इम साभळ नव-सँहसा, ऊला भागा कहै अछै ।
वाता कळह तणी वीदावत, पाणी दै पुछिहा पछै ।।२।।

अणभग हुतो ताहरो आझो, दडवडिया सह बिया दळ ।
पछै कळह वत मडळै पूछी, अजळ जळ पहली अचळ ।।३।।

(२९)

गीत दोलतखांन नारायणदासोत नू प्रथीराजजी कहै

दामणि करि ग्रहै सासरै दोलति, अबळा तणै न रहियो ओळै ।
धावळियाळि तणै छळि धायो, परिहरि पहरणहार पटोळै ।।१।।

सासरिवाडि नारीयण-सभ्रम, साही चाळ न खूणो साहै ।
लोवडियाळि तणै रसलीणो, चूनडियाळ न चाहै ।।२।।

रेवत पूठी राव राठवड, आछटि छेह थयो असवारी ।
लोडाउआतणै घसि लागो, काज प्रजा तजि राजकुवारी ।।३।।

(३०)

गीत दलपत रायसिंघोत नूं प्रथीराजजी कहै

दला दियती ओळभा जेतमाल दिसा, निस अरघ जागवी थाट नमियो ।
साहिजादो तणै महिल नवसाँहसो, रासउत दोपहर तेण रमियो ।।१।।

रौदघड राव रावळ रमै आघ रत, भाग सौभागणी कमघ भीनो ।
मुगलण आगणै पेम रस माणवा, दलै दीहा भलो मोहत दीन्हो ।।२।।

हार मे वीर गज मीर खडत हुये, पहट मुज पाघरै खोत पाली ।
जवनणी तणी घड पूगडी जीव ले, होड गाहणा हसम छोड हाली ।।३।।

(३१)

गीत वेलियो रामसिंघ कल्याणसिंघोत नूं पिरथीराजजी कहै

सरणाई सरण वखाणै सबदी, मन जोगी जीहा अमर ।
रामा वदन वखाणै रामा, हाथ वखाणै वैर हर ।।१।।

रीसाणै सुरताणै राणै, रावै ही पावै न रखै ।
खगधर अवर खून सू खूनी, तीडाहरा ज तूझ पखै ।।२।।

तो विण कलियाणोत निभैतण, राखण धीरज मन रहसि ।
हेकण बिये न त्रभुवण होवै, वळि जुग चोथै पच बसि ।।३।।

मीठा करे जाणियो मीठो, कमधज धन्न ताहरा क्रत्त ।
बीकाहरा वेण विसतरियो, अ्रत भुवणा माहै अम्रत ।।४।।

नाता समध पखै अन नारी, सलखकळोघर कुसुम सर ।
सुणियो त्याह वछियो सपेखण, वेखीयो त्याह वाछियो वर ।।५।।

विढता ही नूं छछोहा वीरति, सहसा ही पालण सहल ।
हू भामी रामा भारी हथ, सत्रा न रहिया नाटसल ।।६।।

(३२)

गीत राणै प्रतापसिंघ रो प्रिथीराजजी रो कहियो

नर जेथ निमाणा, नीलजी नारी, अकबर गाहक अति अवट ।
आवै तिण हाटै ऊदावत, वेचै किम रजपूत वट ।।१।।

रोजायता तणै नवरोजै, जेथ मुसीजै जगत जण ।
चोहटै तिण आवै चीतोडो, पतो न खरचै खत्री पण ।।२।।

पडपँच दिढ बध लाज नको पथ, खोटो लाभ कुलाभ खरो ।
रज वेचवा न आयो राणो, हाटा हुरम हमीरहरो ।।३।।

पिड ग्रापरै दाख परियावट, रोहिण ग्राव तणै बळ राण ।
खत्र वेचियो जठै वड खत्रिया, खत्र राखियो जठै खूमाण ।।४।।

जासी हाट वात रहसी जग, ग्रकबर ठग जासी एकार ।
रेह राखियो खत्री ध्रम राणै, सगळोई वरतै ससार ।।५।।

(३३)

गीत जगमाल उदैसिघोत सिसोदियै रो पिरथीराजजी कहै

वळावळी गोळा वहै वीर हक वापरी, चाच खग वाहतो काढतो चाल ।
देवडा तणी घड माहि सीसोदियो, माल्हियो मानसर हस जगमाल ।।१।।

चाच तरवारिया रतन सिर चुगतो, कमळि पग दीयनो धडा काही ।
सुचलि चालियो उदैसिघ-समोभ्रम, माल्हियो ग्राबुबा सेन माही ।।२।।

सार जळबोळ दळ बेल सीरोहियो, ब्रिरदपति वीटियो घणै बाणै ।
पिसण घड रहचिघड चाँपतो पोयणो, जगो पाबासरो हस जाणै ।।३।।

हस गति हस जगमाल हालै सग्रहि, धारि ग्रावारि ले लहरि धायो ।
सारि ग्ररि मारि तणो लोये सघण, पार सागाहरै सरग पायो ।।४।।

(३४)

गीत राव रायसिघ देवडै रो प्रिथीराज कहै

कोळी कर भाग तिजारो कमधज, गुळ खूमाणो गाळ वियो ।
कू डै कयर मुई किरमाळा कहर कसू भो सोध कियो ।।१।।

सघ ग्रोखदी छोतरा रायसिघ, घायै जगड मिठाई घात ।
भेळा करै मुसटिया भारथ, भिळतै राय ग्रनेरी भात ।।२।।

पीध चढाय करै रिण चापर, किरमाळै ग्राहूत कियो ।
दळा सहत दळनाह देवडै, जहर तिन्है नर जीरवियो ।।३।।

(३५)

गीत पुवार सादूल मालावत नूं पिरथीराजजी कहै

कर लेखण कुत करे पिड कागद, मसि कर मास रुहिर कळिमूल ।
मिळ मेड़तै मडोवर माथै, सबळो खत कियो सादूळ ।।१।।

कलम छडाळ समर पाठो कर, धण पळ मसि मेळवि घण घाव ।
तेरह साखा सिरै तेपनै, समै समत कियो माल-सुजाव ।।२।।

लेखण घण सावळां लिखंते, अंग रस मसि दुत अर ।
धार पुरे सिर लिया धूहडां, कळि नामी राखियो कर ॥३॥
केहवा खत कर मयंद कळोवर, हुआ जुतैं लीधा सति हंस ।
वयण वयण खट वरण वाचसै, वाचा वसै छत्रीस-वंस ॥४॥

(३६)

गीत जोध सोलंकी रो पिरथीराजजी कहै

खाग झट विकट खेताहरो खेलतो, झाट झड़ि ओझड़ां वाहतो झेलतो ।
विढंतो वाढतो वीछतो वेलतो, थाट अवियाट दरबार गो ठेलतो ॥१॥
घरहरै पाखरां रच त्रिविधी घड़ा, सांझ सुज आविया नीमजै मूजड़ा ।
खांनरा भीच वरबार ऊभा खड़ा, जाग रे जाग जगमाल भड़ जोवड़ा ॥२॥
जागियो जोध झूझार जुड़िवा सझै, अमर छळि खाग गैणाग लग ऊछजै ।
भींछ रांणै तणो नगो विमुहो भजै, तळछियो सिंघळी जेम माया तजै ॥३॥
ध्रू धरणि पड़ै धड़ विढै धारूजळै, सोनगिर राव सूं सत्र करै सांखलै ।
दूठ भड़ रासउत दाख देतो दळै, छिलै कयावर मरण गयो दुनी छळै ॥४॥

(३७)

गीत उदै मेहावत नूं पिरथीराजजी कहै

ऊनि पडियो, अजन न पडियो कानै, समी भोम सत्र गयो संघार ।
ऊदै अलंद थकै आपाणो, मारणहार राखियो मार ॥१॥
पंक-सुत कापण हार तणो पिक, रवसुत जो कानै रहत ।
तो मेहाउत सारिखी मीढति, सीधै जिण वींधियो सत ॥२॥
पडि राठोड़ वदै जगि पोरसि-तनि भेदियै छेदियो तन ।
ऊदै वडे बहादर ऊरै मत रै ही रहियै करन……… … ॥३॥

(३८)

गीत रतनसी रो पिरथीराजजी कहै

अपछर इम कहै सलखहर ओपम, किसी विलागो कळह कथ ।
विपहर हुआ सुहरे बांधै, रता पधारौ वळै रथ ॥१॥
वारांगना हाथै वरमाळा, भाळै ऊभी भाळयळ ।
विढण कियौ देपाळ वँसोधर, विघन वधारण हवै वळ ॥२॥
जगहथ ऊत जुड़िसि जमवारो, कदै न थाकै तूझ कर ।
अछरि पुहण अंतरीख ऊभियां, आवौ अवधारै अमर ॥३॥
पोह पडिगाहि प्रसण दळ पालै, पड़ियालग पूजवै पतो ।
उदक समै पैठौ आखाड़ै, रथ बैठौ आथमण रतो ॥४॥

(३९)

गीत प्रिथीराज कल्याणमलौत कहै

पर भविया पूत लियाळि परणतै, गोवूळक मचती गहणि ।
तै आणे सु रतन वळातण, तै तिह फेरे राब तिणि ।।१।।

दीन्हौ रण वीद मग दियतै, रामा तै छडियै रथ ।
वामै अगि आणै वाढाळी, हथळेवौ दाहिणै हथ ।।२।।

प्रतमाळी पतिव्रता सरसि पिडि, घर फिरियै अरिहर सघरि ।
फिरतै कमध अफिर घड फेरे, फेरै चौथे चडै फिरि ।।३।।

राव राठौड तणै रस लूधी, सझ कलहि पामियौ सुख ।
अरिग्रहवन भणती अणियाळी, मिळै, तबोळ स रुहिर मुख ।।४।।

परणे पाधारतै परमपुरि षित दायजो सबळ जस खाटि ।
कुल उजवाळे राम कटारी की ऊजळी पडतै काट ।।५।।

(४०)

गीत राणै प्रताप रो प्रिथीराज कहै

ऊगा दन समै करै आखाडा,
चौरग भुवन हसत अणचूक ।
रोदा तणा रगत सू राणा,
रगियो रहै तुहाळो रूक ।।१।।

मोकळहरा महा जुध मचतै,
वचता मार नत्रीठ वहै ।
पातळ ! तूझ तणो पडियालग,
रुधिर च रचियो सदा रहै ।।२।।

खित कारणै करै नित खळवट,
खेटै कटक तणा खुरसाण ।
प्रसणा सोग अहोनिस पातळ,
खग सावरत रहै खूमाण ।।३।।

ऊगा सूर समो ऊदावत,
वढै वसू छळ बोल विरोळ ।
चळुअळ अरी तणै चीतोडा,
चद्रप्रहास रहै नित चोळ ।।४।।

(१)

१ आरीयण = १. आर्यजन । हिन्दू । २ शत्रुगण, अरिगण । सुहड = सुभट । आवटियो = जल गया ।

२. चामरियाळ = मुसलमान । घडा = सेना । वहण्ण = लकडियो के टुकडे ।

३. खरहड = घोडा । खू दालम = मुसलमान । प्रजळियो = जल गया ।

४ वैसदर = अग्नि । ऊजाणो = उज्वल हुआ । सूरहरो = सूरसिह का वशज ।

(२)

१ जिसा = जैसे। ध्रम = धर्म । कमन = कर्मनवज = नही ही । आदरै = प्रारभ करै।

२ मालावत = माला का पुत्र । खत = क्षत । की जो = यदि क्या । पेखि = देख कर ।

३ दोसीयै = शत्रु । अभिनमा देवा = देवा का पुत्र । ऊना बसतर = ऊनी वस्त्र ।

४ कमेवो = चलता है । नवज = नही । जेसळगिर = जैसलमेर ।

(३)

१ खेडपत = राठौड । भागोड = नाश । कुळवट = कुलमर्यादा । सनीमा = मित्र । अडसतण = अडसी का पुत्र ।

२ वट = गर्व । थाटै = समूह मे । अडप = हर । खूमाण = खुमान के वशज । जोध = जोरावर । वीर । जोगिंद = योगीन्द्र ।

३. जारी जहर = जहर को पचाने वाला । गयण = आकाश । खटतीसकुळ = छबीसा, क्षत्रिय कुल । ढाकिया = शरण दी । पालन किया । ओलै = शरण मे ।

(४)

१ रूक – तलवार । लू बिया = आक्रमण किया, झपट पडे । रिम = शत्रु । किस सभरी = कैसे याद आगई (नीद मे)

२ पौढियै = सोते हुए । पाइ = भाटी (एक शाखा) । भारथ = महा भारत । भाराथ = युद्ध । वाहतै = प्रहार करते हुए ।

३ तन डोलिया पछै = प्राणान्त होने के बाद । डूंगर तण = डूगरसिह का पुत्र । सारहली = तलवार । चत्रवार = चार बार । साचवी = सभाली ।

(५)

१ बाखाण = प्रशसा । सत्र = शत्रु । यज्ञ । धमळ = युद्ध, मगलगान । तीख = श्रेष्ठता । सहोवर = भाई । सम्रोधा = योद्धा । जानिया = बाराती । माड है = कन्यापक्ष का घर, मडप । कमध = राठौड ।

२. विचाळै = बीच मे । रौद्रणी = रौद्र रूप वाली । राळियै = डालकर, डालती हुई ।

३ वींद = दूल्हा । मुरधर = मारवाड । सीधवै नाद = युद्ध वाद्य के बजने के साथ सतर ची = शत्रु की । नवलगत = नई रीति से ।

४. अणीबाध = सेना समूह । त्रबक = बलवान । पूखणै = पूजा करती हैं । पखणी = गिद्धणी । लाडी = दुलहिन ।

५ पळचर = मासभक्षी पक्षी । खूटा = समाप्त हो गये । जेसाहरौ = जेसा का वशज । जोत मे पोढियो = ज्योति मे मिल गया छिहडा अवतरण = जन्म-रूपी गठ बधन ।

(६)

१ बीजो = दूसरा । पिसुण = शत्रु । अणमारियै = बिना मारे हुए । दुलभ = दुर्लभ ।

२. उपराठा = (१) विरुद्ध । (२) पीठ फिराया हुआ । आलोचिया = समाधान करके ।

३. सात्रव = शत्रु । भारमलोत = भारमल का पुत्र । दानावत = दाना का पुत्र ।

(७)

१. भीड = सहायतार्थ । वकडाळ = विकराल । चाचरै = युद्ध स्थल मे । रिणतालळ = भयानक युद्ध । मडळाहरा = मडला का वशज । साकतियाँ = युद्ध देविया ।

२ खळ = शत्रु । त्रिजड = तलवार । प्रसणा = शत्रुओ के । पीठाण = (१) युद्ध (२) युद्ध-भूमि ।

३ बगतरा = बख्तर । खळां = शत्रुओ को । विघन = युद्ध । विसाऊ = (१) बसाने वाला । (२) प्रारम्भ करने वाला । उळा = टुकडे । खाग = तलवार । केविया = शत्रुओ के ।

(८)

१. जाडै अणी = विशाल सेना मे । त्रिजडहथ = खडगधारी । अणी = (१) सेना । आह्व = युद्ध ।

२. खालिया = घाव । ओपम = उपमा । रभ-रथ = अप्सरा के रथ से (स्वर्ग गया) ।

३. लाघण = लछन, अनशन, धरना । सासण = चारणो को दान में दी जाने वाली भूमि ।

४. सालिया = नाश किया । सात्रव = शत्रुओ को । नत्रीठौ = भयकर । प्रसण = शत्रु ।

५ ओपम = तुलना । नसा = गर्व । तागावाळा = (१) ब्राह्मण
नथ ग्रनथ = नही जीते जाने वालो को जीतने वाला । रभ रथ बैठा वीरगति को प्राप्त हो गया ।

(६)

१ उग्रहै = छोड देता है । ग्रहिया = ग्रहण लगने के बाद । दुणियद = सूर्य । दुवै = दोनो । सनाह = कवच । भीछ = वीर ।

२. किरणपात = सूर्य । सोम = चद्र ।

३. राह = राहु । केम = क्यो । जुडणहार = युद्ध करने वाला । ग्रेहवो = ऐसा ।

४ सपेखै = देखे । कळह = युद्ध । ग्रघड = राहु । कळहगुर = युद्ध प्रवीण ।

(१०)

१. वढ चढ वोळियो = हठपूर्वक बोला । जिण = जिसने । जमवार लगे = जीवन भर ।

२ पुळिया = भाग गये । पारभ = ग्रपरिमित । वीडो साहै = वीडा उठाता है । पडिगाहै = रक्षा करता है ।

३ थट गागरट = बहुत बडी सेना । ग्रग्राज = गर्जना । रीसाणा = क्रोधपूर्वक । समियाणो = सिवाना नगर ।

४ मछर = गर्व । तियाळै = तेरा । वेध = शत्रुता । खेव = युद्ध । दुरग = दुर्ग । उदाळै = नाश करता है ।

५ सूजाहरो = राव सूजा का वशज । डॉखिया = प्रहार करते हुये । छावो = प्रगट, पुत्र । विढै = युद्ध करता है । ग्रणखला = सिवाने का किला । रोहियाँ = रोके हुये । जूजुग्रा = ग्रलग ग्रलग ।

६ कळह = युद्ध । ऊपरमाळा = निकटस्थ गुप्त मार्ग से । मुहै किरमाळा = तलवारो के प्रहारो से ।

७ जैसाणै = जैसलमेर मे । निहसि = वीरगति को प्राप्त हुग्रा । नागाणै = नागौर मे । कलियाणै = कल्ला ने ।

८. जुडि घड = युद्ध करके । कान्ह = कान्हड दे । ग्रगति = इस प्रकार, वास्तव मे ।

९ निरोहै = (१) ग्रवरोध मे । (२) घेरे मे । रहियो = वीरगति को पाया । वढि लोहै = शस्त्रो से कट करके ।

१० पताई = पावागढ (गुजरात) के रावल प्रतापसिंह का उपनाम । वरदाई = विरुद प्राप्त । जैमल = राठौड वीर जयमल ।

११. हथाळी = (१) दृढ हाथो वाला (२) शीघ्र गति से शस्त्र चलाने वाला । कुभ = महाराणा कुभ । मांझी = मुख्य । कालो = मतवाला । ग्रडसालो = वीर । सपखाळो = जबरदस्त वीर ।

१२ जुडि = भिड करके । छळि जागै = युद्ध छिडने पर । विढियो खागै = दोनो हाथो मे तलवारो से लडा । अचल तिलोकसिघ = गागरोन के प्रसिद्ध वीर अचलदास खीची और तिलोकसी ।

१३ वढि घा = प्रहारो से कट कर के । बीकाणै = बीकानेर मे । जेण प्रमाणै = उसी प्रकार । खेमाळ = खेमराज । साको = (१) आक्रमण । (२) युद्ध ।

१४ निहचल वात = निश्चल प्रतिज्ञा । निरवाहै = निर्वाह करता है । इद छभा = इद की सभा । बैठो आवै = विमान मे बैठ कर आता है ।

(११)

१ भूर = चूरा । चढि खागै = तलवारो से । सेरा = ध्यान । सासि = स्वास । प्रामियो = प्राप्त किया । सगाथ = साथ । उतबग = सिर । हूरा = अप्सराएँ ।

२ वेगम = हूरे । खसम = पति । तसवी = माळा । (रुडमाला) त्रैनयण = शिव ।

३ कमळ = सिर । निवर = बिना वर के (क्वारी) । चगा = सुदर । वेगम रथ = हूरो का रथ । रहमाण = रहमान । गवरा-वर = शिव, महादेव । पखो = रहित । गो = गया ।

(१२)

१ खभूठाण = हाथियो को बाधने का स्थान । वाजिराज = घोडे । राइजादउ = राजपुत्र । स्रेवइ = सेवा करते है ।

२ वइरवइ = शत्रुओ को बैर के बदले मे । विभाडणउ = नाश करने वाला । पाट = १ सिहासन, गद्दी । २ राज्य । थाट = सेना । साल = शल्य । काटा । हिंदूपति पातिसाह = मेवाड के महाराणाओ का विरुद ।

३ जस जोडी = यशस्वी । जूप = समूह । मोटमन = उदार ।

४ मेवाडा‥ ‥‥‥ सीसोदा = मेवाड के महाराणाओ के विरुद । सेलगुरा = १ भाला चलाने वालो मे श्रेष्ठ । २ शस्त्र धारियो मे श्रेष्ठ । रायगुरा = राजाओ मे श्रेष्ठ । वाडगुरा = रक्षा करने वालो मे श्रेष्ठ ।

५ भेखधारी = साधु सन्यासी । वइकारी = १ बाजा बजाने वाला । २ नर्तक । ततकारी = वीणा बजाने वाला । नगारी = नगाडा बजाने वाला । भट-भाखा = १ भाटो की भाषा । २ वीर भाषा । ३ लोक भाषा । देववाणी = सस्कृत भाषा ।

६ एजदी = एक पुष्प । गेंडा = एक पुष्प, गैंदा । जबाधि = एक सुगधित द्रव्य । घणसार = कपूर । मृगमद = कस्तूरी । मलयतर = चदन वृक्ष । अभिनवउ = वशज । आघ्राण = सुगधि ।

७ दूवा = १ काव्य । २ आज्ञा । ३ आशिष । दाम = धन । साज = वाद्य सामग्री । मेवाडउ मसद = मेवाड का अधिपति । जायउ = पुत्र । मौजा = मौज, आनद । मौजा-इद्र = इन्द्रके समान वैभव ।

(१३)

१ बिया = दूसरा । मनमाथै = इच्छानुसार, मन्मथ । चापतो = अधिकार करता हुआ । क्रण = कर्ण । गळथी = बँधे हुये । है = घोडा । गै = हाथी । (पाठान्तर, हैवै – बादशाह)

२ साह = बादशाह । अणसहतो = सहन नही करता । दुवै = दूसरा । लोगाईयै = उलघन करता है । दुवो = हुक्म । हटका = (१) चुभने वाली बाते । (२) भय । निरोस = शात, रोषरहित ।

३. मर्हाळि = १ महल मे । २ रानी । गळहथा = वचन ।

४ अजकै = ऊधम, बेचैन । अनि = दूसरा । होठ चाटनो = पश्चाताप करता हुआ । वळियो = लौटा । धकै = आगे । अकवर दिसि = अकबर की ओर से । आदेस = आज्ञा ।

(१४)

१ प्रव = पर्व । समळ = चील पक्षी । खाति = उत्साह । पळ = मास । मूधो = श्रेष्ठ । अतरीक = अतरिक्ष । खेडिया = चलाए । रूधो = रोका ।

२ चोळ = रक्त । आहुचै = (१) विनाश किया । २. युद्ध किया । ग्रीधणी = गिद्धिनी । चौमठी = चौसठ योगनियाँ । मुरत्रिया = देवागनाओ ने । रूधियो = रोक दिया ।

३. भ्रख = भक्ष । माग = मार्ग । भाण = सूर्य । निहगपुर = स्वर्ग । लाभै = मिलता है ।

४ पोहतौ = पहुँचा । सरग = स्वर्ग । मुगतौ = मुक्त । प्रामियो = प्राप्त किया । ईस = महादेव । उतबग = मस्तक । वर रभि = अप्सरा का वरण करके ।

(१५)

१ सनाहिया = कवच धारण किये हुये । सबळा = भाले ।

२ सुहड = सुभट । समोभ्रम = १ पुत्र । २. समान । काजळिया = काजल युक्त । महळि = रानी । परि = समान ।

३. कळोधर = पुत्र । कळह = युद्ध । प्रामिया = प्राप्त किया । नन = नही ।

(१६)

१ कळि = युद्ध । ऊपनी-नीपनी = घटना, नई बात । समहर = युद्ध ।

२ अवगाढ = युद्ध. वीर । गळक = गला । पिंजर = शरीर । जमदाढ = कटारी । बेळियै = साथियो के ।

३ हेक-हेक = एक-एक ने, सभी ने । वाखाणै = प्रशसा करते हैं । सुपह = राजा । प्रतिमाळी = कटारी । हैवै = बादशाह । चक्रवर्ती राजा । नेतसी-तणा = नेतसी का पुत्र । नेतसी-अगोभ्रम = नेतसी का पुत्र । विजडी = तलवार, कटारी । तावी = शत्रु ।

(१७)

१ छोह=क्रोध । दिणियर=सूर्य । छळ पारको=दूसरे के युद्ध मे ।

२ तेख=क्रोध । उखेखत=१. क्रोध करते हुये । २ देखते हुये । विहग=गरुड । पराई आरति=दूसरे का दु ख निवारणार्थ ।

३ कौतिग=कौतुक । आफळै=युद्ध करके । जुवो=अन्य प्रकार का । अचरजिया=चकित हो गये । मोटँ प्रब=(परोपकार के लिये मरने के) मरणोत्सव मानकर ।

४ वीभम=चकित, विभ्रम । तढमल=वीर । तणो=पुत्र ।

(१८)

१ आलोच=युद्ध । गोत=गोत्र । घाइया विण=बिना मारे ।

२ बिणज वैर=वैर का बदला । वैहरता=व्यवहार मे लाने से । लजी=स्त्री वर्ग । नह जीख=सहन नही कर सकती ।

३. सोझ=विचार । सपजै=दिया जाता है । करग=१. कटारी । २ हाथ ।

(१९)

१. काइ=अथवा । दुजडाहथ=खडगधारी ।

२ चूक=धोखा. मगळ=अग्नि । असह=असह्य. शत्रु । रूकै=तलवारो से ।

३ सकजै=कर सकता है । वछिया=इच्छा की । प्रभति=सर्वथा । पिड=युद्ध । भारहमाल-समोभ्रम=भारमल का पुत्र ।

४ केवी=शत्रु । सिलह=कवच । भरियो लोहै=प्रहारो से पूर्ण ।

(२०)

१ आणिया=लाया । महळ=महिलाएँ । दाघ=१ शत्रुता । २ कलक ।

२ समहरि=युद्ध । खत्रीस=क्षत्रियो का ईश । आक=भाग्य ।

३. राजहरा=राजसिह का वशज । थोभै=रोकता है । चीत छिर=स्थिर चित्त से । माग=वाग्दत्ता ।

(२१)

१. थाका=थक गये । जाप=मत्र जपन । दोयण=शत्रु । वादी=गरुडी । रण अगणि=रणागण मे । थई=हो गई । चदाणणि=चद्रवदनी ।

२ गारडू=सपेरा । पारसी मत्र=मलिन मत्र । काळकोट=काळकूट । विष । वामा=स्त्री । प्रिसण=शत्रु ।

३ रवद=मुसलमान । कुमरि=कुमारी । विसमै=विषमय । चमरि=युद्ध । चौरी ।

४. के = कई । हरमा = हूरा । मूकै = डालता है । दसत = हाथ । पूंगीघर = सपेरा ।

(२२)

१. ग्रह ग्रही = तलवार चली । पतग = सूर्य । ग्रछर = ग्रप्सरा । बरंमि हूँ = मैं वरण करूगी । मिया हुवो = मुसलमान हो गया ।

२. ग्ररण = सूर्य का सारथी । समध = सबध । वरिवा = वरण करने के लिये । परी = हूर । खन पढिया = नमाज पढी (मुसलमान हो गया) ।

३. चवै = कहती है । रहचतै = लडते हुए ।

४. कहर गुर = युद्ध विशारद । दरिगह = ईश्वर का दरबार । पोहर = प्रहर । ग्रसुर = मुसलमान, यवन । दुवै = दोनो । विढियो = लडा । रणमलहरा = रणमल का वशज ।

(२३)

१ खतिया = क्षत्री । खत = क्षत्रियत्व । सुरागुर = इन्द्र । पारख = परीक्षा ।

२ कळोधर = पुत्र, वशज । ग्रदीठा = १ ग्रदृष्ट । २ नही देखने योग्य । पिसण जण = शत्रुजन ।

३. रजवट = क्षत्रियत्व । रेस = सहार । रिभ = शत्रु । जीहा = जीभ से । मुँह से । सदीहाँ = दिन मे ।

४. चहर = बाजीगर । पखा = दोनो पक्ष (मातृ-पितृ) । ग्राराण = युद्ध । माडेचा = भाटी क्षत्री । सपूरत = सपादन करते हैं । साक्षी भरते हैं । मान = बदला, बैर ।

(२४)

१ फरसधरराम = परशुराम । जमदगन = यमदग्नि ।

२ सारग धनखधर = राम । हलधरण = बलराम । कलावत राम = कल्याणसिह का पुत्र रामसिंघ । रव चक्कतळ = रवि परिभ्रमण के नीचे ग्रर्थात् समस्त सृष्टि मे । खाडण खळ = दुष्टो का नाश करने वाला ।

(२५)

१. छोहि = १ उत्साह । २ जोश । पड ती बाथ = द्वन्द्व युद्ध मे । लडाई होने समय । कना = ग्रथवा ।

२ भारथतणै = भारतसिह के पुत्र ने । बीजो = दूसरा । कमण = कौन । दुजड = कटारी । प्रिसण = शत्रु । वाहतो = प्रहार करते हुग्रा ।

३ द्रोहियो = नाश किया । ग्रणद्रोहा = ग्रजीत । छाछोहै = १ प्रचड । वेगवान । पोह जोगिणिपुर = दिल्लीपति । घर सँभरि पोह = साभर पति (चौहान) । लोहाळी = तलवार ।

४ आहचै = १. प्रहार करके । २ युद्ध करके । ऊगाढ = १ पौरुष । २ प्रबल । ३ नाश । वाही = प्रहार किया । मार दी ।

(२६)

१ रागहरा = गागे का वशज ।

२. थुडिया = लडे । रूका = तलवारो से । समियाणै = सिवाने के किले पर । सिरगै = शृगो पर । शिखरो पर ।

३ नडतै = अवरोध होने पर । खेडेचै = राठौड कल्याणमल ने । खतमाग = क्षात्र धर्म ।

४. पब्बै = सिवाने के पर्वत पर । महळ = रानी । राख करै = जौहर द्वार भस्म होकर के । निय = अपनी ।

(२७)

१ वीराण = वीरो के । आखाडै = युद्ध भूमि मे । केवा = १ युद्ध । २ बैर का बदला ।

२. हूकळ = युद्ध घोष । भगोती = तलवार ।

३ चवदस = चौदस । टोळ = चला करके । तळफै = तडफ रहे है ।

४. आळा = युद्ध । युद्धो मे । सारपं = तलवार से । जोगणपीठ = दिल्ली । जागर = युद्ध ।

५. घू साळ = यशस्वी । सिधुर = हाथी । डार = झुड ।

(२८)

१ झिल = १ खूब । २. स्वीकार करके । ३ सहायता । आकरो = कठिन ।

२ स्रवणा = कानो से । नव-सँहसा = राठौड । ऊला = १ दूसरे । २ शत्रु । पुछिहा = पूछेगे । पाणी दै = जलाजलि देकर ।

३. आभो = १ शक्ति । २ सहारा । दडवडिया = भाग गये । कळह = युद्ध । बिया = दूसरे । वत = बात । अजळ जळ = जलाजलि ।

(२९)

१. दामणि = दामन । ओळै = ओट मे । धाबळियाळि = करणी देवी । छळि = १ युद्ध । २. लिये । पटोळै = वस्त्रो को ।

२ ळोवडियाळी = करणी देवी । चूनड़ियाळ = पत्नी । सासरवाडि = ससुराल । नारीयण-सभ्रम = नारायण का पुत्र । चाळ = दामन ।

३. रेवत = घोडा । आछटि = १ झटका देकर । २. मार कर । थयो = हुआ । लोडाउआ = यवन लोग, शत्रुगण ।

(३०)

१. थाट = १. समूह । २ फौज । नवसाँहसो = राठौड । रासउत = रायसिंघ का पुत्र ।

२. रौदघड = यवन सेना । मोहत = मुहूर्त । दलैं = दलपत । भीनो = रसलीन हुआ ।

३. पहट = नाश । खोत = मुसलमान सेना । जवनणी = मुसलमानिन । घड-पूगडी = सेना रूपी लडकी । गाहणा = ग्रहण करने वाला । हसम = सेना ।

(३१)

१ सरणाई = शरण मे आये हुए, शरणागत । जीहा = जिह्वा से । हाथ = हाथ की शक्ति । सबदी = बोल । वैरहर = शत्रुगण ।

२ रीसाणै = गुस्सा करने पर । पखै = पक्ष मे, शरण मे ।

३. कळियाणोत = कल्याणसिह का पुत्र । निभै = निर्भय । तीडाहरा = राव तीडा का वशज । वळि = फिर ।

४. क्रत्त = कर्म । म्रतभुवणा = मृत्यु लोक । मीठा करैं = सुकृत करके । वेण = वचन ।

५ सलख कळोधर = राव सलखे का वशज । वेखियो = देखा । पखै = विना । वाछियो = इच्छा की ।

६. भामी = न्योछावर होने वाला । नाटसल = जबरदस्त । छछोहा = योद्धा । सत्रा = शत्रुगण ।

(३२)

१. निमाणा = झुका दिया । अवट = कुमार्गी । ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र । हाटै = दुकान पर, बाजार मे । रजपूतवट = क्षत्रियत्व ।

२ चीतोडो = महाराणा प्रताप । पतो = प्रताप । पण = प्रतिज्ञा । मुसीजै = लूटे जाते हैं । रोजायता = मुसलमान । खत्रीपण = क्षत्रियत्व ।

३. नको = नही । रज = रजस्व, क्षत्रियत्व । दिढ = दृढ । हमीर हरो = हमीर का वशज । हाटा-हुरम = मीना बाजार ।

४ परियावट = कुलमर्यादा । खूमाण = खुमान का वशज ।

५. एकार = एक बार । रेह = अरे (सबोधन) । खत्री ध्रम = क्षात्र धर्म ।

(३३)

१. वळाविळी = चारो ओर । वापरी = उपयोग मे ली । घड = सेना । माल्हियो = मस्ती से चला । मानसर = मानसरोवर ।

२ आबुवा = आबू वालो की । उदैसिंघ-समोभ्रम = उदयसिंह का पुत्र ।

३ जळबोळ = असख्य (सेना) । वीटियो = वेष्ठित किया, घेर लिया । पाबामगो = मानसरोवर का । सार = तलवार । बेल = सहायता । पोयणी = कमलिनी । सीरोहियो = सिरोही वाला ।

४ सारि = तलवार से । लोये = लोगो को । सागाहरै = सागा के वशज ने । सरग = स्वर्ग ।

(३४)

१. कोळी = पूली । कसू भो = गला हुआ अफीम । सोध कियो = शुद्ध किया ।

२. ओखदी = औषधि । छोतरा = छिलके । मुसटिया = भीच दिया, दबाया, मारदिया ।

३. चापर = शीघ्रता । जीरवियो = पचा लिया, हजम कर लिया । किरमाळै = तलवारो से । आहूत कियो = निमन्त्रित किया । दळनाह = सेनापति ।

(३५)

१ कुत = भाला । कळिमूल = युद्ध । खत = दस्तावेज ।

२ छडाळ = भाला । समर = युद्ध । पळ = मास । पाठो = कागज । साखा = शाखाएँ । माल-सुजाव = माला का पुत्र ।

३ साबळा = भालो से । धूहडा = धूहड का वशज । अगरस = रक्त ।

४ मयद = सिंह । (सादूळ) । मयद कळोधर = सादूल का पुत्र ।

(३६)

१ खेताहरो = खेता का वशज । ओभडा = अजस्र प्रहारो से । भाट = प्रहार । वेलतो = नष्ट करता हुआ । अवियाट = भयकर । गो ठेलतो = धकेलता गया । विढतो = लडता हुआ ।

२. पाखरा = कवच । सूजडा = तलवारो से । खानरा = खान के । भीच = बहादुर ।

३ भीछ = बहादुर । विमुहो = उलटे । तळछियो = १. घायल किया हुआ । २ सहार किया हुआ । सिंघळी = सिंह । छळि = युद्ध ।

४. दूठ = १. दुष्ट । २ वीर । दाख = देखकर । छिलै = छलकता है । घ्रू = सिर । क्यावर = श्रेष्ठ कर्म । दुनी = दुनिया । धारूजळै = तलवारो से । सोनगिर राव = स्वर्णगिरि (जालोर दुर्ग) पति ।

(३७)

१. क्रनि = कर्ण । अजन = अर्जुन । अलद = १ चबूतरा । २ घर । पिक = तोता । पकसुत = कमल । आपाणो = १. शक्तिशाली हुआ । २. अपना । रवसुत = कर्ण ।

२. मीढति = तुलना करते है । वीवियो = वीघ डाला ।

३ पोरसि = पौरुष । ऊरै = आक्रमण किया । वदै = कहता है ।

(३८)

१. सलखहर = सलखा का वशज । ओपम = उपमा । विलागो = लगना । फमगा । बिपहर = दो पहर । कळहकथ = १ युद्ध चर्चा । २ युद्ध । रता = रतनसी ।

२ भाळै = देखती है । भाळयळ = ललाट । वळ = लौटि आव । हवै = अब ।

३. जमवारो = जीवन । अछरि = अप्सराएँ । पुहुण = स्वागत करने के लिये । अवधारै = १ स्वीकार करना । २. उद्धार करना । अमर = अमर लोक ।

४. पडियालग = तलवार । उदकसमै = सूर्यार्ध के समय । उदक = १. जल । २ दान । पोहु = प्रात.काल । पडिगाहि = उत्साहित होकर के ।

(३९)

१. परभविया = पर भव मे । लियाळि = कटारी ।

२. वीद = दुल्हा । वाढाळी = कटारी । हथळेवो = पाणिग्रहण ।

३ प्रतमाळी = कटारी । अरिहर = शत्रु । अफिर = नही लौटने वाली । पिडि = युद्ध मे ।

४. रसलूधी = रसलुब्धा । अणियाळी = कटारी । अहवन = आह्वान ।

५ परमपुरि = स्वर्ग । खाटि = प्राप्त करके । काट = जग । खित = पृथ्वी । दायजो = दहेज ।

(४०)

१ दन = दिन । आखाडा = युद्ध । हसत = हाथ । अणचूक = अचूक । रोदा = मुसलमान । रूक = तलवार ।

२. मोकळहरा = मोकळ का वशज । पडियालग = तलवार ।

३. खित > क्षित = पृथ्वी । खळवट = युद्ध । नाश । असणा = शत्रुओ का । खूमाण = खूमाण का वशज । सावरत = लाल ।

४. सूर = सूर्य । ऊदावत = उदयसिंह का पुत्र । वसू = वसुधरा । छल = युद्ध । चीतोडो = महाराणा प्रताप । चद्रप्रहास = तलवार । चोळ = लाल । चळुअल = रक्त । युद्ध ।

स्फुट

इम विभाग मे मात्र एक को छोडकर शेष सारी कविताएँ, महाराज पृथ्वीराज राठौड के जीवन से घनिष्ट सबध रखती हैं यह छद कूट-काव्य शैली का है, जिसे सामान्य भाषा मे बुझौवल कह सकते हैं. स्वय कवि ने अतिम पक्ति मे 'पीथळ कहै ऊ कवण नर' कह इसे प्रश्नाकित बना हमसे उत्तर की अपेक्षा की है. यह विचित्र पुरुष पगळा है तथा इसके नाखून, चक्षु और कान भी नही है और जिसके बोलने से हृदय काँप उठता है —

पुरख एक पागळो, जीह विण कीरत जपै ।
नख चख स्रवण विहूण, तास बोल्या उर कपै ।।

यह पुरुष अन्य कोई न होकर 'नगारा' है.

इसी प्रकार का दोहा क्रम सं० १५, 'चपा सबधी अन्य दोहे' के अन्तर्गत है. जिसमे भी एक बुझौवल है—'अरथ ज दोहा माह.'

इसी विभाग का एक अति प्रसिद्ध दोहा कवि के गुरु से संबधित हैं, जिसमें उनके तीन गुरुओ का नामोल्लेख है ये तीन गुरु हैं, श्री विट्ठलनाथजी, श्री गदाधर व्यास तथा श्री रामसिंघ—'तीन्ू गुरु पृथिदास. कवि ने एक अन्य स्थल पर चार और गुरुओ के नाम दिये हैं. जिनका विशद वर्णन इसी ग्रथ के 'व्यक्तित्व' भाग मे आलेखित है

अन्य सारे दोहे तथा ब्रजभाषा मे लिखा मनहरण छद, सभी कवि के जीवन के तीन चार प्रसगो से सबधित हैं —

(१) 'वेलि' जैसे उत्कृष्ट ग्रथ की रचना के पश्चात्, जब उसका प्रचार और प्रसार होने लगा था तो कुछ चारण कवियो के मन मे अकारण ही ऐसा सदेह उत्पन्न हुआ कि ऐसा उत्तमकोटि का ग्रथ चारणो के अतिरिक्त कोई नही लिख सकता वे डिंगळ भाषा पर अपना एकाधिपत्य मानते थे वे यह भूल जाते हैं कि वीरता और भक्ति किसी की बपौती नही है किसी चारण कवि ने ही कितना उपयुक्त कहा है—

जो करसी उणरी हुसी, आसी विण नूतीह ।
औ नही किणरे बापरी, भगती रजपूतीह ।।

अस्तु, वेलिकार ने जब यह सुना तो उसने तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियो को आमत्रित किया तथा यह ग्रथ स्वय सुनाया. ग्रथ सुन कर माधोदास दधवाडिया और केशव गाडण ने तो तुरत अपना अभिमत व्यक्त करते हुये कहा कि

क्योकि राजा परमभागवत है, इसलिये ऐसे ग्र थ का निर्माण उनसे सभव है, जबकि दुरसा ग्राढा ग्रौर माला सादू का सदेह वैसे ही बना रहा इस पर पृथ्वीराज ने दो दोहो मे माधोदास ग्रौर केशव की प्रशसा की तथा तीसरे मे दुरसा ग्रौर माला की निदा ऐसा प्रतीत होता है कि दुरसा ग्राढा भी धीरे-धीरे पृथ्वीराज के कवित्व-शक्ति से प्रभावित होते गये ग्रौर एक ग्रति प्रसिद्ध गीत ‘रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण ·· ······ ब्रह्मतणा भाखिया वड’ मे भूरि-भूरि प्रशसा की माला के विचारो मे भी ग्रवश्य परिवर्तन ग्राया होगा, पर पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाणो के ग्रभाव मे निश्चयात्मक रूप से कुछ नही कहा जा सकता

(२) दूसरा प्रसग राजबाई से है जिसका विस्तृत वर्णन पृ० ६ पर किया गया है. यही राजबाई स्मरण करते ही तुरत सहायतार्थ ग्रा उपस्थित हुई—‘राव सुणता राजई, तै ग्रणवो तेथ,

(३) ग्रन्य तीनो प्रसग कवि की पत्नीद्वय लालादे ग्रौर चपादे से सबधित है, जिनका विस्तृत वर्णन ‘व्यक्तित्व’ खड मे, ‘वैवाहिक जीवन’ के ग्रन्तर्गत किया गया है

इनके ग्रतिरिक्त पृथ्वीराज रचित जो चार कु डलियाँ उपलब्ध हुई है, उन पर भाषा ग्रौर भाव दोनो ही दृष्टियो से विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे पृथ्वीराज के स्तर की नही हैं ऐसी दशा मे उन्हे पृथ्वीराजकृत स्वीकार करना एक प्रश्न चिन्ह ही रहेगा ।

पृथ्वीराजजी कहै (कूट दोहे)*

पुरख एक पागळो, जीह विण कीरत जपै ।
नख चख स्रवण विहूण, तास बोल्या उर कपै ।।
है सुथिर दरबार, बाघ गजवध चलावै ।
मया करै महपती, ताम सुसोभा पावै ।।
अर थाट अडण सूरा सकज, परदळ हाका पेलणो ।
पीथळ कहै ऊ कवण नर, जास पखै जस बोलणो ।।
तोप गौरग कल्याणतण, ग्यो ज उसण अगाह ।
मिण किर अरि डसिया नही, अरथज दूहा माह ।।

गुरु सबधी दोहा व प्रसंग

गुसाईजी श्री विट्ठलनाथजी श्री गोकुल बिराजते है । तब श्री राव कल्याणमलजी के छोटे पुत्र श्री पृथ्वीदासजी दिल्ली जावते गोकुल आये है सो श्री गुसाईजी को दर्शन कर आपके शिष्य भये । यहाँ प्रमाण दोहा पृथ्वीराजजी को—

दीक्षा गुरु विठलेश है, गुरु गदाधर व्यास ।
चतुराई गुरु रामसिघ, तीनू गुरु पृथिदास ।।[1]

(महाराणा प्रताप के पत्र पर अकबर और पृथ्वीराज मे विवाद की बात जान कर, चपा का चिंतित हो पति के पास मे पत्र भेजना व पृथ्वीराज के उत्तर का प्रसग)

चंपा का प्रश्न—पति जिद की पतिसाह सौं, एह सुणी मै आज ।
कहँ पातळ अकबर कहाँ, करियौ बडो अकाज ।।

मनहरण छंद

पृथ्वीराज का उत्तर—

जबतै सुने है बैन, तबतै न मोको चैन,
पाती पढि नेक सो विलब न लगावैगो ।

---

*पुरख = पुरुष । विहूणा = बिना । थाट = सेना । अडण = मुकाबिला करने के लिये । पेलणो = नष्ट करना । हाका = १. शोर । २ आक्रमण । अर = अरि । गौरग = गौराग । उसण = अग्नि । मिण = मणि ।

---

१ 'आर्याख्यान कल्पद्रुम' दयालदास कृत । अनूप सस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर । राजस्थानी विभाग, ग्रथाक १८०

लेकै जमदूत से समथ्थ रजपूत आनि,
आगरे मे आठो जाम ऊधम मचावैगो ।
कहै प्रथीराज, प्रिया ! नेक उर धीर धरो,
चिरजीवी राना सो म्लेछन भगावैगो ।
मन को मरद्द मानौ प्रबल प्रतापसिघ,
बब्बर ज्यो तडपि अकबर पै आवैगो ॥

पृथ्वीराज कृत केसोदास गाडण और माधोदास दधवाडिया के प्रशसा मे कहे गये दोहे जो उनके द्वारा वेलि की प्रशसा करने पर प्रतिप्रशसा मे कहे गये थे—

'कैसो' गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार ।
सिध रूपी रहता सबद, गाडण गुणभडार। ॥[1]
चूडै चत्रभुज सेवियो, ततफळ लागो तास ।
चारण जीवो चार जुग, मरो म माधोदास ॥[2]

प्रथम पत्नी लालादे संबंधी प्रसंग

(अवधि समाप्त होने पर भी पति के न लौटने पर लालादे का चितारोहण कर भस्म होना)—

पति परितिग्या साभळो, अवध उलघन थाय ।
प्राण तजू तो विरह मे, कदै न राखू काय ॥

(लालादे के जल जाने पर पृथ्वीराज का विरह विलाप)—

कथा ऊभा कामणी, साई ! थू मत मार ।
रावण सीता ले गयो, वे दिन आज सभार ॥१॥
लाला लाला हू करू, लाला साद म देय ।
मो अधा री लाकडी, मीरा खीच म लेय ॥२॥
तो राध्यौ नह खावसूँ, रे वासदे ! निसड्ड ।
मो देखत थें बाळिया, लाला हदा हड्ड ॥३॥

---

१ और २. राजस्थान के सास्कृतिक उपाख्यान, काव्य चर्चा, पृ० ८१--८२. ले० डॉ० कन्हैयालाल सहल, प्र० राजपूत प्रेस लि० जयपुर ।

द्वितीय पत्नी चंपादे संबंधी प्रसंग

(लालादे और चपादे, दोनो बहिनो के साम्य पर पृथ्वीराज का एक बारगी धोखा खाना, पर फिर पहिचान लेना)—

आयी है चपा अठै, वा लाला अब नाहि

(चपा को अगीकार करना)—

चपा ! डगलां चार, सामा ह्वै दीजै सजल ।
हीडळते गळ हार, हसतमुखा हरराय री ।।

चपा का उत्तर :—

मुकुल परिमल परीहरे, जब आये ऋतुराज ।
अलि नही, अलि हयन की, कलि विकसे कहि काज ।।

चपा सबधी अन्य दोहे —

चपा ! थू हरराज री, हँस कर वदन दिखाय ।
मो मन पात कुपात ज्यू, कबहू तृपत न थाय ।।१।।
चपा ! चव पासेह अति ऊडइ पथ डोहियो ।
दरस विकसती देह, हल आया हरराजउत ।।२।।
चपा तिल अम्ह चीत, वास तुम्हीणो वासियो ।
हिव जु फूली प्रीत, मो हीयइ हरराजउत ।।३।।
चपा चढी सुवास, मो मन माळी हरतणी ।
नैण सुगधी वास, हीय आगइ हरराजउत ।।४।।
चपा चउकइ काढि, उपजइ दाखिजसइ नही ।
तन सू तन ची चाढि, काइ हरि सू हरराजउत ।।५।।

चंपा सबंधी अन्य दोहे —

१. कुपात = कुपात्र ।

२. चव पासेह = चारो ओर । डोहियो = उद्वेलित । हरराजउत = हरराज (जैसलमेर के राजा) की पुत्री ।

३. अम्ह = मेरे । चीत = चित्त । मोहीयइ = मोहित करती है । (मेरे हृदय मे) ।

४. आगइ = आगे । हरतणी = हरतनया, चपा ।

५. दाखिजसइ नही = कहा नही जाता ।

चपा चमकताह, दॉत कहूँ कै दामिणी ।
ग्रहरा नइ ग्राभाह, होड पडी हरराजउत ।।६।।

चपा चउसर माळ, गूंथै नइ घातो गळइ ।
काइ तोसूं इकताळ काइ हरि सू हरराजउत ।।७।।

ज्या परमळ त्या तुच्छ दळ, ज्या दळ त्या नही गध ।
चपा केरे तीन गुण, सदळ सरूप सुगध ।।८।।

सज्जण घणा ही सपजै, काळा ग्रनै कुव्रन्न ।
म्हाका सयणा सारिखा, समुद्रे नही रतन्न ।।९।।[1]

तोनू लोढ़े रे हीया, तू ही तानू लोडि ।
ऊ मन खचै ग्रप्पणौ, तू मो लाहु तोडि ।।१०।।

सज्जणिया सालै नही, सालै ग्राहीठाण ।
समरि समरि पिंजर भये, देख देख ग्राहिनाण ।।११।।

ने माणस किम वीसरै ज्यासू घणौ सनेह ।
राति दिवसि मन मे बसै, ज्यू बावीहा मेह ।।१२।।

हसो चीतै मानसर, चकवी चीतै भाण ।
तिम हू तूनै चीतवू, भावै जाण म जाण ।।१३।।

साजिणी थारी थकी, भावै जाण म जाण ।
चिलै चढी कमाण ज्यू, त्यू भावै त्यू ताण ।।१४।।

---

६ ग्रहरा = ग्रधरो की । नइ = ग्रौर । ग्राभाह = ग्राकाश मे । होड = प्रतिस्पर्धा ।
७. इकताळ = प्रेम । गळइ = गले मे । काइ = ग्रथवा । तोसूं = तुझसे ।
८ केरे = के । परमळ = सुगंध ।
९ कुव्रन्न = खराब वर्ण के । सपजै = मिलते ।
१०. लोढे = विचलित करता है । तोनू = तेरेको ।
११ सालै नही = शल्य रूप नही है । ग्राहीठाण = चिन्ह, सकेत । ग्रहिनाण = चिन्ह । सालै = सलते है ;
१२. बाबीहा = पपीहो के । किम = कैसे । ज्यासू = जिनसे ।
१३. चीतै = स्मरण करता है । मानसर = मान सरोवर । भाण = भानु, सूर्य । भावै = चाहे ।
१४ साजिणी = सजनी । चिलै = प्रत्यचा पर । ताण = खीचले ।

---

१ दोहा सख्या ६ से १४ तक श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने प्रेषित किये है.

गाथा

एक अन्य प्रसंग —

पृथ्वीराज वरस ३६ रावळ हरराज री दीकरी भटियाणी चापावती परणनइ पातिसाह री चाकरी गयो। निवारइ पातिसाह चाकरी करतो चचळ चित दीठो। तरइ पूछियो—

प्रश्न—मन उतराधो तन दखण, कहो नहि कवण विचार ?

उत्तर—मन गुणवती मोहियो, तन रूधो दरबार ॥

गाथा

इनरइ पातिसाह पूछियो। किसी गुणवत। तरइ प्रिथीराज कहइ।

के सेवइ पग नाथना. के सेवइ तट गग।
प्रिथु सेवइ चपाकली सदळ सरुप मुगध ॥

गाथा

तरइ पातिसाह रीझवाण हुइनइ सिरपाव देनइ मीख दीधी। तरै वरस बारा हुती घरे आया। जरइ महल पधारिया। तरइ चचावती देखनइ कह्यौ—

बहु दीहा हु वल्लहो, आयो मदिर आज।
कवळ देख कुमळाईया कहोस केहइ काज ॥
चुगै चुगायै चच भरि, गये निलज्जै कग्ग।
काया सर दरिवाय दिल, आइ ज बैठे बग्ग ॥

गाथा

तरइ पृथ्वीराजजी बोलिया

काया थिहुर म पेख धन, मूंध म करि अणुराव।
पाना पुरखा वन फळा इहु त्रिहु पक्का साव ॥
अवर सहु धवली भलो, निखरो पळी नराह।
तिणथी कामिण यू डरै, (जु) दीठै कग्ग सराह ॥

वल्लहो = वल्लभ। चच = चोच। कग्ग = कौआ। बग्ग = बगुले। दीहा = दिवम। थिहुर = स्थिर। मुध = मुग्धा। अणुराव = उपेक्षा। निखरो = (१) सुदर (२) बुरा, पळी = काले बालो मे सफेद बाल। सराह = बाणो से।

पृथ्वीराज-चपावती सबधी एक और प्रसग—

सफेद बाल को निकालते समय दर्पण मे चपा की परिछाई देखकर—

पीथळ धोळा आविया, बहुली लागी खोड ।
पूरे जोबण पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड ।।

चतुर चपा ने उपयुक्त उत्तर दिया—

प्यारी कह, पीथळ सुणो, धोळा दिस मत जोय ।
नरा, नाहरा, डिगमरा, पाक्या ही रस होय ।।
खेडज पक्का धोरिया, पथज गध्धा पाव ।
नरा तुरगा वनफळा, पक्का पक्का साव ।।

पृथ्वीराज

कृत माला सादू और दुरसा आढा विषयक वह दोहा जो इन दोनो के 'वेलि' की प्रशसा न करने पर कहा गया था —

बाई बारे खाळियाँ, कोई नही न जाय ।
ऊदे भालो ऊपनो, मेहे दुरसो थाय ।।[1]

पृथ्वीराज कृत

राजबाई की प्रशशा मे कहा गया दोहा :—

बयानो केथ आगरो, चिडारवो स केथ ।
राव सुणता राजई, तै अणवो तेथ ।।

कुण्डलिया प्रथीराज किलाणमलोत री कही

अरक रातम्बर ऊगवै, तिते सिर धर सेस ।
तूझ सर (अेके) राजै नही अइयो मुरधर देस ।।
अइयो मुरधर देस, कनेरा सुहावणा ।
लोई धाबळ वेस, चटक्का लावणा ।।

धोळा आविया = सफेदबाल आगये । (वृद्धावस्था का सूचक) । बहुळी = बडी। खोड = अवगुण । डिगमरा = दिगम्बरो के । गध्धा = ऊटो के ।

---

१. राजस्थान के सास्कृतिक उपाख्यान, काव्यचर्चा, पृष्ठ ८१-८२, ले॰ डॉ॰ कन्हैयालाल सहल, राजपूत प्रेस लि॰, जयपुर सन् १९५१

केहर लकी नारि, कुरगी नैणिया ।
बौलै घर घर माझ, सुकोकिल वैणिया ।।१।।

कोकिल बेंणी कामणी, केसर बरणै गत्त ।
पिव रत्ती आण रत्त पर, हेत हरदे चित्त ।।
हेत हरदे चित्त कै रग मुरगिया ।
लगै कचन खभ कै वैणी उरग्गिया ।।
काजळ टीलो कढाय कै भ्रूहृ धानखसी ।
किर नग्गी समसेर, उपच्छर उर वसी ।।२।।

उपच्छर जेही उर बसी, रगी लोई वेस ।
पू गळ कैरी पदमणी, त्रिया मुरधर दस ।।
त्रिया मुरधर देन कै छैला टोळिया ।
कासू सायिबराज कै मीठी बोलिया ।।
पावे गळिया पैठ, कै करवत्ता मथिया ।
तये धूमर पान जिण्हारा लधिया ।।३।।

लजा हजा लविया, मारू खडी नार ।
पारबती हर पूजिया, कै तूठै किरतार ।।
कै तूठै किरतार कै मारू घट्टिया ।
जाणक विधका हस, कही (   ) या ।।
उर दोय धरै अनार कै नारगिया ।
प (हरे) रगे सुरग कै फूलो केतकिया ।।४।।[1]

---

१. अरक = अर्क, सूर्य ।

२. गत्त = गात = शरीर । उरग्गियाँ = नागिन । उपच्छर = अप्सरा ।

३ पू गळ = भूतपूर्व बीकानेर राज्यान्तर्गत एक प्रदेश ।

४ तूठे = प्रसन्न होते हैं ।

---

१ बगाल हिंदी मण्डल, कलकत्ता, सग्रह कॉपी स० ६८ श्री सौभाग्यसिंह का लेख, 'राजस्थान भारती' भाग ६ अक ४ पृष्ठ ४५-४६ से उद्धृत ।

पृथ्वीराज राठौड़

संबधी उपलब्ध प्रशसात्मक काव्य सामग्री

एक पराक्रमी वीर के रूप मे तो पृथ्वीराज की ख्याति पहिले से ही थी, पर जैसे ही भगवद्भक्ति से आपूरित उनका प्रथम ग्रथ 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' प्रकाश मे आया तो उनकी ख्याति मे चार चाँद लग गये अब तो उनकी यशोगाथा सर्वत्र गाई जाने लगी भक्तो ने उन्हे श्रेष्ठ भक्त के रूप मे स्वीकार किया और काव्य-रसिको ने उच्चकोटि के कवि के रूप मे

राजस्थानी ग्र थो मे यही एक मात्र ऐसा ग्रथ है जिसकी सर्वाधिक टीकाये विभिन्न भाषाओ और बोलियो मे लिखी गई सस्कृत, ब्रज, गुजराती, हिदी, ढ्ढाडी और मेवाडी आदि टीकाओ से इनकी अपार लोकप्रियता का पता चलता है विशिष्ठ और सामान्य जन के पठनपाठन के लिये 'वेलि' की शताधिक प्रतिलिपियाँ की गई और इस प्रकार हम देखते है कि यातायात और दूर-सचार के साधनो के अभाव मे भी वेलि और उसके कर्ता की कीर्ति-सौरभ सर्वत्र प्रसरित हो गई थी.

उनके काव्यत्व से प्रभावित हो, अनेक भगवद्भक्तो और कवियो ने समय समय पर जो भावाजलियाँ अर्पित की है, उनकी उपादेयता को ध्यान मे रख, उनको एक अलग ही विभाग मे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है. इस विभाग के दो कवि, भक्तवर नाभादास तथा राष्ट्रीय कवि दुरसा आढा तो अपने काल के सर्वविदित लोगो मे से रहे है, जिनकी प्रामाणिकता असदिग्ध है

(१)

गीत प्रिथीराजजी नू गाडण रामसिंघ रो कह्यो

रुखमणि गुण रचण सिगार महा रस,
वेद बीज तसि वाण वखाण ।
पाचमो वेद भाखियो पीथा,
पढियो उगणीसमो पुराण ।।१।।

केवळ भगत अथाह कलावत,
तै ज किसन चो गुण तवियो ।
चिहु पाचमों निगम चाळवियो,
नव दसमो ग्र थ नीगमियो ।।२।।

म्है कहियो हरि भगत प्रथीमल,
स्रवणै वयण कहण तनसार ।
रामो कहै पीथा महाराजा,
आखर व्यास तणो अवतार ॥३॥

तै ऊपर पाछो दूहो प्रथीराजजी कहै—

गुण पूरा गुरु सुगुरा, सायर सूर सुभट्ट ।
रामो रतनो खेतसी, गाडण गाधी हट्ट ॥

—अनूप सस्कृत लाइब्रेरी । राजस्थानी विभाग गुटका न० १२६ से ।

(२)

गीत प्रथीराजजी रो दुरसो आढो कहै

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण,
वेलि तासि कुण करै वखाण ।
पाचमो वेद भाखियो पीथळ,
पुणियो उगणीसमो पुराण ॥१॥

केवळ भगत अथाह कलावत,
तै जु क्रिसन त्री गुण तवियो ।
चिहु पाचमो वेद चालवियो,
नव दूणम गति नीगमियो ॥२॥

मैं कहियो हर भगत प्रिथीमल,
अगम अगोचर अति अचड ।
व्यास तणा भाखिया समोवड़,
ब्रह्म तणा भाखिया वड ॥३॥

(३)

गीत पृथ्वीराजजी रो, मोहनरामजी रो कह्यो

रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची,
उदधि वास कीधौ उदरि ।
बुधि गजमुख बोलिबै विदुखा,
पुणिया वाइक व्यास परि ॥१॥

श्रवणै ब्रह्म सबद तको सचरियो,
नयण अरक इद उभै निवास ।
हरि कर मौलि ध्यान हरि सम हरि,
अवळि दीपवै तणौ उजास ॥२॥

विस जाणग व्रहम उकति ताइ बधी,
बाहु हणू भणिया तौ वीर ।
रुति खट अगि उर मा (ल) सुरत्ती,
धरणी अखिर मेर स धीर ॥३॥

पढिवै गग प्रवाह प्रवाणी,
सुणता अम्रित पान समथ ।
माड प्रभू री माथ ग्रथ माखण,
परगट कोधी लता प्रथ ॥४॥

(४)

गीत पृथ्वीराज कल्याणमलोत रो
बारहट लाखो कहै

वपि वाधै नितू विराजै अविरळ, भले बिहु विध उर नवली भाति ।
प्रभु सू जेतो हेन प्रथीमल, पै सरसो तेतो पुरसाति ॥१॥

राजे रात्र राठोड प्रथीरज, रूडै अगि रूडी बे रीत ।
प्रीत जिसी सरस जगतपति, पै सो तिसी खत्रीपण प्रीत ॥२॥

अधिको नित कलियाण-अगोभव, उभै विधि अधिकार अछेह ।
व्है जिम तूझ सनेह सरिस हर, सु सतिय तो सरिस सनेह ॥३॥

विध बिहु रिध की जैत वसोधर, धारण हेकण व्रवण धन ।
मनि तू ऊबरै सुरे न मानै, मछर न ऊबरै नरे मन ॥४॥

—शोध पत्रिका, वर्ष १८ अक १ श्री सौभाग्यसिह शेखावत के महाराज पृथ्वीराज राठौड रचित छप्पय लेख से ।

(५)

वेलि रा ढूढाड़ी टीकाकार लाखाजी चारण कृत

कितरा आगै वड कवी, पुण्या प्रभु जस पेस ।
चोज ओपमा चातुरी, वकत्या प्रथ आदेस ॥१॥
नारायण तणो काव्य वड नीको, बाखाणण चौ करि विस्तार ।
चोज कमध कवि चाढि ओपमा, नमो पीथ नित उकति अपार ॥२॥

'वरदा' वर्ष १३ अक ४ से—

पाठान्तर—

१. अविरच । ३. उभै विध । ४ विध विहु अधिकी जैत बसौधर । ऊबरै ।

(६)

गीत

गढवो कहै रा ।। प्रिथीराज कल्यांणमलोत नूं

काकर है कूं जाणो ?
ठोठणो ठाहरा वड ए ।
कहिया गुण काकाणा,
मैंकाणो नैव जाणति ।।१।।

प्रिथीराजजी कहै—

वड त्री प्रथम चिसाणो,
पाछै कूलति जोड दादाणो ।
मैंकाणै कू जाणो तिका तो ?
काकाणो नैव जाणति ।।२।।

(७)

कलस भोजक जादव कृत
(उद्‌भिज वेलि से वेलि ग्रंथ का रूपक)

वेद बीज जळ वयण सुकवि झड मडी सघर,
पत्र दुहा गुण पुहप वास भोगी लिखमीवर ।
पसरी दीप-प्रदीप अधिक गहरइ आडंबर,
जे जपइ मन सुध्धि, अब फळ पामै अतर ।
विस्तार कीध जुग जुग विमळ धणी क्रिसन कहिणार धन,
अमृत वेलि पीथल अचळ, तै रोपी किल्याण तन ।

(८)

भक्तमाल के रचयिता नाभादासजी कृत छप्पय

सवैया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरिजस ।।
परिदुख विदुख सलाघ्य वचन रचना जु उचारै ।
अर्थ विचित्र निमोल, सबै सागर उद्धारै ।।
रुकमिणी लता वरणन अनुप, वागीस-वदन कल्याण-सुव ।
नर देव उभै भाखा निपुण, पृथ्वीराज कविराज हुव ।।

(९)

सम्राट अकबर

पीथल सौ मजलिस गई, तानसेन सौं राग ।
रीझ बोल हँस खेलबो, गयो बीरबल साथ ।।

(१०)

श्रीसार कृत

वेलि की संस्कृत टीका की प्रशस्ति से उद्धृत

तद्भ्राता राष्ट्रकूट प्रकटतर यशा शुद्ध चेता· सुशील ।
सद्बुद्धिः शास्त्रकर्ता हरिचरण युग्माराधनैकागुचित्त ।
पृथ्वीराज प्रसिद्धौ जगति गुणनिधा राजराजा कवीना ।
समा वल्लीतिनाम्नी हरि चरितय युता राज गीताचकार ।।१६।।

पृथ्वीराजावतारेण भक्तानुग्रह काम्यया ।
स्वय नारायण. स्वस्य जगादचरितहित ।।२०।।

दाता भोक्ता हरेर्भक्तिः कर्ता शास्त्रस्य शास्त्रवित् ।
पृथ्वीराज समौ राजा न भूतो न भविष्यति ।।२१।।

श्रुत्वा वल्लीतिनामान सर्वं रसाद्भुत ।
टीका मुटीका तस्याथ कृष्णनदोह्यचीकरत् ।।२।।

(११)

विभिन्न दोहे

वेद च्यार नव व्याकरण, गुण चौरासी गूढ ।
तै मृत प्रथ कल्याण तन, अब गई मजलस ऊठ ।।

कठ सरस्वती तूर मुख, पिड पौरख उर राम ।
तैभगि प्रथ कल्याण तन, चहु विलबण ठाम ।।

(१२)

अस लीलो, पिव पीथळो, चपावती ज नार ।
अै तीनू ही अेकठा, सिरज्या सिरजणहार ।।[१]

(१३)

पृथ्वीराज कल्याण रा, थारो जस गाऊँ ।
तू दाता, हू मगतो, इण नातै पाऊ ।।[२]

प्रसग —(२) कहते हैं कि पृथ्वीराज की स्मरण-शक्ति बडी तेज थी कोई कवि इनाम की आशा से कुछ बना कर लाता और इन्हे सुनता तो वे उस काव्य को तुरत दुहरा देते और कहते कि यह तो पुरानी कविता है अत मे एक चारण ने सोचकर यह दोहा बनाकर इन्हे सुनाया तथा पुरस्कार प्राप्त किया.)

१ और २ यह दोनों दोहे 'राजस्थान रा दूहा' पृष्ठ १०६ १०७, स० श्री नरोत्तमदास स्वामी से उद्धृत किये गये हैं।

(१)

१ वखाण = प्रशसा । भाखियो = कहा, रचा । पोथा = पृथ्वीराज ।

२ कलावत = कल्याणसिंह का पुत्र, पृथ्वीराज । चो = के । तवियो = वर्णन किया । चाळवियो = रचा । नव-दसमो ग्रंथ = उन्नीसवां पुराण । नीगमियो = बनाया ।

३ आखर = १. अतिम । २. अक्षर । काव्य-रचना मे ।

(२)

१ पुणियो = कहा । वर्णन किया, रचा ।

२ किसन-त्री = श्री कृष्ण की पत्नि, रुक्मिणी । गुण तवियो = गुण गाया । काव्य रचा । नव दूणम = नौ का दूना, अठारह ।

३. अचड = श्रेष्ठ । समोवड = समान ।

(३)

१ बुधि = सरस्वती । गजमुख = गजानन । विदखा = विद्वत्तापूर्ण । पुणिया = निर्माण किया, कहा । वाइक = वचन (ग्रथ) । परि = समान ।

२ सचरियो = उत्पन्न किया, कहा । २. चला । मौली = १. मस्तक । २. चोटी । सम = बराबर, समान । अवळि दीपवै = दीप-पँक्ति ।

३ जाणग = ज्ञाता । हणू = हनुमान । रुति खट = षट ऋतु । सुरत्ती = सुन्दर, अच्छे रग वाली ।

४ प्रवाणी = परावाणी ब्रह्मविद्या । ग्रथ = कथा, रचना, ग्रथ । परगट = प्रकट । माथा = मथनकर । प्रथ = पृथ्वीराज ।

(४)

१. नवली = १. नयी । २ अनोखी । पै सरसो = उसी समान । पुरसाति = पुरुषार्थ ।

२ बे = दो । रूडी = १. भली । २ सुदर । सो तिसी = वैसी ही । खत्रीपण = क्षत्रियत्व ।

३. कलियाण-अगोभव = कल्याणमल का पुत्र । अछेह = अत रहित । अनत । व्है = १. है । होता है । सतिय = सती पत्नी ।

४ विध बिहु = दोनो प्रकार । रिध = ऋद्धि । जैत वसोधर = जैतसिंह का वशज । हेकण = एक ही । व्रबण = प्रदान करने के लिये । २. कहने के लिये । ऊबरै = उद्धार होता है । मछर = मत्सर ।

(५)

१. कितरा = कितने । पुण्या = कहे, रचे । चोज = १ चमत्कार पूर्ण उक्ति । २ बुद्धि की सूक्ष्मता । ओपमा = उपमा । वकत्या = वक्ता । प्रथ = १ विशाल । १ पृथ्वीराज । आदेश = नमस्कार ।

२ तणो = का । वड नीको = अति उत्तम । बाखाणण = वर्णन करना । चो = का । कमध कवि = कवि पृथ्वीराज राठौड । पीथ = पृथ्वीराज । उकति = उक्ति ।

(६)

१ काकर = कैसा । कू = क्या । ठोठाणो = अपढ समूह । ठाहुरा = स्थान । काकाणा = १ काका का घर । २ काका (पिता) सबधी । मैकाणो = मायका । नैव = नही ।

२ वड त्री = प्रथम पत्नी । चिसाणो = चीस मारी, चिल्लाया । कूलति = कुलवती । दादाणो = दादा का घर । तिका = वह ।

(७)

झड सघर = अविरल धारा । पुहप = पुष्प । वास भोगी = भौरा । लिखमीवर = विष्णु, श्रीकृष्ण । दीप-प्रदीप = खड-प्रखडो मे । गहरइ = घने । आडबर = प्रसार । पीथळ = पृथ्वीराज । रोपी = बोई ।

(८)

सलोक = श्लोक । सलाघ्य = प्रशसा के योग्य, श्रेष्ठ । निमोल = अमूल्य । वागीस-वदन = जिसके मुह पर सरस्वती विराजमान है । कल्याण-पुत्र = कल्याणमल का पुत्र पृथ्वीराज । नर भाखा = जन भाषा । देव भाखा = सस्कृत भाषा । उभै = दोनो ।

(१२)

असलीलो = श्वेताश्व । पिव = पति । पीथळो = पृथ्वीराज । सिरज्या = सरजन किया । सिरजणहार = ईश्वर ।

नामानुक्रमणिका

व्यक्ति व स्थान

सस्थाएँ, ग्रथ व पत्रिकाएँ

———